माया (सद्)

(भाग – 1)

असंख्य विचारकों एवं बुद्धिजीवियों ने **'माया'** के विषय में बहुत कुछ कहा-सुना है। मैं आप अति जिज्ञासुओं की प्रेरणा एवं इष्टकृपा से **'माया'** का एक सर्वथा नवीन, हृदयस्पर्शी व हृदयग्राही स्वरूप अनावृत करूँगा। ईश्वर स्वयं में अदृश्य है तथा मन-बुद्धि एवं साकार व निराकार से परे इन्द्रियातीत है। शास्त्र में ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा गया है। सद्, चेतन, आनन्द ईश्वर के परस्पर अभिन्न एवं स्वयं में पूर्ण तीन अंग हैं। इनमें चेतन और आनन्द अदृश्य हैं और **'सद्'** दृश्यमान है। **'सद्'** सदासद् है और सच-झूठ से परे है। सच और झूठ हमेशा-हमेशा से बदलते रहे हैं और बदलते रहेंगे, लेकिन **'सद्'** वह है, जो कभी नहीं बदलता।

ईश्वर की अदृश्यता में चेतन और आनन्द दो प्रमुख अंग हैं। ईश्वरीय चेतना और आनन्द, बहुत, महा, अति, अत्यन्त से परे अनन्त है। स्वयं में अदृश्य, अनन्त चेतना और अनन्त आनन्द के, अनन्त **समन्वय** से जो दृश्यमान होता है, उसे **'अनन्त सद्'** कहते हैं। यह दृश्यमान **'सद्'** जो अनादि-अनन्त और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का विषय है, इसे ही **'माया'** कहा गया है। सतत् परिवर्तनशील, दृश्यमान व मायिक कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड नित नूतन हैं। इस माया को ठगनी, नटनी, नरक का द्वार, नर्तकी न जाने क्या-क्या कहा गया ! जबकि, स्वयं में यह माया (जगत) ईश्वर ही है। ईश्वर का दृश्यमान अंग यह जगत यदि

'सद्' रूप में प्रकट न होता, तो ईश्वर की धारणा ही हम मानवों को न हो पाती।

अनादिकाल से भारत-भूमि में पारब्रह्म परमेश्वर की सत्ता की खोज का कार्यक्रम चल रहा है। बड़े-बड़े ऋषि, मनीषि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, तपस्वी, सिद्ध, प्रकाण्ड विद्वान, साधक इस खोज में निरन्तर लगे रहे हैं और लगे रहेंगे। भारतवर्ष का अन्तरंग तपोमय तथा आत्म-चिन्तन एवं ब्रह्म-चिन्तन से युक्त है। साधकों ने दृश्यमान जगत की विभिन्न, बहुमुखी, विविध साकार व निराकार विधाओं से उस अदृश्य परमात्मा की अनुभूति की। उस अनिर्वचनीय के बारे में बोला, सुना और चिन्तन-मनन किया। वैदिक काल में वेदों का प्रादुर्भाव हुआ और ईश्वर को, ईश्वर की इस सुकृति अर्थात् सृष्टि के प्रदर्शन में खोजने का प्रयास किया। प्रकृति के रहस्यों से ईश्वर की मान्यता हृष्ट, पुष्ट, तुष्ट हुई। वेदज्ञों ने इस दृश्यमान सृष्टि में परमात्मा को खोजने और पाने के प्रयास में चार वेदों की रचना की। ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्वेद के चार महावाक् प्रकट हुए—अहं ब्रह्मस्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानम् ब्रह्म, अयम् आत्मा ब्रह्म।

पारब्रह्म **परमेश्वर के बारे में** ज्ञान के अथाह भण्डार को प्रकट करके भी, वेद उस **ईश्वरीय सत्ता को 'नेति-नेति'** कह कर नतमस्तक हो गये। जो कुछ दृश्यमान है, वह किसी अदृश्य का आंशिक प्राकट्य है। बहुत कुछ इससे परे भी है। जिज्ञासुओं ने वेदों के ज्ञान में प्रभु के बारे में बहुत कुछ जान लिया। प्रभु के बहुत से चमत्कारिक रहस्यों और ज्ञान के अपार भण्डार का उद्घाटन वेदों द्वारा हुआ। वेदों ने दृश्य में खोजा, उन्होंने बहुत कुछ पाया। आज परिपक्व मेधा से विचार करने पर हम जान जाते हैं, कि वेदज्ञों ने अदृश्य सत्ता को दृश्यमान सृष्टि के असंख्यामी प्रदर्शन के कण-कण द्वारा अध्ययन किया। जिज्ञासुओं की जिज्ञासा इस दृश्यमान सद् प्राकट्य के पीछे छिपी अदृश्य सत्ता की अनुभूति के लिए अति व्याकुल हो उठी।

वेदों ने विश्व में अध्यात्म ज्ञान की नींव रखी। आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान के लिए वेदों की खोज और अनुसंधान, आधार बना। इस सब कुछ अनेक नाम-रूपात्मक, अस्थिर व क्षण-क्षण परिवर्तनशील सृष्टि के पीछे कोई एक अदृश्य तत्त्व ऐसा है, जो परम स्थिर और अपरिवर्तनीय है। वह क्या है, कैसा है? वहाँ से दर्शन (दर्श+न) रूप में **'सद्'** की खोज विकसित हुई। इस विकास को वेदान्त कहा गया। वेदान्ती, वेदाग्रज्ञ हुए। प्रभु के दर्शन के लिए दृश्यमान चराचर जगत से आँखें मूँद कर मनीषि पारब्रह्म परमेश्वर की अनुभूति के प्रयास में समाधिस्थ हो गए। ईश्वर की मान्यता बाह्य दृष्टि से अन्तः चक्षुओं के अनुभवों की ओर मुड़ गई। दृश्य के पीछे छिपे अदृश्य की अनुभूति को **'दर्शन'** कहा गया। ब्रह्मतत्त्व की खोज में वेदान्त का दर्शन अगला सोपान हुआ।

वेदान्त, वेदों का अन्त नहीं था। वेदों से इस प्रदर्शन के बारे में बहुत कुछ मिला, जो प्रदर्शन के नेपथ्य में छिपी अदृश्य सत्ता के विषय में आधारगत जानकारी थी। मनीषियों ने प्रदर्शन से ध्यान हटाकर दर्शन की ओर यात्रा प्रारम्भ की। हज़ारों वर्षों तक मनीषियों, दार्शनिकों ने समाधि-ध्यान द्वारा परिवर्तनशील दृश्यमान सृष्टि के पीछे छिपी स्थिर, अपरिवर्तनीय अदृश्य सत्ता की अनुभूति करने का प्रयास किया। वे एक निर्णय पर पहुँचे।***'जो पिण्डे, सो ब्रह्माण्डे'*** दृष्टा ही दृश्य है (Seer is the scene)। अर्थात् मेरी मानसिकता ही, बाहर देह सहित जगत के रूप में समय-समय पर दृश्यमान होती है।

ऋषि-मनीषियों ने समाधिस्थ हो कर पाया, कि जिस समय मानस जैसा होता है, उस समय तदनुसार देह व जगत प्रकट होता है। प्रश्न उठा, कि मानस कब, कैसा होगा, क्या किसी के हाथ में है? यह डिज़ाइन, निर्माण, पालन और संहार कौन कर रहा है? एक ही दृश्य दस व्यक्तियों को पृथक्-पृथक् लगता है, क्योंकि जैसा कोई स्वयं है, उसके लिए उसकी देह व जगत वैसा ही है। एक ही भीतर (मन) सबके लिए अलग-अलग हो गया। इसलिए एक ही बाह्य दृश्य सबके लिए

अलग-अलग हो गया और एक ही के लिए एक ही दृश्य कभी कैसा, कभी कैसा हो गया। क्योंकि मानसिकता समय, स्थान, स्थिति के अनुसार पृथक्-पृथक् होती है। दर्शन में मनीषियों, साधकों ने 84 लाख मानसिकताओं का दर्शन किया, जिनके अनुसार समय-समय पर देह सहित जगत प्रकट व लीन होता रहता है। मानसिकता का परिवर्तन देह व जगत का परिवर्तन है और यह प्रकाट्य सतत् परिवर्तनशील व अस्थिर है। दृश्यमान जगत में जो भी प्रकाटय है, वह **'सद्'** है। प्रत्येक दृश्य का अपना सद् है। जो दृश्यमान है वह भी '**तू**' (परमात्मा) है, जो अदृश्य है वह भी '**तू**' है और दृश्य एवं अदृश्य का संगम भी **'तू'** है। उस परम विरक्त, ठोस-घन-शिला परमात्मा की खोज में जो कुछ ज्ञान वेदों द्वारा लब्ध हुआ, वह सद्-चिन्तन था, इसलिए वेद पूजनीय हैं। ध्यान-समाधि द्वारा दृश्य-चिन्तन प्रारम्भ हुआ।

जिज्ञासुओं की आत्म-ज्ञान की पिपासा तीव्रतम हो गई और ब्रह्मानुभूति का जनून चरम सीमा पर पहुँच गया। एक **'मैं'** की इतनी मानसिकताएँ? यह **'मैं'** क्या है? **'मैं'** कौन हूँ? **'मैं'** दृश्यमान नहीं है, **'मैं'** स्वयं में दर्शन है। **'तू'** भी अदृश्य है? यदि **'मैं'** हूँ, तो **'तू'** क्या है? दृश्यमान के कण-कण में प्रभु की मान्यता एवं अनुभूति, भक्ति का मूल है। जिज्ञासा उठी, कि भीतर-बाहर का स्थिर और अपरिवर्तनीय मूल कहाँ है? खोज तो वास्तव में उसी की करनी है? यह दृश्यमान साकार-निराकार जगत जो अनन्त रूपों में साकारित, निराकारित एवं प्रकारित है, वह तो उसका भृकुटि विलास मात्र है और उस अदृश्य स्वरूप का अंश मात्र ही है। ईश्वर तो प्राप्त और प्राप्य, उपलब्ध और लब्ध दोनों से परे है। काल और अकाल का स्वामी कौन है? काल और अकाल जिसके संकेत पर क्रियान्वित होते हैं, वह महाकाल कहाँ है, कौन है? मैं मानव हूँ, मुझमें मान्यता की अद्भुत क्षमता है। मान, मानकर **'मैं'** (जीवात्मा) जीव बनकर जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या कालचक्र में युगों-युगान्तरों से भ्रमित हो रहा हूँ। जिज्ञासुओं के मन में भाव उठा, कि उस अदृश्य सत्ता

को भी मान कर चलें। उससे नाता बनाकर मैं उसी प्रकार प्रेम करूँ, जैसे मैंने संसार में विभिन्न सम्बन्धों और मान्यताओं का जाल फैलाया और जीव-सृष्टि में फँसा। शायद वह कृपालु मेरी मान्यता के अनुसार प्रकट होकर अपना रहस्य स्वयं बता दे। **वहाँ से साकार रूप में इष्ट की उपासना और भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ।**

तू मानव है, तुझे ईश्वरीय चेतना-युक्त बुद्धि मिली है। इस उत्कृष्टतम बुद्धि द्वारा जान ले, कि तेरी देह और जगत के सम्पूर्ण दृश्यमान प्रदर्शन में तू कुछ नहीं जानता। जो तू जानता है, तू वही क्यों जानता है? यह तू नहीं जानता। जो तू नहीं जानता, वह क्यों नहीं जानता ? यह तू नहीं जानता। उस परमतत्त्व को तू अपनी तुच्छ सी सीमित बुद्धि द्वारा नहीं पकड़ सकता; इसलिए इस बुद्धि का समर्पण कर दे। इतना जानकर, मान भी ले। कभी-कभी बुद्धि जान जाती है, लेकिन मन नहीं मानता। अपने मन को भी मना ले, कि तू वास्तव में कुछ नहीं जानता। इस जान्यता और मान्यता को अपने इष्ट के चरणों में समर्पित कर दे। फिर उस इष्ट के प्रेम में दीवाना होकर, केवल उसे ही अपना सर्वस्व मान ले। उसे तू जान नहीं सकता, उसे पहले मान ले, उसकी कृपा होगी, तो वह तुझे अपना स्वरूप स्वयं बताएगा:–

''सो जानई जिस देहु जनाई,
जानत तुम्हीं, तुम्हीं होई जाई।''

यहाँ से भक्ति, उपासना और नाम-रूप में साकार इष्ट की मान्यता का शुभारम्भ हुआ। भक्तों ने दृश्यमान सृष्टि के किसी भी अंश, वस्तु, पदार्थ, नदिया, सागर, नक्षत्र, वृक्ष, प्राणी और विधा को प्रभु मानकर उसकी उपासना की। भक्तों ने दृश्य में दर्शन को प्रस्थापित किया, कि मैं पीपल के वृक्ष को नारायण मानता हूँ। सुबह-शाम उसकी परिक्रमा धूप-दीप, नैवेद्य आदि अर्पण करते हुए, ध्यान द्वारा ईश्वरत्व की समस्त विभूतियों के उसमें दर्शन किए। उपासना और भक्ति की परिपक्व स्थिति में वह विधा ही ईश्वरत्व की अनुभूति करा देती है। भक्ति की

पराकाष्ठा पर सांसारिक भौतिक पदार्थों, प्राणियों, विधाओं के साथ ध्यान-समाधि का महत्त्व भी नहीं रहता। दृश्य का रहस्य भी प्रभु जनवा देंगे, दृश्य के पीछे अदृश्य का दर्शन भी हो जाएगा। प्रभु **'दृश्य'** और **'दर्शन'** से अतीत में भी ले जाएंगे और वहाँ आनन्द ही आनन्द होगा। आनन्द अभावमय है, वहाँ अपने इष्ट के अतिरिक्त किसी के प्रति कोई भाव नहीं रहता। **भक्ति का सुफल, मात्र आनन्द की अनुभूति है**। हम भारतीयों को गर्व होना चाहिए, कि हमारे पास हमारे पूर्वजों व अध्यात्म सागर के गहनतम रत्नों, साधकों, मनीषियों, तपस्वियों, तत्त्वज्ञों, ऋषियों, मुनियों एवं भक्तों की विराट परम्परा है।

सारांश में परम तत्त्व तो असीम है और वह किसी सीमित की समस्त सीमाओं से परे है। वेदों ने **'नेति-नेति'** कहा अर्थात् उन्होंने जो कुछ जाना, उसके आगे बहुत कुछ था। वेदों की समस्त जानकारी परम तत्त्व के बारे में ही है। मानस में बचपन, युवावस्था की मानसिकता और उसकी अनुभूतियाँ सुरक्षित रहती हैं। दृश्यमान जगत में प्रत्येक कण ईश्वरीय है। भक्ति, दृश्य और दर्शन से परे की अनुभूति है। उस अदृश्य सत्ता को दृश्य की किसी विधा, प्राणी, पदार्थ में इष्ट रूप में मानकर, दर्शन द्वारा उसमें ईश्वरत्व के गुणों की अनुभूतियों का प्रत्यारोपण किया। भक्तों ने व्यष्टिगत दृश्य में समष्टिगत दर्शन की अनुभूति का प्रत्यारोपण करते हुए, उपासना की दृढ़ता एवं परिपक्वता द्वारा सिद्धि प्राप्त की।

देश, काल, धर्म, कर्म, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुणों से परे उस मायातीत और ब्रह्मण्डातीत अदृश्य सत्ता की अनुभूति ही मानव-देह व मानव-जीवन का अर्थ एवं एकमात्र लक्ष्य है। जो कुछ सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में है, वह सब कुछ तत्त्व-रूप में एक मानव-देह में है। एक मानव-देह युगों-युगान्तरों की सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि का संघनित स्वरूप एवं प्रतिनिधि है। साथ ही एक मानव-देह परमात्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा की उन समस्त असंख्य अदृश्य व बहुआयामी कलाओं के

दर्शन का प्रतिनिधित्व भी करती है, जिनका असंख्यामी प्रदर्शन यह समस्त दृश्यमान सृष्टि है।

हे जीवात्मा ! तू मानव-देहधारी जीव नहीं, बल्कि उस अदृश्य स्रष्टा (परमात्मा) की दृष्टा विधा है, जो उस स्रष्टा की भाँति अदृश्य है। तुझे मानव-देह रूप में एक अद्‌भुत व परम रहस्यमयी सुकृति दी गई है, जिसका तनिक अवलम्बन लेकर तू इस समस्त दृश्यमान प्रपंच का रसास्वादन कर सकता है। साथ ही अपने स्रष्टा परमात्मा का दिग्दर्शन और उसकी समस्त अदृश्य कलाओं का दर्शन भी कर सकता है। यह मानव-देह क्षण-भंगुर और नश्वर है तथा सतत् परिवर्तनशील है। यह देह एक दिन थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं तथा **यह तेरी नहीं है।** जब है, तब जगत सहित **तेरे लिए है।** तेरे लिए क्यों है, जब तू यह जानना चाहेगा, तो **'मैं** (परमात्मा) स्वयं सद्‌गुरु के रूप में तेरे सम्मुख जनवाने के लिए प्रकट हो जाऊँगा। सम्पूर्ण चराचर निराकार-साकार सृष्टि का एक स्रष्टा तथा एक दृष्टा है। दोनों अदृश्य हैं। **अदृश्य में जहाँ तक स्रष्टा और दृष्टा का भाव है, वहाँ तक दोनों में द्वैत है अन्यथा अद्वैत है।** अदृश्य में परमात्मा व जीवात्मा के इस द्वैत तथा अद्वैत के रहस्य को मैं प्रथम बार इष्ट कृपा से अनावृत कर रहा हूँ।

ब्रह्मात्मा स्वयं में ठोस-घन-शिला है। सृष्टि के सृजन एवं दृष्टव्य के लिए वह ब्रह्मात्मा ही परमात्मा और जीवात्मा दो स्वरूप लेता है। परमात्मा और जीवात्मा दोनों क्रमशः मात्र स्रष्टा और दृष्टा ही नहीं हैं और भी बहुत कुछ हैं। अन्यथा जो कुछ भी है, वहाँ दोनों में द्वैत नहीं है। प्रपंच में सृष्टि की रचना, पालन और संहार होता है और प्रपंच में ही पूर्ण सृष्टि का विलय तथा पुनः प्रकाट्‌य होता रहता है। प्रपंच का रसास्वादन करने के लिए जीवात्मा का प्रतिनिधि मात्र, **'मैं'** शब्द में प्रकट होता है। जब प्रतिनिधि को अपनी स्मृति आती है, तो प्रतिनिधित्व द्वारा उसे आत्म-तत्त्व एवं परमात्म-तत्त्व के साथ ब्रह्मात्मा

की स्मृति भी आती है। वहाँ प्रपंच समाप्त हो जाता है और परमात्मा और जीवात्मा दोनों अपने स्वरूप में आ जाते हैं।

ब्रह्मात्मा अदृश्य है। स्रष्टा और दृष्टा बनने के लिए परमात्मा व जीवात्मा में अदृश्य में ही द्वैत सा होता है, अन्यथा दोनों में अद्वैत ही है। दृष्टा, जीवात्मा का प्रतिनिधि है और प्रतिनिधि जीवात्मा का है। संहार के बाद जब उसे आत्म-तत्त्व की स्मृति आती है, तो उसके बाद परमात्मा और जीवात्मा एक ही हो जाते हैं। **'स्मृति'** स्वयं में भेद रहित, अभेद तत्त्व है। प्रपंच के सृजन एवं दृष्टव्य के लिए हुआ द्वैत भी, स्वयं में भेद सा है। अभेद व अद्वैत तत्त्व में स्रष्टा और दृष्टा का भेद सा, मात्र खेल में, खेल के लिए है। दृश्यमान प्रपंच स्रष्टा परमात्मा द्वारा प्रेरित एवं संचालित खेल मात्र है। जितना खेल है, वह पंच-महाभूतों **में,** पंच-महाभूतों **का,** पंच-महाभूतों **के द्वारा** है। जो कुछ खेल के अन्यथा है, वह अदृश्य है। वास्तव में अदृश्य में जो कुछ है, वह खेल ही नहीं है। पंच-महाभूतों में **'सब कुछ'** के दृश्यमान खेल से, अदृश्य की स्मृति आती है। स्मृति उस स्वरूप की है, जहाँ परमात्मा और जीवात्मा में कोई भेद नहीं है। जीवात्मा मात्र दृष्टा है, जिसका प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द में प्रकट होकर इसका रसास्वादन करता है।

जगत की माया दो अदृश्यों (चेतन और आनन्द) के समन्वय से प्रकट हुई है। इसलिए इसके दो **'सद्'** हैं, यह माया **'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'।** माया के ये दोनों सद् स्वयं में परिपूर्ण होते हुए, एक दूसरे के पूरक हैं। माया के इन दोनों सदों (सब कुछ है, है कुछ नहीं) का सदा-सर्वदा पृथक्-पृथक् रसास्वादन एवं दोनों को मिलाकर अपने विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति के लिए, एक दृष्टा जीवात्मा के दो प्रतिनिधि हैं। पहला, **'मैं'** शब्द है और दूसरी, एक वस्तु **'भस्मी'** है। **'मैं' 'सब कुछ है'** का होना प्रमाणित करने वाला शब्द ब्रह्म है और **'भस्मी' 'कुछ नहीं है'** की प्रतिनिधि है। **'सब कुछ है'** प्रभु की **चेतना** और **'है कुछ नहीं'** उसके **आनन्द** का द्योतक है। शास्त्र ने **'है कुछ नहीं'** को

अभावमय आनन्द कहा है अर्थात् जहाँ किसी भी वस्तु, पदार्थ एवं साकार-निराकार मायिक जगत की किसी भी विधा का भाव न हो, वहाँ आनन्द ही आनन्द होता है।

अदृश्य में अनन्त चेतना एवं अनन्त आनन्द का अनन्त समन्वय दृश्यमान सृष्टि के **'सद्'** प्रकाट्य के लिए होता है। अतः दृश्यमान सृष्टि **'सद्',** अलौकिक एवं आलोकित है। इसके अवलोकन के लिए दृष्टा का आलोकित होना आवश्यक है। यदि दृष्टा आलोकित नहीं है, तो अवलोकन अलौकिक नहीं, लौकिक होगा और दृश्यमान **'सद्'** सृष्टि की प्रतीति **'असद्'** होगी। समस्त प्रदर्शन अलौकिक है। **'मैं'** सन्देह (मैं देह हूँ) में, जब नाम के साथ गुण्ठित एवं कुण्ठित देह के साथ तद्रूप सा हुआ, तो अलौकिक से लौकिक हो गया। चेतना से अवचेतना में आकर अपना विशुद्ध स्वरूप भूलकर, भूल गया। आनन्दमय अलौकिक सृष्टि ही सुख-दुःख पूर्ण लौकिक हो गई, क्योंकि जीव का दृष्टिकोण लौकिक हो गया। मिथ्या लोकाचार में उसे माया असद् एवं ठगनी नज़र आने लगी। अलौकिक में विचरण होता है और लौकिक लोकाचार में जीव, मानव-देह धारी होते हुए भी, पशुवत् चरने लगा। तनाव, चिन्ताओं, विक्षेप में भरा ईश्वरीय दृश्यमान प्रकृति की छटाओं के रसास्वादन से वंचित हो गया।

'मैं' शब्द ब्रह्म है, जो एक दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधि है, स्वयं में जीवात्मा नहीं है। **'मैं'** शब्द प्रकट होकर आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व प्रकट करे, इसके लिए एक मानव-देह जो, जब, जहाँ, जैसी भी है, उसका जाग्रत होना आवश्यक है। अन्यथा **'मैं'** शब्द में आत्मतत्त्व का प्रतिनिधित्व प्रकट नहीं हो सकता। एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेकर प्रकट होने पर **'मैं'** उस मानव-देह के जगत सहित **'होने'** को प्रमाणित करता है। दृष्टा आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि जो, जब, जहाँ, जैसी जाग्रत नाम-रूप में कुण्ठित-गुण्ठित मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेकर **'मैं'** शब्द में प्रकट होते हुए उसी देह तथा उसके छोटे से

स्व-कल्पित निजी जगत के निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में खो गया और अपना स्वरूप भूल गया। अलौकिक का आलोक आच्छादित हो गया, वह देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूप सा होकर मिथ्या व लौकिक लोकाचार में फँस गया।

देह में, देह का प्रतिनिधि **'रूप'** देह के अतिरिक्त एवं ऊपर से रखे गए नाम से गुण्ठित एवं कुण्ठित हो चुका था। **'मैं'** ने उसके साथ लगकर उसकी सीमितता एवं संकुचितता को प्रमाणित किया और उसी में समाहित हो गया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। न मानव-देह स्वयं में सीमित व्यष्टि थी और न **'मैं'** संकुचित था। मानव-देह जब भी है, जगत सहित है। नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित होने के कारण उसने चाहे जगत को अपने से पृथक् मान लिया हो, लेकिन **'मैं'** न केवल एक देह का, बल्कि उस देह सहित सम्पूर्ण जगत का होना प्रमाणित करती है। उस समय के भूत, भविष्य, वर्तमान, समस्त चराचर प्राणी जगत एवं उनसे सम्बन्धित समस्त विधाओं का होना, उस एक देह के होने से होता है। हज़ारों, लाखों वर्षों का इतिहास और भूगोल एक मानव-देह के होने से है। अन्यथा भूत, भविष्य, वर्तमान भी नहीं हैं।

एक जाग्रत मानव, व्यष्टि सहित समष्टि जगत का प्रतिनिधित्व करता है तथा अपने जगत का प्रतिनिधि उस देह सहित, वह मानव ही होता है। क्योंकि एक होगा तो अनेक होंगे। एक मानव-देह जो जीवित व जाग्रत हो, उसके जगत सहित होने का प्रमाण **'मैं'** शब्द द्वारा ही होता है। उसके जगत में कोई मृतक, मूर्च्छित एवं सुषुप्त भी हो सकता है। वह व्यक्ति जगत सहित नहीं था, उसकी मानसिकता कुण्ठित थी। एक 'अतिरिक्त' **नाम** द्वारा अधिगृहीत होने के कारण मानव-देह, मानव-देह से ही प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, छल-कपट, लगाव, अलगाव आदि में फँस गई। मैं मानव-देह हूँ, यह परिचय, पहचान के लिए पर्याप्त नहीं था। जगत व्यवहार एवं ईश्वरीय क्रीड़ा के रसास्वादन के लिए नाम आवश्यक था। कृपया एकाग्र करिएः—

एक मानव-देह जब उठती है, तो जगत सहित प्रकट होती है। निद्रा में जगत सहित अप्रकट हो जाती है। एक मानव-देह युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण चराचर दृश्यमान प्रदर्शन की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। **'मैं'** शब्द एक जाग्रत मानव-देह के बिना प्रकट नहीं हो सकता, साथ ही देह के जगत सहित **'हैत्व'** (होने) का प्रमाण **'मैं'** शब्द है। **'मैं'** शब्द लगे बिना एक मानव-देह सहित समस्त प्रदर्शन की प्रस्तुति का शुभारम्भ नहीं हो सकता। मानव-देह पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित **है** और पंच-महाभूतों द्वारा पालित **है** तथा समय आने पर अन्ततः पंच-महाभूतों में ही विलय **होगी।** वह जो निर्मित और पालित है, वह एक नाम से कुण्ठित व गुण्ठित है। यहाँ **'मैं'** अपना विशुद्ध प्रतिनिधि भूल गई। **'मैं'** उस एक नाम-रूप की प्रतिनिधि बन कर असद् जीव-सृष्टि में फँस गई।

'भस्मी' उस एक मानव-देह के चराचर जगत सहित विलय होने का प्रतिनिधित्व करती है, जो पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित **थी,** पंच-महाभूतों द्वारा पालित **थी** और पंच-महाभूतों में विलय हो **गई** है। **'भस्मी'** के प्रकाट्य में **था** और **था** मिलकर **अथाह थाह** हो गई। **'भस्मी'** विशुद्ध विभूत्यातीत विभूति विरक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। भस्मी त्रिकाल के विलय की प्रतिनिधि है। हे जीवात्मा ! तू अपने प्रतिनिधित्व के **'मैं'** शब्द में प्रकट होते ही नाम-रूप में गुण्ठित व कुण्ठित उसी मानव-देह (जो, जब, जहाँ, जैसी, जाग्रत व जीवित है) की भस्मी के साथ आत्मसात् हो जा। भस्मी स्वयं में अविशेष है, अनाम व अरूप है। **'मैं'** भी एक नाम-रूप की नहीं है। अतः स्वयं में अनाम व अरूप है। **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों देहातीत हैं। **'मैं'** तेरे **'सब कुछ है'** अर्थात् देह सहित चराचर जगत के होने का प्रमाण है और **'भस्मी'** तेरी देह के जगत सहित विलय होने का प्रमाण है। **'मैं'** लगे बिना तू सुषुप्त, मूर्च्छित अथवा मृतक होगा। जो जीवित व जाग्रत देह पंच-महाभूतों में विलय **होगी** उसका प्रमाण **'मैं'** है। सुषुप्ति और मूर्च्छा जीवित मानव-देह की

वे अवस्थाएँ हैं, जिनमें '**देह**' जाग्रत नहीं होती। मृत्यु मानव-देह की वह अवस्था है, जिसमें देह मृतक होती है तथा '**भस्मी**' मानव-देह की वह अवस्था है जिसमें देह ही नहीं होती अर्थात् सब कुछ सहित देह अब '**कुछ नहीं है**'।

माया, मिथ्या नहीं, **सद्** है। जो दृश्यमान है, वह जगत है और माया है। जो मायिक जगत है, वह दृश्यमान है। '**सद्**' माया के रसास्वादन के लिए इसके दोनों सदों को लेना होगा। सम्पूर्ण ईश्वरीय अभिव्यक्ति जो मायिक है, इसके दोनों सदों (**'सब कुछ है', 'है कुछ नहीं'**) में '**है**' तत्त्व (अस्ति) समान है। अस्ति '**है**' और नास्ति, '**नहीं है**', दोनों की सन्धि के लिए नास्ति को पहले लेना होगा, तभी सन्धि होगी। **नास्ति+अस्ति=नास्त्यास्ति। यह नास्ति, समस्त अस्तियों और हस्तियों की अस्थि (भसम) है।** शैशव से शव तक व्यक्ति की प्रत्येक अवस्था (सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, मृतकावस्था, रुग्ण, स्वस्थ, अमीर, गरीब, बाल, युवा, वृद्ध आदि-आदि) वस्तुतः देहभाव (मैं देह हूँ) की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति की एक ही अवस्था '**भसम**' ऐसी है, जो देहभाव की अभिव्यक्ति नहीं है। अतः भसम, व्यक्ति की समस्त सीमाओं का उल्लंघन करने वाली स्थायी देहातीत अवस्था है। देहभाव (मैं देह हूँ) की अभिव्यक्ति की समस्त अवस्थाएँ '**भसम**' में सिमट जाती हैं। नास्ति और अस्ति की सन्धि करना और इसमें विचरना ही मानव देह का यथार्थ है। '**सब कुछ है**' (अस्ति) अनन्त चेतना से मिलता-जुलता है और '**है कुछ नहीं**' (नास्ति) अनन्त आनन्द का आभास है। दोनों '**है**' हैं और अपनी-अपनी जगह हैं। अतः '**है**' (सब कुछ है) और '**है**' (है कुछ नहीं) का पारस्परिक समन्वय इस जगत का मायिक प्राकट्य है।

जब अनन्त चेतना और अनन्त आनन्द में अनन्त समन्वय होता है, तो वहाँ ब्रह्माण्ड के प्रकाट्य से पूर्व अदृश्य में ही एक दैवीय घटना होती है, कि ईश्वर की सभी अदृश्य बहुआयामी कलाएँ जाग्रत हो जाती हैं। उन कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन यह मायिक जगत है। जब प्रदर्शन

है, तो **'सब कुछ है'** और जब नहीं है, तो **'है कुछ नहीं'।** लेकिन प्रदर्शन और प्रकाट्य से कलाएँ और अधिक हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट होती हैं। ईश्वर स्वयं के रसास्वादन के लिए स्वान्तः सुखाय, स्वतः अपनी कलात्मकता इस सम्पूर्ण मायिक जगत के प्रदर्शन के रूप में प्रकट करता है। प्रदर्शन न भी हो, तो अदृश्य में कलाएँ तो रहती ही हैं। ईश्वर स्वयं में बाल, युवा, वृद्ध आदि अवस्थाओं से परे है। **उसकी कलाएँ सदा-सदा नवीन हैं तथा प्रदर्शन नित नूतन है।** संगीत कला, नृत्य कला, वास्तुकला, शिल्प कला, चित्रकला, वक्तव्य कला में कोई मानव पारंगत है, लेकिन जब तक उनका प्रदर्शन नहीं होगा, तब तक उनकी कलाओं का ज्ञान किसी को नहीं होता। जो प्रकट हुआ, वह प्रदर्शन दृश्य रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है और अप्रकट, अदृश्य रहता है। अतः **'सद्'** प्रकट है और आनन्द व चेतन अदृश्य रहते हैं।

यह माया ठगनी, नर्तकी और फँसाने वाली तब बनी, जब जीव मात्र **'सब कुछ है'** के पीछे अन्धाधुन्ध भागने लगा और **'है कुछ नहीं'** को जाने-अनजाने उपेक्षित कर दिया। महादुर्भाग्यवश हमने **'है कुछ नहीं'** पर आजीवन ध्यान ही नहीं दिया और जाने-अनजाने उपेक्षित किया। इसलिए हमारे जीवन में आनन्द लुप्त हो गया और हम, सब कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ की क्षणिक व अस्थाई सुख-दुःखमयी मानसिकता में विचरने लगे। हमारा आनन्दमय मानस रुग्ण (Sick) हो कर **'मानसिकता'** बना और चेतनामयी बुद्धि अवचेतना में भटकने लगी। मानव-देह व जीवन एक ऐसा सार्थक व सारगर्भित प्रश्न है, जिसका अर्थ या उत्तर हम मानवों को होश सम्भालते ही प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखा दिया है। प्रत्येक मानव के सम्पूर्ण जीवन का और सबके सम्पूर्ण जीवन तथा जीवनों का सार्थक उत्तर है **'है कुछ नहीं' (भसम)।** प्रभु ने प्रत्येक मानव को एक सुनिश्चित जीवन-काल देते हुए, जीवन का समय उसके लिए अनिश्चित कर दिया है, क्योंकि जीवन की अवधि गुप्त रखी है।

'मृत्यु' किसी भी स्थान तथा किसी भी स्थिति में हो सकती है, यह प्रत्येक मानव जानता है और मानता भी है। लेकिन फिर भी देह व जीवन में विभिन्न भविष्यों के लिए अपने कार्यक्रम बनाने और असंख्य चाहतों में घिरा रहता है। जीते जी मरना उसकी नियति है और हर जन्म में मृत्यु फिर भी भविष्य बनकर सिर पर लटकती रहती है। सम्पूर्ण मानव-जीवन का एक ही **'अर्थ'** है, वह है उसकी डेढ़-दो किलो भस्मी। अपनी भस्मी किसी ने कभी नहीं देखी। तेरे समस्त पाने, खोने, होने, बनने-बनाने, करने-करवाने का उत्तर यही **'भस्मी'** है। यह **'भस्मी'** जो **'कुछ नहीं है'** प्रकट तब होती है, जब तेरी देह सहित समस्त चराचर जगत तेरे लिए पंच-महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य हो जाता है। अन्ततः जो होना है, वह पहले से तय है। यदि तू **'कुछ नहीं है'** को निद्रा से उठते ही पहले पकड़ ले, तो दिनभर **'सब कुछ'** और जो कुछ होगा या नहीं होगा, उसका रसास्वादन करेगा। यह **'कुछ नहीं'** सबका **एक ही है** और **'सब कुछ'** अलग-अलग है। इसलिए सब तुझसे और तू सबसे लगाव-अलगाव में लगा रहता है। यहाँ जीव प्रारब्ध, काल-बन्धन और कर्म-बन्धन की अन्तहीन श्रृंखलाओं में जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या काल-चक्र में भटकने के लिए वशीभूत हो गया। बार-बार हर जन्म में दैवीय चेतावनी मिली, कि 'देख वो किसी का शव अर्थी पर जा रहा है, देख उसे चिता में जलाया जा रहा है। उसकी पंच-महाभूतों की दृश्यमान देह अदृश्य होती हुई पंच-महाभूतों में विलय हो गई तथा मात्र डेढ-दो किलो भस्मी का ढेर हो कर रह गई। ऐसे ही तेरा भी होगा।' लेकिन महादुर्भाग्यवश सन्देह (मैं देह हूँ) के अज्ञानवश इसने अपना **'कुछ नहीं'** कभी नहीं चाहा।

अपनी मृत्यु आज तक किसी ने न देखी है और न देख सकता है और जब मृत्यु नहीं देखी, तो अपनी भस्मी देख पाना तो असम्भव ही है। अपने को सोया भी किसी ने नहीं देखा, लेकिन लोगों को सोए हुए, मूर्च्छित हुए और मरे हुए और भस्मी बने हुए देखा है। ऐसी ही मेरी भी

'भस्मी' बनेगी। यह **'भस्मी'** स्वयं में **'है कुछ नहीं' 'है'। यह भस्मी** 'देह' की **'हदें'** पार करके प्रकट होती है। भस्मी आज तक युगों-युगान्तरों में जो मर चुके हैं, उनका जीवन्त वर्तमान है, जो अभी हैं, उनका निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है और आने वाले समय में जो पैदा होंगे, उनका अतीत या भूत है। भस्मी स्वयं में अनाम और अरूप है। त्रिकालदर्शी योगी भस्मी के ज़रिए चारों युगों में विचरता है। उसकी देह सब हदें पार कर चुकी होती है। सबकी भस्मी **'एक'** एवं **'एक'** जैसी है और स्वयं में अविशेष है। हम सबकी भस्मी **'एक'** और सबकी **'मैं'** भी एक ही है। दोनों में नाम-रूप का कोई भेद नहीं है। **'मैं'** का मैं के लिए किसी से कोई झगड़ा नहीं होता। जब मानव-देह चराचर जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय होकर पूर्णतः अदृश्य हो जाती है, तब पूर्ण भस्मी प्रकट होती है। यह भस्मी शिव की विभूत्यातीत विभूति विरक्ति की दृश्यमान प्रतिनिधि है। भस्मी प्रपंचातीत (पंच-महाभूतों से अतीत) तत्त्वातीत तत्त्व है। भस्मी ब्रह्मण्डातीत ब्रह्मात्मा का, ब्रह्माण्ड में दृश्यमान प्रतिनिधित्व है। यह भस्मी कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के जगत रूपी सिनेमा गृह का श्वेत पर्दा है, जो विभिन्न चलचित्रों के चलते अदृश्य, अचल रहता हुआ उपस्थित रहता **है**। हे मानव ! अपनी भस्मी तूने कभी नहीं देखी और न देख पाने की सम्भावना है। अन्य लोगों की भस्मी को अपनी भस्मी की प्रतिनिधि समझ कर अवधारणा कर, कि मैं भस्मी हूँ। तुझे तेरे **'कुछ नहीं'** की अनुभूति **'सब कुछ'** के दौरान हो जाएगी। जीवन रूपी चलचित्र के चलते हुए तुझे अचल व अदृश्य पर्दे की उपस्थिति के आभास में अपने चेतन और आनन्द की अनुभूति हो जाएगी। **यदि तू अपने 'कुछ नहीं' (भस्मी) की अवधारणा करेगा, कि 'मैं भस्मी हूँ' तो यह 'खोना' पकड़ने से 'सब कुछ' स्वतः तेरे लिए 'होने' लगेगा। अन्यथा तुझे करना पड़ेगा।** तू **'खोना'** पहले पकड़ लेगा, तो तुझमें यही भाव रहेगा, कि प्रभु करवा रहे हैं, इसलिए हो रहा है। जगत की इस सम्पूर्ण माया में **'है कुछ नहीं'** तेरा **'खोना'** है और

जो **'सब कुछ है'** वास्तव में वह तेरा **'होना'** है। यहाँ तुझे करना कुछ नहीं है, तू खोने को पकड़ ले, तेरे लिए **'सब कुछ'** स्वतः होगा। तुझमें मान्यता की जन्मजात अद्वितीय प्रतिभा है। एक अनजान औरत को तूने माँ मान लिया। एक अनजान व्यक्ति को तूने पिता मान लिया और जगत का मिथ्या आडम्बर खड़ा करके जीव-सृष्टि में फँस गया। तू ये भी मान ले, कि मानव-देह तेरी नहीं है। यह क्षणिक, नश्वर व परिवर्तनशील है, जो तुझे तेरे शाश्वत्, स्थिर व अपरिवर्तनीय स्वरूप की अनुभूति के लिए दी गई है। यह देह उपहार नहीं है, इसे देने वाला जब चाहे वापिस ले लेगा। इसका रक्षक भी वही है और भक्षक भी वही है।

विभिन्न भौतिक वैज्ञानिक क्षेत्रों (चिकित्सा, वनस्पति, प्राणी, परमाणु, भौतिकी आदि) में जितने अनुसंधान एवं अन्वेषण होते हैं, उनमें मानव-बुद्धि समर्पित नहीं होती, अति तीक्ष्ण एवं सतर्क हो जाती है। लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में जैसी भी मानव-बुद्धि है, उसका अपनी बुद्धि से ही पूर्णतः समर्पण प्रथम एवं अति अनिवार्य आवश्यकता है। आध्यात्मिक अन्वेषण में बुद्धि द्वारा, बुद्धि का समर्पण होने के बाद ही प्रविष्टि मिलती है। दृश्यमान सृष्टि के पीछे छिपी अदृश्य सत्ता की अनुभूति के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यकता है। इसमें मानव का इस विषय में पूर्णतः आश्वस्त होना आवश्यक है, कि आध्यात्मिक क्षेत्र अति विलक्षण एवं तीव्रतम बुद्धि की पहुँच से भी परे है। इसके बाद ही सदानुसंधान एवं सदान्वेषण सम्भव है। सदानुभूति मात्र कृपा साध्य है। ईश्वर का **'हैत्व'** (अस्तित्व) अदृश्य है। उसकी अदृश्यता का प्रमाण यह दृश्यमान साकार-निराकार सद् सृष्टि है। अन्ततः प्रभु की मान्यता एवं सर्व समर्पण अत्यावश्यक है। प्रभु की ओर उन्मुख होने के लिए तू उसे मान ले। तू जन्मों-जन्मान्तरों से उससे विमुख हो चुका है। तेरा ईश्वरीय मन **'जीवीय मानसिकता'** बन चुका है। जब तू प्रभु को मान लेगा, तो तेरा आनन्दमय मन अनाच्छादित होना शुरू हो जाएगा। उस (प्रभु) को चलकर मानना चाहेगा, तो करोड़ों जन्म भटकेगा, फिर भी

उसकी झलक तक नहीं पा सकेगा। तू उसे रूप में, अरूप में, साकार में, निराकार में जिसमें चाहे मान ले। तेरी तुच्छ संकीर्ण मानसिकताएँ हट जाएँगी। उसे सर्वस्व मानकर जब तू चलेगा, तो तुझे वही चलाएगा। हे मानव ! जब तेरी प्रभु में मान्यता इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाएगी, कि तुझे हर विधा में, हर घटना में, हर शय में, हर गति में, हर गतिरोध में, हर प्रतिरोध में ईश्वर ही ईश्वर नज़र आये, तो ईश्वर भी तुझे मानने लगेगा। एक नाम-एक रूप, एक नाम-असंख्य रूप, एक रूप-असंख्य नाम, असंख्य नाम-असंख्य रूपों में तेरा **'इष्ट'** (ईश्वर) ही जब तुझे नज़र आने लगे, तो वही माया का '**सद्**' है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 जून से 10 जुलाई 2011)

माया (चित्र)

(भाग - 2)

पारब्रह्म परमेश्वर **'ब्रह्मात्मा'** है और स्वयं में निर्विकल्प, इन्द्रियातीत, ठोस-घन-शिला, सच्चिदानंद सत्ता है। ब्रह्मात्मा स्वयं में न स्रष्टा है और न दृष्टा। उसमें अपनी कोई इच्छा नहीं है, लेकिन इच्छा-शक्ति है। उसकी इच्छा-शक्ति आद्याशक्ति माँ भवानी, इच्छुक बनकर उस परम विरक्त अभावमय मानस में एक भाव उत्पन्न करती है। **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** भाव के उठते ही ब्रह्मात्मा, अदृश्य में ही अपनी दो विधाओं (परमात्मा एवं जीवात्मा) में प्रकट हो जाता है। दोनों **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक दूसरे के पूरक हैं। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का सम्पूर्ण निराकार एवं साकार जगत उस परमात्मा की अदृश्य व असंख्य बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाओं में दृश्यमान, इस प्रदर्शन के रसास्वादन एवं दृष्टव्य के लिए स्वयं परमात्मा ही जीवात्मा का स्वरूप लेता है।

स्रष्टा परमात्मा महादृष्टा है, क्योंकि वह जीवात्मा (दृष्टा) का भी दृष्टा है। यह भावान्तर अद्वैत में द्वैत सा है। परमात्मा में सृष्टि के प्रकाट्य का भाव है और जीवात्मा में उस प्रकाट्य के दृष्टव्य का भाव है। परमात्मा में सृष्टि के निर्माण, पालन एवं संहार के प्रकाट्य की महाकला है, जो अदृश्य है। जीवात्मा दृष्टव्य की अदृश्य कला से सुशोभित है। परमात्मा की असंख्य बहुआयामी कलाएँ प्रदर्शन के लिए हैं और जीवात्मा की बहुआयामी कलाएँ, उसके यथा-तथ्य दर्शन एवं प्रशंसा के लिए हैं।

अदृश्य (परमात्मा) का प्रदर्शन अदृश्य (जीवात्मा) के लिए है। अतः उस सम्पूर्ण प्रदर्शन का दर्शन अदृश्य है, जो मात्र अनुभूतिगम्य है। सृजन, पालन एवं संहार की कला और उसको जैसा वह है, वैसा ही देखने की कला परमात्मा और जीवात्मा, दो विधाओं में प्रकट होती है।

साकार की स्वामिनी सुकृति माँ जगदम्बा है, जो पंच महाभूतों से साकार का निर्माण, पालन व संहार करती है। **प्रकृति प्रकार की रति है,** जो समस्त निराकार और साकार को असंख्य प्रकार देती है। माया में प्रदर्शन का सौन्दर्य है, कि निराकार और साकार को असंख्य प्रकार मिले हैं और समस्त प्रकार क्षण-क्षण, हर पल परिवर्तनशील हैं। प्रकारों का चमत्कार है, कि युगों-युगान्तरों से किसी मानव का चेहरा किसी से नहीं मिलता। यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति भी किसी से नहीं मिलती। साथ ही एक ही व्यक्ति की प्रकृति भी निरन्तर परिवर्तित होती रहती है और समय, स्थान एवं स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। भिन्नता **'प्रकृति'** की देन है। एक ही फल, फूल, वनस्पति, पशु, पक्षी, कीट आदि के असंख्य प्रकार हैं। **'प्रकृति'** आद्याशक्ति माँ भवानी की सहायिका है।

प्रकृति ने, न केवल बाह्य दैहिक दृष्टि से असंख्य प्रकार दिए हैं, बल्कि अदृश्य मानसिक दृष्टि से भी भिन्न-भिन्न प्रकार प्रदान किए हैं। स्वभाव, भाव, संस्कार, मान्यताएँ, सोच, विचार आदि किसी के, किसी से पूर्णतः नहीं मिलते। हरेक मानव की देह का दृश्यमान प्रकार पृथक् है, क्योंकि हरेक की अदृश्य प्रकृति व स्वभाव पृथक्-पृथक् हैं। अदृश्य प्रकृति दृश्यमान प्रकार के रूप में प्रकट हुई है। पंच निराकार महाभूतों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश से निराकारित और इन पाँचों के अद्भुत संगम से साकारित प्राणियों की चराचर सृष्टि असंख्य प्रकारों से प्रकारित होते हुए, सतत् परिवर्तनशील एवं गतिशील है। इस प्रदर्शन में निर्माण, पालन एवं संहार साथ-साथ होता है और निरन्तर चलता है। यह नहीं कि पहले निर्माण होता है, फिर पालन होता है और संहार होने के बाद

पुनर्निर्माण होता है बल्कि पुनर्निर्माण, संशोधन, संहार साथ-साथ होता रहता है। साकारों से साकारित, प्रकारों से प्रकारित और निराकारों से निराकारित समस्त दृश्यमान प्रदर्शन की प्रतिनिधि एक मानव-देह है। कृपया एकाग्र करिए:—

कोई भी प्रदर्शन जब स्थिर (Stand Still) हो जाता है, तो वह **'चित्र'** बन जाता है और प्रदर्शन का **'चलचित्र'** होना आवश्यक है। **'चलचित्र'** वह है, जो चले। यदि न चले तो **'चित्र'** है और दिव्यता में चले, तो **'विचित्र'** है। माया के इन तीनों स्वरूपों की प्रस्तुति जिस थाल या आधार पर होती है, वह अचल व स्थिर होता है। समस्त प्रस्तुतिकरण अथवा प्रदर्शन के पीछे का आधार अचल होता है। सिनेमा गृह में चलते चलचित्र के पीछे सफेद पर्दा (स्क्रीन) होता है। उसके बिना चलचित्र की प्रस्तुति सम्भव नहीं है। चलचित्र की प्रस्तुति के लिए पर्दे का **होना** एवं **अचल होना आवश्यक है।** साथ ही चलचित्र के चलने के दौरान पर्दे का **अदृश्य** होना भी अति आवश्यक है। पर्दा भी नज़र आए और चलचित्र भी हो, तो वह **'विचित्र'** होगा, दिव्य होगा। पर्दा अदृश्य होगा, तो चलचित्र दृश्यमान होगा और **'चलचित्र'** अदृश्य होगा, तो पर्दा दृश्यमान होगा। यह माया के खेल का अद्भुत एवं परम रहस्यात्मक **'सद्'** है। जो भी चलचित्र होता है, वह पहले से अंकित (Recorded) होता है और चलचित्र देखते समय **'मैं'** यह मान कर चलता हूँ, कि यह पहले से अंकित (Recorded) फिल्म देख रहा हूँ। चाहे किसी को अच्छा लगे या बुरा प्रत्येक चलचित्र, पहले से बना-बनाया (Recorded) ही होता है। प्रत्येक रील पहले से अंकित (Recorded) एवं निराकार होती है। पर्दा उसे विभिन्न आवाज़ों के साथ साकार में रूपान्तरित करते हुए प्रस्तुत करता है।

जो प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ है, उसका अन्त होना आवश्यक है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का समस्त साकार-निराकार जगत अपने समस्त प्रकारों सहित, उस अदृश्य परमात्मा की स्वयं में अदृश्य बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों

का नित नूतन निर्माण, पालन और संहार उसका भृकुटि विलास मात्र है। प्रकाट्य रूप प्रदर्शन की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। **इनमें सर्वोपरि संहार है।** संहार को आत्मसात् किए बिना, निर्माण व पालन के प्रकाट्य का रहस्य-दर्शन नहीं होगा। क्योंकि जब यह प्रदर्शन **'है'** तो **सब कुछ है**, लेकिन **'है कुछ नहीं'** अर्थात् जो है, वह **'कुछ नहीं है'**। जीवात्मा ने **'है, कुछ नहीं'** का पूरा अधिग्रहण किया हुआ है अर्थात् जीवात्मा **'कुछ नहीं'** का स्वामी है। इस स्वामित्व के बिना जीवात्मा प्रदर्शन का दृष्टा नहीं बन सकता। **'सब कुछ'** का स्वामी मात्र परमात्मा है।

जीवात्मा स्वयं में इस मायिक प्रदर्शन के सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से मुक्त, त्रिगुणातीत है और यह मायिक प्रदर्शन त्रिगुणात्मक है। जीवात्मा स्वयं में त्रिगुणातीत होकर ही माया के तीनों गुणों का रसास्वादन कर सकता है। त्रिगुणातीत के लिए ही यह **'सब कुछ'** होते हुए भी **'है, कुछ नहीं'। 'है'** अपनी जगह है। जीवात्मा, इस **'है'** जो **'सब कुछ है'** से परे **'है',** उसका अधिपति एवं स्वामी है। **'है कुछ नहीं''** वस्तुतः है और **'सब कुछ'** की वास्तविकता है। साथ ही देखते समय **'सब कुछ'** के **'कुछ नहीं'** का ज्ञान एवं अनुभूति होते हुए भी रसास्वादन के लिए कुछ क्षण **'सब कुछ'** के साथ **तद्रूपता सी** भी अनिवार्य है। कृपया एकाग्र करिए :–

स्रष्टा अलौकिक है और दृष्टा भी स्वयं में अलौकिक व आलोकित है, लेकिन अवलोकित नहीं है, क्योंकि दोनों अदृश्य हैं। अदृश्य अलौकिक का जो अवलोकित है, उस समस्त दृश्यमान प्रदर्शन की प्रतिनिधि एक मानव-देह है। एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन अदृश्य जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए आवश्यक है। **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य ही स्रष्टा की समस्त बहुआयामी कलाओं तथा कलाओं के विविध प्रदर्शन के शुभारम्भ एवं उस जाग्रत मानव-देह के चराचर जगत सहित होने का प्रमाण है। मानव-देह स्वयं में प्रकाट्य है। यह जो, जब, जहाँ, जैसी भी होती है जगत सहित प्रकट होती है और जगत सहित

विलय हो जाती है। सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि प्रकाट्य है और अप्रकट से प्रकट होती है तथा अप्रकट में ही विलय हो जाती है। इसलिए **'सब कुछ है',** लेकिन **'है कुछ नहीं'।** जो सब कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ प्रकट है, वह अप्रकट से प्रकट है। अप्रकट एक ही है और प्रकाट्य में विविधता, गतिशीलता, भिन्नता एवं परिर्वतनशीलता है। जब तक कुछ प्रकट नहीं होता, तब तक अप्रकट का ज्ञान भी नहीं होता। प्रकट होने के बाद पता चला, कि क्या अप्रकट था और क्या अप्रकट हुआ। जिस अदृश्य व अप्रकट से कुछ भी, कभी भी प्रकट होते हुए, दृश्यमान हुआ वह सम्पूर्ण अप्रकट का प्रतिनिधित्व नहीं करता। क्योंकि असंख्य प्राणी एवं कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं, लेकिन अप्रकट एक ही है और समस्त प्रकाट्य उसका एक अंश मात्र भी नहीं है। असंख्य बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन होते हुए भी वह अदृश्य व अप्रकट स्वयं में पूर्ण ही रहता है। युगों-युगान्तरों से कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड प्रकट होते रहे हैं और होते रहेंगे; लेकिन सर्वशक्तिमान अदृश्य व अप्रकट सत्ता ज्यूं की त्यूं रहती है।

जीवात्मा इस सतत् परिवर्तनशील निर्माण, पालन व संहार के दृश्यों के प्रदर्शन का एकमात्र दृष्टा है। सम्पूर्ण प्रदर्शन की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप एक मानव-देह है। मानव-देह प्रभु की महाकलाओं का अद्भुत संगम है। यह **'बहुत कुछ है'** लेकिन **'है कुछ नहीं',** क्योंकि यह प्रकट होने से पहले नहीं थी और अप्रकट हो जाने के बाद उसी अप्रकट में विलय हो जाती है। यह देह क्षणिक एवं क्षण-भंगुर है, क्योंकि यह प्रदर्शन भी क्षणिक है। किसी भी कला का प्रदर्शन जो आरम्भ होता है, वह अन्त भी अवश्य होता है। अन्ततः पंच-महाभूतों में प्रकट प्रदर्शन का जो होगा, उसका प्रमाण एक पदार्थ है, जिसे **'भसम'** कहते हैं। यह पदार्थ दृश्यमान तब होता है जब पंच-महाभूतों की देह, जगत सहित पंच-महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य हो जाती है। विशेष देह और देह विशेष के अदृश्य होने पर प्रकट भस्मी स्वयं में अविशेष है।

जब तेरी देह है, तो **'सब कुछ'** के होते हुए तुझे **'कुछ नहीं'** (भसम) की अवधारणा इतनी हृष्ट-पुष्ट व तुष्ट करनी होगी, कि वह **'सब कुछ'** पर हावी हो जाए और जो **'सब कुछ है'** वह **'है कुछ नहीं'** की अनुभूति करा दे। भसम तेरे लिए तब है, जब तू है। अन्यथा तेरी भसम तेरी नहीं होगी। **है, कुछ नहीं** का ज्ञान एवं अनुभूति **'सब कुछ'** के होते हुए ही हो सकती है। क्योंकि जो ''सब कुछ'' **'है'** वह **था** **'कुछ नहीं'** और ''रहे**गा** कुछ नहीं'' और जब **'है'** तब भी **''कुछ नहीं''** है। दृश्यमान **'सब कुछ'** अदृश्य एवं अप्रकट से क्षणिक मायिक प्रकाट्य **'है'** और अदृश्य व अप्रकट में ही समाहित हो जाता है। तेरी जन्मपत्री और हाथ की रेखाएँ **'सब कुछ'** के बारे में हैं, **'है कुछ नहीं'** की अनुभूति होने पर ये प्रारब्ध और हस्त रेखाएँ अपना महात्म्य खो देंगी। तेरी देह आत्मामयी यथार्थ देह हो जाएगी। वह यथार्थ देह **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए अवलम्बन लेते ही अविलम्ब तुझ पर अवलम्बित हो जाती है। तभी 'सब कुछ है', 'है कुछ नहीं' का रहस्य तुझे हृदयंगम होगा।

'है, कुछ नहीं' जन्मपत्री और प्रारब्ध के लेखे-जोखे से परे है अर्थात् वह अंकन (Record) से परे है। कोई ज्योतिष और दृश्यमान जगत की कोई विधा वहाँ काम नहीं आती। इसी की महिमा है। यदि दृश्यमान प्रकाट्य में कुछ परिवर्तन अर्थात् विशिष्ट प्रकाट्य की चाहत है, तो वहीं से हो सकता है, जिससे अंकित (Recorded) चैनल प्रकट होती है और उसी में समाहित होती रहती है। यह समस्त महाब्रह्माण्ड प्रभु का यत्न है, इसमें स्वयं प्रयत्न करके हम इसके स्वतः भाव एवं सौन्दर्य को विखण्डित कर देते हैं। अक्षुण्ण व शाश्वत् से क्षणिक व नश्वर प्रदर्शन प्रकट होता है तथा अक्षुण्ण व शाश्वत् ही उसका दृष्टा है। शाश्वत् जीवात्मा अपनी शाश्वतता को हृदयंगम करते हुए नश्वर एवं क्षण-भंगुर पल-पल परिवर्तनशील प्रदर्शन का दृष्टा है। यह दृष्टा इस **'सब कुछ'** को सुनकर देखता है, चख कर देखता है, स्पर्श करके देखता है, सूंघ कर देखता है और देख कर देखते हुए हर विधा की वाह-वाह ही करता है।

प्रदर्शन का कण-कण प्रभु द्वारा निर्मित, संचालित, सम्पादित, प्रतिपादित एवं संवाहित है। यदि आप **'सद्'** की अनुभूति और प्राप्ति चाहते हैं, तो देह द्वारा, देह के **'सद्'** पकड़ने होंगे। सतत् परिवर्तनशीलता मानव-देह का अपरिवर्तनीय सद् है। देह सहित समस्त चराचर जगत का प्रकाट्य सच्चिदानन्द (सद्, चेतन, आनन्द) ईश्वर का चरित्र है। इसके दो **'सद्'** हैं, क्योंकि यह दृश्यमान जगत दो अदृश्यों, अनन्त चेतना (सब कुछ है) और अनन्त आनन्द (है कुछ नहीं) के अनन्त समन्वय से प्रकट अनन्त सद् है। दोनों के पृथक्-पृथक् दृष्टव्य के लिए जीवात्मा के दो प्रतिनिधि हैं—**'मैं'** और **'भस्मी'**। **'मैं'** शब्द जीवात्मा का प्रतिनिधि सा है। **'मैं'** प्रकट होते ही मानव-देह के **'नाम-रूप'** के साथ तद्रूप सा हो गया। **'मैं'** शब्द अवचेतना में **'नाम-रूप'** की मानव-देह के अवलम्बन के बिना प्रकट नहीं हो सकता। इसीलिए **'मैं'** शब्द विशुद्ध आत्मतत्त्व का मूल प्रतिनिधि नहीं रहा। कृपया एकाग्र करिएः—

'मैं' स्वयं जीवात्मा नहीं, जीवात्मा का प्रतिनिधि 'शब्द' है। जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द को प्रकट होने के लिए एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। कोई भी प्रतिनिधि विधा जिसका वह प्रतिनिधित्व कर रही है, उसके समकक्ष नहीं हो सकती। साथ ही उसे प्रतिनिधित्व बदलने का अधिकार नहीं है। जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द ने प्रकट होने के लिए एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लिया और प्रकट होकर **'मैं'** उस व्यक्ति की उस देह का प्रतिनिधित्व करने लगी, जो पंच-महाभूतों से निर्मित व पालित थी और अन्ततः पंच-महाभूतों में ही विलय होगी। वह **'मैं'** उसी देह के रूप के साथ नाम-रूप में तद्रूप सी होकर, उसी के निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ अर्थों में समाहित हो गई और अपना स्वरूप भूल गई। एक मानव-देह से प्रकट **'मैं'** उस देह के जगत सहित के **'होने'** को प्रमाणित करती है और उसी देह से प्रकट **'भस्मी'** उस देह के अपने समस्त चराचर जगत सहित **'खोने'** अथवा **'कुछ नहीं'** के होने को प्रमाणित करती है। **'मैं'** वास्तव में मानव-देह की अवचेतना

और अवचेतना में प्रकट चराचर जगत की द्योतक है। यह **'मैं'** चारों अंगों का जटिल्य (Complex) है–**'मैं', मानव-देह, नाम** और **हैत्व।**

'भस्मी' अनाम व अरूप है। **'भस्मी'** किसी के साथ तद्‌रूप नहीं होती, क्योंकि न उसका कोई रूप है, न नाम है। **'नाम रूप'** के व्यक्ति के शव की भस्मी उसके सम्पूर्ण चराचर जगत सहित विलीन होने का प्रमाण है। पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित और पंच-महाभूतों में अन्ततः विलीन होने वाली जिस जाग्रत मानव-देह से **'मैं'** प्रकट हुई, **'मैं'** (आत्मतत्त्व) की परिपूर्णता के लिए उसी की **'भस्मी'** चाहिए। **'मैं'** कौन हूँ ? यह जानने के लिए **'भस्मी'** क्या है, यह जानना ही होगा और जीते जी **'मैं'** को **'भस्मी'** से मिलना एवं आत्मसात् होना होगा। यह सब 'मानसिक' प्रकरण है। इसके लिए साधक को मृत्यु योग, लय योग, भस्मी योग से गुज़रना होगा। ध्यान में उसे अपनी देह को पंच-महाभूतों में विलय होते देखना होगा। जहाँ उसे अपनी देह अग्निमय भस्मीयुक्त नर कंकाल मात्र नज़र आए। कृपया अति श्रद्धा एवं समर्पण से इस विषय का श्रवण एवं पठन-पाठन करें, मैं सविस्तार एवं उदाहरण सहित इसे अति सरलीकृत करते हुए स्पष्ट करने का प्रयास करूँगा।

हिन्दी वर्णमाला के स्वरों की मात्राएँ स्वयं में विभिन्न स्वरों का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रतिनिधित्व रूप में प्रकट होने के लिए उन्हें किसी अक्षर के साथ लगकर उसमें समाहित होना आवश्यक होता है। विभिन्न अक्षरों के साथ लग कर वे मात्राएँ, अक्षरों से बने शब्दों और शब्द समूहों से बने जो और जैसे वाक्य हैं, उन्हें सार्थकता प्रदान करती हैं। इस सम्पूर्ण प्रकरण में वे प्रतिनिधि मात्राएँ उन्हीं शब्दों तथा वाक्यों में समाहित हो जाती हैं और अपने मूल स्वरों, जिनका वे प्रतिनिधित्व करती हैं, उन्हें भूल जाती हैं। सार्थकता देने के लिए उन मात्राओं का समाहित हो जाना आवश्यक है। साथ ही विभिन्न स्वरों का प्रतिनिधित्व करती मात्राओं के असंख्य बार, असंख्य अक्षरों के साथ लगकर भी उन स्वरों के मूल स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। मात्राएँ शब्द का अंश होते हुए शब्दरूपा हो

जाती हैं। जो शब्द और वाक्य का अर्थ था, वही उन मात्राओं का अर्थ हो जाता है।

शब्दों और वाक्यों के अर्थों के अनुसार हम पर क्रिया-प्रतिक्रिया और प्रभाव आदि होता है। **'मृत्यु होगी'** सुनकर हम उदास हो गए, **'मिठाई आएगी', 'शादी होगी'** सुनकर प्रफुल्लित हो जाते हैं। अक्षरों के साथ मात्राएँ न लगती, तो स्वरों का प्रतिनिधित्व प्रकट न होता और शब्दों तथा वाक्यों की सार्थकता न होती। वाक्य के एक अक्षर के साथ मात्रा के लगकर समाहित हो जाने के बाद, जैसा भी था, उसका अर्थ निकला। मात्रा जिस स्वर की प्रतिनिधि है, हम उस मूल स्वर को भूल जाते हैं। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

स्वर की प्रतिनिधि मात्रा को प्रतिनिधित्व के प्रकाट्य के लिए किसी अक्षर का अवलम्बन चाहिए। अवलम्बन लेकर प्रकट होते हुए वह उस अक्षर के साथ लगेगी और उसी में समाहित होते हुए उस अक्षर से बनने वाले शब्द और वाक्य को सार्थकता प्रदान करेगी। यदि मात्रा शब्द के अक्षर के साथ न लगे, अलग पड़ी हो (ग ी) तो पहचानी जाती है, कि कौन से स्वर का प्रतिनिधि है। उस स्वर की स्मृति भी आ जाती है। शब्द में अक्षर के साथ लगकर वह समाहित (गी) हो जाती है, तो वहाँ किसकी प्रतिनिधि है, यह कोई याद नहीं करता। यदि मात्र उस मात्रा को अपना मूल स्वरूप या अर्थ जानने की लालसा हो जाए, तो जिस अक्षर के साथ वह लगी, उस अक्षर वाले शब्द और शब्दों वाले वाक्य के माध्यम से अपना अर्थ और मूल स्वरूप जानने का प्रयास करेगी। इसी प्रकार जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन चाहिए। प्रकट होकर **'मैं'** जो, जब, जहाँ, जैसी जाग्रत देह है उसे, उसके जगत सहित सार्थकता, निरर्थकता, व्यर्थता, अनर्थता अथवा अर्थहीनता प्रदान करती है और प्रमाणित करती है। **'ई'** की मात्रा **'ग'** अक्षर के साथ लगकर प्रकट हुई और **'गी'** हुई, क्योंकि ध्वनि रूप में वह **'ई'** थी। **'म'** के साथ लगी, तो **'मी'** और **'ठ'** के साथ लगी, तो **'ठी'** हुई तथा दोनों

अक्षरों ने मिलकर एक शब्द को अर्थ प्रदान किया—**'मीठी'**। अर्थ **'मीठी'** का है, क्योंकि **'ई'** की ध्वनि मात्रा रूप में अक्षरों के साथ शब्द में समाहित हो गई। शब्द के अर्थ के साथ वाक्य का अर्थ हुआ **'खीर मीठी है'** बड़ी **'ई'** की मात्रा के विभिन्न शब्दों के अर्थ में समाहित हो जाने से उस वाक्य का प्रभाव हुआ, जैसा भी हुआ। यही बात जीवात्मा के साथ हुई।

'मैं' शब्द में जीवात्मा का प्रतिनिधित्व एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेने पर प्रकट हुआ। जो देह जाग्रत होगी, वह जीवित और प्राणयुक्त भी होगी। लेकिन यह उठी हुई देह प्राणयुक्त के साथ **'नामयुक्त'** भी थी और जगत सहित थी। प्राण एक ही हैं, लेकिन नाम अलग-अलग थे। एक ही प्राणमयी देह जो, जब, जहाँ, जैसी भी थी, जगत सहित प्रकट हुई और भिन्न-भिन्न नामों में अलग-अलग हो गई। जो जीवित है, उसमें प्राणशक्ति एक ही है। एक को **'नाम'** ने अलग-अलग कर दिया। देह में, देह का प्रतिनिधि रूप (चेहरा) है। रूप पूरी देह नहीं है, लेकिन देह की पहचान और परिचय **'रूप'** से किया-करवाया जाता है। रूप के नाम ने एक ही प्राणों वाली देह को अलग-अलग कर दिया। देह में सिर व्यष्टि है और पूरी देह समष्टि है। समष्टि में व्यष्टि है और व्यष्टि है तो समष्टि है। **'मैं'** शब्द ने प्रकट होकर **'नाम'** के कारण कुण्ठित-गुण्ठित अपने ही जगत से अलग-थलग हुई देह के होने को प्रमाणित एवं अर्थयुक्त कर दिया। जो, जब, जहाँ, जैसी मानव-देह है यदि जीवित है, तो प्राणयुक्त है और निद्रा से उठी हुई जाग्रत है, तो **'नामयुक्त'** हो गई तथा **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य उसके **'नामयुक्त'** होने को ही प्रमाणित करेगा।

इस प्रकार **'मैं'** देह के रूप (जो तद्नाम था) के साथ नाम-रूप में तद्रूप हो गई। **'नाम'** देह के अतिरिक्त है क्योंकि पैदा होते ही किसी का कोई नाम नहीं होता। नाम बाद में रखा जाता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण **'देह'** वह नाम ही हो जाती है। उदाहरणतः किसी ने पूछा कि आपका नाम क्या है ? कि 'गिरधारी' और आप कौन हैं? कि

'गिरधारी'। उस निद्रा से उठी हुई देह का तनिक अवलम्बन लेकर जो **'मैं'** प्रकट हुई उसने उस देह को यथावत् प्रमाणित कर दिया, कि मैं गिरधारी हूँ। **'मैं'** देह के जिस रूप के साथ तद्रूप हुई, वह रूप पहले से ही तद्नाम हो चुका था। **'मैं'** ने उसे प्रमाणित कर दिया और **'मैं'** नाम-रूप में तद्रूप हो गई। मैं भी वैसी ही होकर अपने मूल जीवात्मा स्वरूप को भूल कर, भूल गई। अर्थात् उसे यह भी भूल गया, कि वह उस दृष्टा जीवात्मा की प्रतिनिधि है, जो स्वयं में अदृश्य और एक ही है। स्वयं में असीम **'मैं',** एक होते हुए भी अनेक नामों में बंट कर सीमित होते हुए अपने विराट एवं सर्वव्यापी स्वरूप को खो बैठी।

रूप देह में है और देह का है तथा देह में **'रूप'** देह का प्रतिनिधि है। **'रूप'** रूप सहित देह का प्रतिनिधि है और **'रूप'** देह का रूप भी है। **'मैं'** ने प्रकट होने के लिए जब एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लिया, तो यह आत्म तत्त्व का प्रतिनिधि है और स्वयं में आत्म तत्त्व है। जिस प्रकार **'रूप'** एक तो देह का अंग है दूसरे रूप सहित सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधि भी है। इसी प्रकार **'मैं'** शब्द, जब प्रकट होने के लिए एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेता है, तो आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है और स्वयं में आत्मतत्त्व भी है। आत्म-दर्शन में **'मैं'** स्वयं में आत्म तत्व है। **'मैं'** जब देह के साथ लगता है, तो जो, जब, जहाँ, जैसी देह व देहें हैं, उन जैसा हो जाता है, लेकिन स्वयं में अदृश्य है। एक दृष्टा जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द को, प्रकट होने के लिए एक जाग्रत मानव-देह इसलिए चाहिए, क्योंकि सबमें प्राण एक ही हैं और सबकी **'मैं'** भी एक ही है। **'मैं'** ने एक अतिरिक्त **'नाम'** से तद्नाम हुई एवं अपना यथार्थ (यथ+अर्थ) खो चुकी देह का अवलम्बन लिया और **'मैं'** ने उसकी निरर्थकता, व्यर्थता, अनर्थता, अर्थहीनता को, साथ लगकर हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट कर दिया।

वह एक देह जैसी भी है, उसका एक जगत साथ ही है। अब क्योंकि **'नाम'** के कारण वह जगत से अलग हो गई इसलिए जो उसका जगत प्रकट हुआ उससे **'मैं'** भी अलग हो गई। **'मैं'** लगने से वह देह उठी और

उसके उठने से **'मैं'** शब्द प्रकट हुआ तथा देह का जगत सहित उठना घोषित हुआ। उठी तो **'नाम'** में गुण्ठित सीमित देह उठी और उठकर **'मैं'** ने उसकी सीमितता को प्रमाणित कर दिया। **'मैं'** जीवात्मा की प्रतिनिधि थी, लेकिन अपने स्वामी को भूलकर ये भी मात्र उसी देह की होकर रह गई। जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, आधि, व्याधि, उपाधि, सुख, दुःख, लाभ, हानि, उन्नति, अवनति, मान, अपमान, मल, विक्षेप, आवरण की अन्तहीन श्रृंखला यहीं से आरम्भ हुई।

हे जीवात्मा ! तू शाश्वत् है। तुझे वह नश्वर, क्षणिक व सीमित सी देह मिली है, जो तुझसे कभी भी छीन ली जाएगी। तू विचार कर, तेरा **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य इसी देह की वजह से होता है। लेकिन तू व्यष्टि नहीं, स्वयं में समष्टि है क्योंकि तेरी देह के साथ जगत अवश्य होता है। वह जगत तुझसे भिन्न नहीं है। यदि तू देह है, तो जगत भी तू ही है। वास्तव में तू न देह है न जगत है। तू अदृश्य जीवात्मा है। एक मानव-देह के जाग्रत होने से **'मैं'** शब्द प्रकट होगा और **'मैं'** शब्द के प्रकट होने से देह सहित जगत जो, जब, जहाँ, जैसा है उसका होना प्रमाणित होगा। यह **'मैं'** केवल जीवात्मा का प्रतिनिधि शब्द नहीं है, बल्कि एक मानव-देह, उसके विशिष्ट नाम और उसके वैसा होने का द्योतक भी है।

किसी ने पूछा—कौन है ? तो उत्तर मिला—**'मैं'**। इससे ज्ञान हुआ, कि कोई मानव है। क्योंकि पशु-पक्षी, जानवर **'मैं'** नहीं कह सकते। मानव-देह का कोई नाम भी होगा और उसका जो, जब, जहाँ, जैसा होना भी होगा। अतः **'मैं'** एक जटिल्य (Complex) बन गया। सरल सा **'नाम'**, मैं, देह और होने का संघनन होकर जीव-सृष्टि की अधोगति का कारण बन गया। **'मैं'** आपा (self) है। सबकी **'मैं'** एक ही है। नाम अलग-अलग होने के कारण **'मैं'** भी अलग-अलग हो गई। **'रूप'** से नाम पता नहीं चलता। अतः एक अतिरिक्त नाम ने पूरी देह पर अधिपत्य कर लिया। **'मैं'** ने इसे प्रमाणित कर दिया। **'मैं'** ने देह के साथ प्रकट जगत में सब वही एवं एक ही **'मैं'** लगा रहे हैं, इस पर विचार ही नहीं किया। ये

'मैं' क्या है? **'मैं'** ने देह को अर्थ दिया और जो, जब, जहाँ, जैसी देह होती है, उसी की हो गई। वह देह न केवल नाम युक्त थी, बल्कि प्रारब्धयुक्त भी थी। कहीं **'मैं'** साधु, कहीं **'मैं'** चोर, कहीं पिता, कहीं माता, कहीं गरीब, कहीं अमीर। इस प्रकार काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन का कारण **'मैं'** बन गई। देह और जगत से सम्बन्धित सभी विधाओं को **'मैं'** ने ओढ़ लिया।

मानव-देह हमें प्रारब्धवश मिली है, प्रारब्ध के लिए नहीं मिली। प्रारब्धवश देह मिली और देह एक नाम (जो बाद में रखा गया) के वश हो गई। नाम, देह से अतिरिक्त था और स्वयं में अरूप व अनाम था। हर जन्म में जीव अपने **'नाम'** में फँसता है। उस नाम वाले रूप के साथ **'मैं'** तद्‌रूप सा होकर, नाम के लिए भटकता है और नाम ही उसे मारता है। जो जगत साथ ही प्रकट होता है, उससे स्वयं को पृथक् मानकर जीव उन्हीं में अपने नाम की जय-जयकार चाहता है और बदनाम होने पर शोक व चिन्ताओं में डूब जाता है।

निश्चित समय, स्थान व स्थिति में मानव-देह के लिए गर्भाधान, लगभग नौ महीनों में पूर्ण देह का निर्माण तथा निश्चित स्थान, समय, स्थान, ग्रह-नक्षत्र, स्थितियों-परिस्थितियों में शिशु देह के जन्म से लेकर लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई, भाई-बहन, सुख-दुःख, मिलना-बिछुड़ना, नौकरी, व्यापार, सगे-सम्बन्धी, मित्र-शत्रु, विवाह, सन्तान, अन्ततः मृत्यु भी जन्म की तरह ही निर्धारित समय, स्थान व परिस्थितियों में होती है। **'जीव'** प्रारब्ध को लेकर पुनः आगे बढ़ता है। प्रभु पुनः मानव देह देकर उसे सुअवसर देते हैं, कि वह प्रारब्ध से मुक्त हो। प्रारब्धवश भी जो कुछ होता है, वह सब प्रभु ही करते-करवाते हैं। प्रारब्ध से मुक्त होने के लिए प्रभु पुनः पुनः देह देते रहते हैं। नई देह देकर प्रभु पुनः अवसर देते हैं, कि प्रारब्धवश भी जो देह व जीवन दे रहा हूँ, वह **'मैं'** (ईश्वर) दे रहा हूँ, इसमें भी जो होगा वह मेरी इच्छा से होगा। भौतिक जगत में कोई अपराध हो जाता है, तो न्यायाधीश सज़ा दे देता है। जज की दी हुई सज़ा सरकार द्वारा लागू की

जाती है। जेल का प्रबन्धन, जेल में खाने-पीने, चिकित्सा और रख-रखाव की व्यवस्था सरकार करती है। कुछ सालों की सज़ा में उसके अच्छे चाल-चलन पर उसकी सज़ा पर पुनर्विचार का परामर्श भी दिया जाता है। जेल में भी सुधारने के विशेष कार्यक्रम होते हैं। जो घोर अपराधी होते हैं, उनकी क्रूर व हिंसात्मक वृत्तियों का सदुपयोग किया जाता है। इसी प्रकार मानव देह का मिलना प्रारब्ध रूपी केस फाईल के तहत होता है। गर्भाधान से लेकर मृत्योपरान्त **'भस्मी'** बनने तक प्रारब्ध रूपी फाइल में सम्पूर्ण जीवन की फिल्म, D.V.D. की तरह अंकित (Recorded) है।

मानव देह स्वयं में ऐसा प्रश्न है जिसका अर्थ या उत्तर उसी में समाहित है, लेकिन प्रकट तब होता है, जब देह अदृश्य हो जाती है। जीवन प्रश्नों का समूह है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्वयं में अनेक प्रश्नों का जन्मदाता है। यद्यपि सबके सम्पूर्ण जीवन के समस्त प्रश्नों का उत्तर या अर्थ अन्ततः एक ही है और वह अन्त तय है। प्रत्येक मानव का सुनिश्चित, दर्शित एवं परिलक्षित अर्थ अन्ततः भस्मी है। प्रभु की अनन्त चेतना व अनन्त आनन्द के अनन्त समन्वय का चमत्कारिक, सौन्दर्य एवं विशिष्टतम विशेषता यह है, कि सृष्टि के इस दृश्यमान प्रदर्शन में मात्र मानव को यह इंगित किया गया है, कि उसकी **'मृत्यु होगी'** और अन्ततः **'भस्मी' बनेगी।** कोई भी जो, जब, जहाँ, जैसी मानव-देह है, उसकी अन्ततः भस्मी ही बनती है और यह भस्मी वही और वैसी ही होती है। सबकी भस्मी एक ही और एक ही जैसी इसलिए है, क्योंकि समस्त मानव-देहों का अर्थ या उत्तर एक ही है। मानव-देह का अर्थ देह में उसी प्रकार अन्तर्निहित है जैसेकि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही निकलता है। मानव-देह के इस अर्थ या उत्तर को सभी मानव भली-भाँति जानते हैं और तहे दिल से मानते भी हैं, क्योंकि मानव-देह रूपी प्रश्न का अर्थ या उत्तर प्रभु ने पहले ही दिया हुआ है। यदि कोई परीक्षक प्रश्न हल करने के लिए उसका अर्थ या उत्तर साथ ही दे दे, तो उसमें प्रश्न को हल करने की विधि के अनुसार अंक (Marks)दिए जाते हैं। प्रश्न ऊत-पटांग हल करते

हुए पहले से दिया गया अर्थ या उत्तर दे दिया जाए, तो अंक (Marks) कट जाएंगे।

प्रभु ने मानव को समस्त प्राणियों से उत्कृष्टतम बुद्धि दी है और मानव-देह रूपी प्रश्न का अर्थ होश सम्भालते ही सबको दिखा दिया है। इसलिए मानव को जानना होगा, कि इस मानव देह रूपी प्रश्न को कैसे हल किया जाए? प्रत्येक स्तर पर, हर अवस्था में इसका अर्थ (भसम) सम्मुख रख कर ही जीवन जीना होगा, तभी अंक (Marks) मिलेंगे। यदि इस अर्थ को भूल कर अथवा जानते-बूझते हुए उपेक्षित करके जीवन जिएँगे, तो अंक (Marks) नहीं मिलेंगे। मानव होने के नाते आपको अपनी देह के अर्थ का ज्ञान है अतः आपके द्वारा की गई निरर्थक, व्यर्थक और अनर्थक भाग-दौड़ की सज़ा आपको सीमांकित (Demark) करके दी जाएगी। आप अपनी समष्टि से कट जाएंगे। यह मानव-जीवन जीने का निम्नतम स्तर है। आपकी सोचने की क्षमता, धन, परिवार, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्ति, पद, प्रतिष्ठा सब कुछ सीमित (Demarked) ही होगी। क्योंकि आप देह के अर्थ को जानते हुए भी उस ओर देखना नहीं चाहते। यदि आप अपने सम्मुख अपनी मृत्यु और भस्मी को नहीं रखेंगे, तो आप प्रत्येक स्थिति और अवस्था में गलती करेंगे। आपकी हर विधा सीमित व कुण्ठित होगी। आप प्राकृतिक छटाओं, पशु-पक्षियों के मधुर कलरव, सौन्दर्य आदि से वंचित हो जाएंगे। आपकी अपनी देह आपसे घृणा करेगी।

जब आपको सद् पुरुष जनवा दे और उसकी कृपा से अपनी मृत्यु आपके ध्यान में आ जाए तथा आप उसकी ओर सचेत हो जाएं, तो आपकी दिव्य बुद्धियाँ (विवेक, मेधा, प्रज्ञा, ऋतम्भरा) जाग्रत होने लगेंगी। जब विवेक जाग्रत होने लगता है, तो आपकी क्रियाएँ और व्यवहार गुणात्मक होने लगता है। आप व्यापारी हैं, तो आप अपने ग्राहकों का भी लाभ सोचकर कार्य करने लगते हैं। आप में ईमानदारी और हृदय की विराटता का पदार्पण होने लगता है। तब आप उल्लेखनीय (Remarked)

हो जाते हैं। आप पर लोग टीका-टिप्पणी (Remarks) करते हैं, लेकिन उस आलोचना का आप पर कोई प्रभाव नहीं होता। जब आप पर टीका-टिप्पणी होने लगे, तो समझना चाहिए, कि आपका स्तर सीमांकित (Demarked) लोगों से ऊँचा हो गया है। क्योंकि जो सीमांकित (Demarked) होते हैं, वही आपकी चर्चा (Remarks) करते हैं। आप उनके लिए प्रार्थना करिए, क्योंकि वे नहीं जानते कि **'सद्'** क्या है? वे अपने अर्थ को जान बूझकर भूले हुए हैं।

हर दिन के **'सब कुछ'** का अर्थ **'है कुछ नहीं'** ही है। आप अर्थ पकड़ कर जीवन का हर दिन जीना चाहते हैं, तो आपकी देह सहित जगत सीधा दैवी शक्तियों द्वारा निर्देशित व संचालित होता है। आप प्रारब्ध से मुक्त हो जाते हैं। आपकी कुल समष्टि (Total totality) सार्थक (स+अर्थ) ही होती है। अर्थ पकड़ने से आपकी देह यथार्थ (यथा+अर्थ) हो जाती है। जब आपकी मानस स्थिति ऐसी हो जाती है, तो उसके बाद का जीवन आनन्दमय होता है। जीवन का प्रतिपादन, संचालन और हर मोड़ सद्गुरु के अधीन हो जाता है। वह जीवन प्रशंसनीय (Remarkable) होता है।

प्रारब्ध को काटने के लिए **'पुरुषार्थ'** अपेक्षित है। पुरुषार्थ में **'अर्थ'** प्रथम सोपान है। **'अर्थ'** का प्रथम आयाम यह होता है, कि प्रारब्धवश मिली देह व जीवन को ज्यूं का त्यूं स्वीकार करके उसकी समस्त विधाओं और समस्त कारणों का कारण प्रभु को मान लेना। प्रभु में अटल विश्वास एवं श्रद्धा, कि मेरा जो कुछ है, वह तुम्हारे कारण है। तू उस अंकन (Recording) को ज्यूं का त्यूं स्वीकार कर ले और अच्छी तरह जान ले व मान ले, यहाँ कुछ भी तेरे या किसी के कारण नहीं है। तू अपने द्वारा हो रहे कृत्यों की डींग मत मार। वे प्रारब्ध के अंकन के अनुसार, तुझसे और तेरे जगत से करवाए जा रहे हैं। जो करवाए जा रहे हैं, वे वास्तव में हो रहे हैं और जो हो रहे हैं वे अंकन (Record) के अनुसार हो चुके हैं। तदनुसार तेरे सम्मुख समय-समय पर तेरी अपनी मानसिकता के अनुसार विभिन्न 84 लाख चैनलों में तेरे द्वारा, तेरे लिए प्रस्तुत होते हैं। उन समस्त प्रस्तुत

दृश्यों का कारण तू या तेरे जगत में कोई नहीं है। यहाँ नज़र आता प्रत्येक प्रकरण भी प्रकाट्य है। कोई प्रकाट्य किसी प्रकरण के एवज़ में नहीं है। ईश्वर को जानना और मानना मात्र मानव का ही कार्य है। मानने के बाद उसकी सान्निध्यता की अनुभूति के लिए तुझे दृश्यमान सृष्टि के कण-कण को ईश्वर मानना होगा। क्योंकि दृश्यमान सृष्टि, ईश्वर का एक अंग **'सद्'** है। इस दृश्यमान के दो सद् हैं–**'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'।**

जीवात्मा के जीव बनकर जीव-सृष्टि में भटकने का मुख्य एवं एकमात्र कारण यह है, कि उसने दृश्यमान जगत के एक सद् (है कुछ नहीं) को जाने-अनजाने देखना नहीं चाहा और उपेक्षित किया। **'है कुछ नहीं'** नहीं पकड़ने के कारण, यह अतिरिक्त पदार्थों एवं देह सहित साकार जगत की विभिन्न विधाओं के लिए व्यस्तता के नाम पर अस्त-व्यस्त हो गया। यदि **'है कुछ नहीं'** पकड़ ले, तो व्यस्तता (Busy) में भी सहज (Easy) हो जाए, कि सब कुछ प्रभु करवा रहे हैं। यहाँ से प्रारब्ध की सुदृढ़ व अभेद्य दीवार में सेंध लगनी शुरू हो जाती है। जब पूर्णतः जीव प्रभु का शरणागत हो समर्पित हो जाता है, तो प्रारब्ध-बन्धन, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन का मिथ्या-बन्धन नहीं रहता और जीवन की बागडोर प्रभु स्वयं अपने हाथों में ले लेते हैं। वह देह व जीवन प्रशंसनीय (Remarkable) होता है।

तू **देह द्वारा, देह की** उस **देहातीत** अवस्था से आत्मसात् हो, जो प्रारब्धमुक्त, रूपमुक्त और नाममुक्त है। इस प्रकार तू देह व जगत की सीमित सीमाओं का उल्लंघन करके नाम-रूप की देह की तद्‌रूपता से छूट सकता है। नाम-रूप की देह की **'भस्मी'** बेनाम और अरूप है तथा सभी देहों की एक ही है। जैसे तेरी **'मैं'** सभी देहों की एक ही है। उस अवस्था से आत्मसात् होने के बाद देह का अवलम्बन लेने पर तेरी देह यथार्थ हो जाएगी और अविलम्ब तुझ पर अवलम्बित हो जाएगी। हे जीवात्मा ! तूने **'मैं'** शब्द में अपने प्रतिनिधित्व को प्रकट करने के लिए

जो, जब, जहाँ, जैसी उठी हुई देह का अवलम्बन लिया और तू जीव बनकर जीव-सृष्टि में कर्म-बन्धन, काल-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन में फँस गया। जो, जब, जहाँ, जैसी देह है वह प्रारब्धयुक्त है। प्रारब्धयुक्त होने के साथ ही काल और कर्म का अन्तहीन बन्धन स्वतः घेर लेता है। **'मैं'** प्रकट होकर इन बन्धनों को ही पुष्ट करता रहा है। परन्तु इसी कर्म-बन्धन, काल-बन्धन, प्रारब्ध-बन्धन, नाम-रूप से बँधी देह का अर्थ **'भस्मी'** है, जो देहातीत है और इन सभी बन्धनों से मुक्त है। अब तू **'मैं'** शब्द में प्रकट होकर देह के अनाम और अरूप स्वरूप का अवलम्बन ले। भस्मी देह की है और सभी देहों की है तथा देहातीत है। नाम-रूप की देह से छुटकारा मिलने पर ही तू भस्मी से आत्मसात् हो पाएगा और भस्मी से पूर्णतः आत्मसात् होने पर ही नाम-रूप की देह से छुटकारा मिलेगा और तुझे अपने विशुद्ध स्वरूप की स्मृति आ जाएगी। तेरी देह विशुद्ध आत्मामयी, यथार्थ देह हो जाएगी।

इस सम्पूर्ण प्रकरण में साधक पहले अपनी देह की शवावस्था की मानसिक स्थिति से आत्मसात् होता है। फिर ध्यान में देह के शव को चिता की अग्नि द्वारा पंच-महाभूतों में विलय होकर अदृश्य होते हुए देखता है। इस साधना के दौरान धीरे-धीरे भस्मी से आत्मसात् होते-होते उसकी नाम-रूप की देह का बन्धन छूटने लगता है। देह प्रारब्ध मुक्त होने लगती है। साथ ही **'मैं'** को अपने विशुद्ध स्वरूप की स्मृति आने लगती है। अब विशुद्ध **'मैं'** विशुद्ध देह के साथ लगेगा। क्योंकि प्रारब्धमुक्त यथार्थ देह के प्रमाण के लिए भी **'मैं'** शब्द चाहिए। अग्निमय भस्मीयुक्त देह **'मैं'** के प्रमाण से आत्मामयी **'विदेह देह'** हो जाती है। यही यथार्थ देह है।

सम्पूर्ण चराचर जगत की माया प्रभु की अनन्त चेतना एवं अनन्त आनन्द के अनन्त समन्वय से प्रकट अनन्त **'सद्'** है। इसके दो सद् हैं यह **'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'**। **'सब कुछ है'** होना है और **'कुछ नहीं'** खोना है। दोनों साथ-साथ चलते हैं। जीवात्मा के दो प्रतिनिधि हैं। एक तो **'मैं'** शब्द और दूसरा देह का ही पदार्थ **'भसम'**। **'मैं'** शब्द किसी

भी जो, जब, जहाँ, जैसी भी एक मानव-देह है, थी और होगी उसके जगत सहित **'होने'** का प्रमाण, पुष्टि व सत्यापन है। भस्मी के प्रकाट्य के लिए भी देह चाहिए, लेकिन वह देह जो पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित व पालित थी और पंच-महाभूतों में विलय हो गई। **'भसम'** उसी एक मानव जो, जब, जैसी, जहाँ भी है, थी और होगी उसके चराचर जगत सहित **'खोने'** अर्थात् कुछ नहीं होने का प्रमाण है। **'सब कुछ है'** की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन के लिए शब्द **'मैं'** चाहिए। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए एक जाग्रत मानव-देह चाहिए जो पंच-महाभूतों से निर्मित एवं पालित है और पंच-महाभूतों में अन्ततः विलय होगी। **'मैं'** शब्द प्रकट होकर देह सहित चराचर जगत के **'सब कुछ'** के होने की पुष्टि, प्रामाणिकता एवं सत्यापन करता है। जीवात्मा का दूसरा प्रतिनिधि **'भसम'** है। **'है कुछ नहीं'** की पुष्टि, प्रमाणिकता एवं सत्यापन के लिए **'भसम'** चाहिए। **'भसम'** के प्रकाट्य के लिए भी एक मानव-देह चाहिए, जो पंच-महाभूतों में निर्मित व पालित थी और पंच-महाभूतों में ही विलय हो गई। भसम का प्रकटीकरण किसी भी मानव-देह के चराचर जगत सहित **'खोने'** का द्योतक है। यह भसम ही सब मानवों के सम्पूर्ण जीवन का **'अर्थ'** है। जीवन-काल में देह द्वारा, देह से प्रकट **'मैं'** और **'भस्मी'** को मिलाना ही मानवीय सद् कर्म है, जो मात्र कृपा साध्य है। **मैं और भस्मी** दोनों का संगम होने से **'होना और खोना'** **'सब कुछ है'** **'है कुछ नहीं'** दोनों का रहस्य अनावृत हो जाएगा।

यज्ञाग्नि के प्रकट होते ही **'भस्मी'** अप्रकट व अदृश्य रूप से प्रकट होनी शुरू हो जाती है। जब जीवन रूपी यज्ञ की लपटों के **'सब कुछ'** होते हुए **'है, कुछ नहीं'** की अनुभूति हो जाए, वह **'ज्ञान'** है। ज्ञान और वैराग साथ-साथ चलते हैं। **'वैराग'** **'भस्मी'** है, जो स्वयं में **'कुछ नहीं'** है। विरक्त ही भोग कर सकता है। आसक्त, अशक्त होता है। इसका दर्शन यह है, कि अपनी देह की जिस अवस्था को आपने देखा नहीं और न देख पाने की सम्भावना है, सद्गुरु कृपा से उस अवस्था की अनुभूति हो

जाए। अपनी निद्रा, मूर्च्छा, मृत्यु, भस्मी किसी ने नहीं देखी, लेकिन कुछ देर के लिए आप ध्यान करें, कि मैं भस्मी हूँ, तो भस्मावस्था में आपके मन की जो स्थिति है, वह भस्मी-दर्शन है।

सद्गुरु, सद् से, सद् का, सद् द्वारा, सद् के लिए सदानुसन्धान एवं सदान्वेषण करता है। जो सद् है, वह चेतन और आनन्द सहित ही है। तू निद्रा से उठते ही अपनी जाग्रत देह का अवलम्बन उसकी **'भस्मी'** को प्रकट करने के लिए ले। आत्महत्या करके नहीं, बल्कि जिस देह से तेरी **'मैं'** प्रकट हुई है ध्यान में उसी देह को, देह की अपनी भस्मी प्रकट करने के लिए सदुपयोग कर। यह भस्मी स्वयं में अनाम व अरूप है। यदि तू क्षण भर के लिए भी उस भस्मी से आत्मसात् हो गया, तो तुझे सब कुछ होता नज़र आएगा। तुझसे जो करवाना होगा प्रभु करवा लेंगे। तुझे भगवद् गीता में अर्जुन को दिए गए उपदेश में **कर्म का मर्म** समझ में आ जाएगा। तू अकेला तो किसी कर्म का निमित्त भी नहीं है। तू परोपकार का निमित्त है, तो तेरा उपकार स्वीकार करने वाले उस सेवा को लेने के निमित्त हैं। यदि दोनों निमित्तताओं को साथ लेकर चलेगा, तो कभी अहंकार नहीं होगा, मात्र **'अधिकार'** होगा।

होश सम्भालने पर होश आने से पूर्व हुई घटनाओं पर विचार करें, तो पाएँगे, कि यदि उस वक्त हम होश में होते, तो कुछ न होने देते। हर बात में हस्तक्षेप करते। अपनी देह के निर्माण, पालन, माता-पिता, भाई-बहनों के चुनाव आदि में हस्तक्षेप करके कुछ भी होने का कारण स्वयं बनते। प्रभु ने होश गुम करके सब कुछ सुचारू रूप से किया-करवाया। होश सम्भालने पर मैं होश की होश कर लूँ, कि अब भी सब कुछ स्वतः हो रहा है। अपनी होश से मैं कुछ भी नहीं कर रहा। करन-करावनहार प्रभु ही हैं। यदि मैं यह जानकर, मानकर अनुभूतिगम्य कर लूँ, तो मेरी होश **'सद्'** हो जाएगी। **'खोने'** को पहले अधिग्रहण करने पर ही **'होने'** का रसास्वादन सम्भव है, फिर प्रभु मुझसे वह सब करवाएँगे, जो प्रभु चाहेंगे।

भस्मीवस्था से आत्मसात् होने में असमानता में समानता का दर्शन

होने लगता है। भस्मी, देह का ऐसा पदार्थ है, जो **'मृत्यु'** के होने का प्रमाण है और देह के पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होकर अदृश्य होने का परिणाम है। **'भस्मी'** से आत्मसात् होने के लिए मृत्यु का उल्लंघन करना होगा। देह और जगत को नकारा नहीं जा सकता। देह व जगत में **'सब कुछ'** माँ जगदम्बा की सुकृति और प्रकृति है, जो मूलतः **'है, कुछ नहीं'** अर्थात् विरक्ति से प्रकट होता है और लीन होता रहता है। भस्मी तत्व से आत्मसात् होते ही, जीवात्मा को अपनी स्मृति आने लगती है। वही स्मृति ज्ञान है, वही आत्मानुभूति है। इस प्रकार ज्ञान और वैराग साथ-साथ चलते हैं।

जब एक **'मैं'** निद्रा से उठता हूँ, तो मुझ एक के साथ मेरा पूरा जगत साथ ही उठता है। उस जगत में कोई सोया हुआ होता है, कोई मरा हुआ होता है, कोई पैदा होने वाला होता है, कोई भस्मी बन गया होता है। इस प्रकार जब एक मैं मरता हूँ, तो अपने जगत को साथ लेकर मरता हूँ। **'मैं'** शब्द में जीवात्मा तत्त्व के प्रतिनिधित्व को प्रकट होने के लिए उस एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेना पड़ा, जो पंच-महाभूतों से निर्मित एवं पालित है तथा अन्ततः पंच-महाभूतों में विलय **होगी। 'मैं'** ने प्रकट होकर ऐसी एक मानव-देह (जो, जब, जहाँ, जैसी, जीवित तथा जाग्रत है) के समय-समय के जगत सहित **होने** को प्रमाणित कर दिया। वही व्यक्ति जीते जी जब अपनी उसी देह की **'भस्मी'** पर एकाग्र करते हुए अवधारणा करता है, कि **'मैं' भस्मी हूँ'** तो वह भस्मी उस एक व्यक्ति देह की होती है, जो पंच-महाभूतों से निर्मित एवं पालित **थी** और जो पंच-महाभूतों में ही पूर्णतः विलय हो **गई** है। जिस दिन आत्म तत्त्व जाग्रत हो जाएगा, तो जीवन-काल में जन्म की तरह मृत्यु भी तेरा अतीत हो जाएगी। तू होगा और तेरी **'मृत्यु हो गई होगी'।** अपने लिए **'मृत्यु होगी'** तो सभी कहते हैं, लेकिन **'मृत्यु हो गई'** किसी अन्य के लिए कहते हैं। यदि मेरी मृत्यु हो गई और मैं हूँ, तो मेरी मृत्यु हो गई ही होगी। जब आत्म स्मृति आ जाएगी, तो वह यथार्थ देह ऐसी होगी, जिसमें **'मृत्यु हो गई ही होगी'।** यह

संहार-दर्शन है। **'स हार'** के ऊपर ॐ का बिन्दु लगा और **'सन्देह'** (मैं देह हूँ) पूर्णतः हार गया। मैं देह नहीं हूँ, विशुद्ध जीवात्मा हूँ। जिसने **'है कुछ नहीं'** (भस्मी) का अधिग्रहण **'सब कुछ है'** के दौरान कर लिया उसकी आत्म तत्त्व की स्मृति जाग्रत हो जाएगी। यही '**ज्ञान**' है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(24 मई से 12 जुलाई 2011)

माया (सन्देह)

(भाग – 3)

ईश्वर को शास्त्र में सच्चिदानंद कहा गया है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों और युगों-युगान्तरों में विस्तृत समस्त ईश्वरीय माया उस सच्चिदानंद का '**सद्**' है। इस सम्पूर्ण '**सद्**' की प्रतिनिधि एवं संघनित रूप एक मानव-देह है। ईश्वर की समस्त संरचनाओं के चमत्कारों, रहस्यों एवं उत्कृष्टता की चरम सीमा को इस सुकृति में देखा और अनुभव किया जा सकता है। मानव-देह स्वयं में नश्वर, क्षणिक, क्षण भंगुर एवं क्षण-क्षण दशानन (अविरल, अबाध, अकाट्य, निरन्तर, चिरन्तन, अतिसारगर्भित, परम विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं अति उद्देश्यात्मक) स्वरूपों में अदृश्य रूप से परिवर्तनशील है। मात्र ईश्वर तथा ईश्वर मात्र द्वारा निर्मित, संचालित, पालित, सम्पादित, संवाहित, प्रतिपादित, नियन्त्रित एवं संहारित मानव देह में हर क्षण होता परिवर्तन दशानन है।

असंख्य दिव्य अवस्थाओं रूपी रत्नों से जड़ित मानव-देह की **'शैशव'** एवं **'शव'** दो अवस्थाएँ ही सुनिश्चित हैं। मध्य की असंख्य अवस्थाएँ हो भी सकती हैं, नहीं भी। विभिन्न अवस्थाएँ इसे **'अलंकृत' 'सुलंकृत'** तथा **'विलंकृत'** करती हैं, साथ ही यह किसी भी अवस्था से बँधी नहीं है। कुछ अवस्थाएँ **'दर्शित'** (दृश्यमान) हैं और कुछ अवस्थाएँ **'दर्शनीय'** (अनुभूतिगम्य) हैं। देह द्वारा दर्शित व दर्शनीय सभी अवस्थाएँ सम्पूर्ण ईश्वरीय माया एवं इस मायिक सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह का श्रृंगार हैं। ऐसी अनुपम और विलक्षण मानव-देह की प्रत्येक विधा का आनन्दपूर्वक

रसास्वादन करते हुए, सम्पूर्ण ईश्वरीय माया की वाह-वाह एवं प्रशंसा भी मात्र मानव व मानव मात्र ही कर सकता है। यह इसके '**वचनीय**' (बोले जाने योग्य) '**वर्णनीय**' (वर्णन करने योग्य) एवं '**श्रवणीय**' (सुनने योग्य) सद् हैं। वस्तुतः मानव-देह कितनी चमत्कारिक, सुन्दर एवं रहस्यमयी है; यह **'अनिर्वचनीय', 'अवर्णनीय'** एवं मात्र **'अनुभूतिगम्य'** है।

ईश्वर के अनन्त आनन्द व अनन्त चेतना के अनन्त समन्वय से अनन्त **'सद्'** का प्रकाट्य होता है। यह प्रकाट्य माया के असंख्य व अगणित रूपों में समय-समय पर दृश्यमान होता है। अदृश्य चेतना व आनन्द ज्यूं के त्यूं रहते हैं। यही सच्चिदानंद का स्वरूप है। ईश्वरीय माया का दृश्यमान **'रूप' 'सद्'** है। माया के दो सद् **'सब कुछ है'** (अनन्त चेतना) और **'है कुछ नहीं'** (अनन्त आनन्द) **साथ-साथ** हैं। मानव मायावश, अज्ञानवश, सन्देहवश (मैं देह हूँ) होश सम्भालते ही **'सब कुछ', 'कुछ न कुछ', 'कभी कुछ', कभी कुछ'** की ओर प्रवृत्त हो जाता है और माया के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आयाम **'है कुछ नहीं'** को जाने-अनजाने उपेक्षित करते हुए जानबूझ कर भूला रहता है।

अकारण कृपावश प्रभु ने मुझे अपनी सर्वोत्तम संरचना मानव-देह से नवाज़ा है। प्रभु चाहते तो मुझे अन्यथा कोई पशु-पक्षी, मक्खी-मच्छर, कीट-पतंगा भी बना सकते थे। मानव-देह देकर प्रभु ने एक स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है, कि इससे मैं जान लूँ एवं अनुभूति कर लूँ, कि 'मैं देह नहीं हूँ'। 'मैं देह हूँ और मैं देह नहीं हूँ' दोनों भावों में देह होती है, लेकिन दोनों देहों में बहुत अन्तर होता है। 'मैं देह हूँ' भाव में देह अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) होते हुए मानव देह के 'अर्थ' एवं पुरुषार्थ से नितान्त परे होती है। 'मैं अमुक-अमुक हूँ' के सन्देह रूपी अज्ञान में वशीभूत **'मैं'** साकार है एवं नाम से गुण्ठित एवं कुण्ठित जटिल्य (Complex) है। जब मुझे अपनी साकार देह के होने का बोध है और मैं देह के साथ तद्रूपता सी को नकारता हूँ, कि मैं देह नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है, मेरे लिए है, मेरे लिए क्यों है, यह मैं नहीं जानता, तो वह **'मैं'** निराकार व अदृश्य

आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है। ध्यान-समाधि में जब **'मैं'** शब्द लुप्त हो जाता है और अपने होने का आनन्दाभास होता है, तो वह आत्मतत्त्व का होना है। **'देह'** ही मेरा साधन है, जिससे मैं अनुभूति कर सकूँ, कि 'मैं देह नहीं हूँ'। मेरा देह भाव (मैं देह हूँ) अदृश्य है। भाव मन का है और मन दिखाई नहीं देता। इस भाव के उन्मूलन के लिए देह चाहिए। दर्शित देह से देह भाव (मैं देह हूँ) बना और जन्मों-जन्मान्तरों में परिपुष्ट हुआ, कि 'मैं देह ही हूँ'। इस सम भाव के उन्मूलन एवं यथार्थ देह के लिए **'देह का अर्थ'** **'भाव सम'** (भसम) चाहिए।

मायिक साकार एवं निराकार सृष्टि, असंख्य एवं अगणित प्रकारों में दृश्यमान है। स्रष्टा (परमात्मा) एवं दृष्टा (जीवात्मा) स्वयं में न साकार हैं, न निराकार। अतः स्रष्टा और दृष्टा दोनों अदृश्य हैं। चेतना और आनन्द अनुभूति का विषय है। दोनों अदृश्य हैं और जो दृश्यमान है, वह **'सद्'** है। दृश्यमान जगत का कण-कण सद् है। सद्, चेतन व आनन्द से अतिरिक्त यहाँ कुछ नहीं है। हर काल-अकाल, कृत्य-अकृत्य, सोच-असोच, सब कुछ, कुछ न कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ और कुछ नहीं में भी ईश्वर के सद्, चेतन व आनन्द का होना अनिवार्य है। यहाँ समस्त कारणों के कारण मात्र परमात्मा ही हैं। सद् को देखने के लिए मन का चेतन व आनन्दित होना आवश्यक है, अन्यथा **'सद्'** दृष्टिगत नहीं होगा। स्वयं में चेतन आत्मतत्व का प्रतिनिधि एवं एकमात्र दृष्टा **'मैं'** स्रष्टा की अलौकिक व आलोकित दृश्यमान सृष्टि का अवलोकन लौकिक जीव बन कर करता हूँ, तो सृष्टि अलौकिक नहीं रहती। आलोक आच्छादित हो जाता है और मैं अवचेतना में उतर जाता हूँ। जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर मात्र **'मैं'** जटिल्य (Complex) के कारण हैं। इस **'मैं'** का ज्ञान होना भी स्वयं में दुरूह है। 'मैं देह हूँ' यह सन्देह है, जिसका ज्ञान भी मुझे नहीं है और इस सन्देह में मैं सद् को पाना चाहता हूँ। इसके लिए मुझे '**सन्देह के सद्**' का ज्ञान होना चाहिए। किसी भी योग अथवा अभियोग के लिए **'सद्'** का अधिग्रहण अत्यावश्यक है। कृपया एकाग्र करिए:—

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का समस्त दृश्यमान जगत स्वप्न है। यदि देखते समय यह ज्ञान हो जाए, कि यह स्वप्न है, तो स्वप्न **'सद्'** है। यदि देखते समय स्वप्न की स्वप्नवत् प्रतीति न हो, तो **'सन्देह'** है। दानी-पुण्यी, सुखी-दुःखी, लेना-देना, ऊँचा-नीचा, बनना-बनाना, जन्म-मृत्यु और जरा-रोग आदि असंख्य अवस्थाएँ स्वप्न में हैं, जिनका आधार 'मैं देह हूँ' की मोह-निद्रा एवं अज्ञान है। इस अज्ञान का नाम **'सन्देह'** है। दुर्भाग्यवश हमें अपने अज्ञान का भी ज्ञान नहीं है। दृश्यमान सृष्टि का प्रकाटय, अप्रकट व अदृश्य देहभाव (मैं देह हूँ) के सन्देहवश है। हम सुखी-दुःखी तभी होते हैं, जब हमें यह ज्ञान नहीं होता, कि हम मोह-निद्रा एवं 'मैं देह हूँ' के सन्देहवश अवचेतना में हैं। जहाँ स्वप्न में यह ज्ञान हो जाए, कि यह स्वप्न है, वहाँ दृश्यमान जगत ईश्वर का **'सद्'** है अन्यथा **'सन्देह'** है। एक **'सद् मयी माया'** (ईश्वरीय सृष्टि) है और दूसरी **'सन्देह मयी माया'** (जीव-सृष्टि) है।

मानव-देह दुर्लभतम है और सम्पूर्ण अध्यात्म व आत्म-चिन्तन देहातीत विषय है। **देह से, देह द्वारा, देह के लिए, देह से हटकर पुनः देह में प्रविष्टि अध्यात्म का मूल है।** अपने जीवन को अति विलक्षण, उन्मादित, उत्साहित एवं गुणात्मक बनाने के लिए इन विषयों के श्रवण एवं पठन-पाठन हेतु अति एकाग्रता एवं परम श्रद्धा वांछनीय है। विभिन्न अवस्थाओं रूपी रत्नों से जड़ित मानव-देह की पाँच अवस्थाएँ– गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था आज तक किसी ने स्वयं अपनी नहीं देखीं और न देख सकता है। क्योंकि देह भाव (मैं देह हूँ) इन पाँच अवस्थाओं में **'मैं'** विहीन हो जाता है। 'मैं देह हूँ' यह भाव एक अदृश्य मानसिकता है। इस अदृश्य भाव में एक अप्रकट देह होती है, लेकिन **'मैं'** शब्द के बिना प्रकाट्य नहीं होता।

'मैं' (आत्म-तत्त्व का प्रतिनिधि) शब्द के प्रकाट्य के लिए एक **जाग्रत, नाम-रूप** में **जानवित** व **जीवित जो, जब, जहाँ, जैसी मानव देह** का **होना** अनिवार्य है। साथ ही 'मैं' शब्द प्रकट होकर उस देह के चराचर जगत सहित होने को प्रमाणित करता है। उदाहरणतः गैस सैलण्डर में गैस है,

लेकिन लाइटर की चिंगारी रूपी अग्नि के स्पर्श के बिना गैस जलेगी नहीं और हम उससे खाना नहीं बना सकते। मानव-देह की पाँच अवस्थाओं (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मीवस्था) में देह भाव (मैं देह हूँ) सुषुप्त रहता है अर्थात् होते हुए भी प्रकट रूप से नहीं होता। अदृश्य व अप्रकट देह भाव के प्रकट होने के लिए **'मैं'** शब्द रूपी चेतना की चिंगारी चाहिए।

मानव-देह की उपर्युक्त पाँच अवस्थाएँ **'मैं'** विहीन हैं, इसलिए **'मैं'** (आत्म तत्त्व) होते हुए भी अपना होना घोषित नहीं कर सकता। इनमें दो अवस्थाएँ (गर्भावस्था एवं शैशवावस्था) हमेशा मेरा अतीत रहती हैं और दो (मृतकावस्था व भस्मावस्था) भविष्य रहती हैं तथा निद्रावस्था अतीत व भविष्य दोनों बनी रहती है। गर्भावस्था एवं शैशवावस्था (अतीत) **थी** और मृतकावस्था और भस्मावस्था (भविष्य) **होगी** तथा निद्रावस्था **थी भी** और **होगी भी**। जब **'मैं'** हूँ, तो ही मेरे लिए मेरी ये अवस्थाएँ थीं और होंगी। गर्भावस्था एवं शैशवावस्था मेरे होने से मेरी थीं। मृतकावस्था व भस्मावस्था मेरे होने से हैं, लेकिन जब ये होंगी तो मैं नहीं हूँगा। निद्रावस्था भी मेरा अतीत व भविष्य तब है, जब **मैं** उठा हुआ **हूँ**। ये अवस्थाएँ मुझे जगत में दर्शित हैं, तो **'मैं'** अपनी उन अवस्थाओं का दृष्टा क्यों नहीं हो सकता? मेरी गर्भावस्था, शैशवावस्था तथा निद्रावस्था किसी अन्य ने देखीं, मैंने सुना और जाना। मृतकावस्था और भस्मावस्था अन्य लोग देखेंगे, लेकिन न मैं सुनूँगा, न जानूँगा। यह भी मैं तभी कह सकता हूँ, जब मैं हूँ। **'मैं'** के लगने से ये अवस्थाएँ थीं और होंगी। जो कुछ भी था, है और होगा वह मेरे होने से ही था, है और होगा। उन अवस्थाओं के समय **'मैं', मैं** नहीं लगा सकता और **'मैं'** के लगने से ही वे अवस्थाएँ थीं और होंगी। यदि **'मैं'** नहीं लगा, तो न कुछ था, न है और न होगा।

'मैं' हूँ तो ही मैं अमुक माँ के गर्भ में था और पैदा हुआ तथा शैशव बिताया। **'मैं'** हूँ तभी मैं सोच सकता हूँ, कि मेरे लिए अन्य शेष अवस्थाएँ आएँ न आएँ परन्तु मेरा शव और शव की भस्मी अवश्य बनेगी। जब, मेरे

लिए **'मैं'** शब्द एक जाग्रत मानव-देह का अवलम्बन लेकर प्रकट होता है, तो ही भूत, भविष्य, वर्तमान सहित मेरा होना प्रमाणित होता है। **'मैं'** शब्द दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधि है, जो प्रमाणित करता है जो-जो हो चुका है, हो रहा है और भविष्य में होने की सम्भावना और कल्पना है। अपना कोई भी संस्मरण, पौराणिक गाथाएँ **'मैं'** तभी सुना सकता हूँ, जब जो, जहाँ, जैसा भी **'मैं'** हूँ। जब मैं हूँ, तो ही युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर हैं। जब **'मैं'** नहीं हूँ, तो देह रूप में जगत सहित **'मेरा होना'** अथवा **'नहीं होना'** दोनों नहीं हैं। अर्थात् मेरी गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था तभी थीं, हैं और होंगी जब देह रूप में मेरा होना **'है'**।

देह व जीवन में जो-जो असंख्य भविष्य मैं लादे रहता हूँ, उन्हें देखने के लिए मैं होता हूँ। उनकी जगह अन्य नए भविष्यों के होने को भी मैं देख सकता हूँ लेकिन मेरा निश्चित, परिलक्षित दर्शित भविष्य भस्मी है। यह मैं जानता हूँ तथा मानता भी हूँ। लेकिन जब वह होगा, तब उसे देखने के लिए मैं नहीं हूँगा। सांसारिक भविष्य सम्भावित हैं लेकिन निश्चित नहीं हैं। लेकिन **'मृत्यु'** और **'भस्मी'** ऐसा भविष्य है, जो होगा ही। देह व जीवन में अन्य सांसारिक भविष्यों की तरह मैं इसे भी आत्मसात् कर लूँ, तो अन्य समस्त सम्भावित भविष्य ढह जाएँगे। मृत्यु, काल है और मृत्यु का भविष्य भस्मी, अकाल है। काल और अकाल दोनों का स्वामी महाकाल है। 'मैं देह हूँ' सन्देह है, यह भाव काल से बँधा है। **'काल'** प्रारब्ध से बँधा है। देह व जगत का होना अवचेतना में है। 'मैं' शब्द का प्राकट्य अवचेतना में चेतना के एक विशेष न्यून स्तर पर हो जाता है। जब भी मैं होता हूँ, तो अवचेतना में होता हूँ और अपनी ये पाँचों अवस्थाएँ मेरे लिए दर्शित नहीं होतीं। मेरे लिए ये पाँचों अवस्थाएँ **'जड़'** अवस्थाएँ ही रहती हैं। जहाँ **'मैं'** लग गई, वह अवचेतना है। 'मैं' स्वयं में चेतन आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि है परन्तु 'मैं' शब्द के प्राकट्य के लिए अवचेतन व जाग्रत मानव-देह चाहिए। एक व्यक्ति की 'मैं' लगे बिना व्यष्टि सहित समष्टि का क्रियान्वयन नहीं होता।

जड़ता में देह व जगत नहीं है और पूर्ण चेतना में भी देह व जगत नहीं

है और 'मैं' शब्द भी लुप्त हो जाता है। जहाँ देह व जगत है, वहाँ अवचेतना है। अवचेतना में ही तू देख सकता है, कि गर्भावस्था देह की वह महत्त्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें तेरी सम्पूर्ण देह का निर्माण हुआ। शैशवावस्था में तेरी अपनी कोई क्षमता नहीं थी, तेरा अपना कोई धर्म, कर्म, कर्तव्य, रोग, दोष, देश, काल कुछ नहीं था। उसमें तेरी देह का पालन-पोषण हुआ। स्वयं में जड़ ये अवस्थाएँ सबकी एक जैसी हैं। तेरे वर्तमान में तू कभी इन अवस्थाओं में न था, न होगा। तू अपने वर्तमान में स्वयं को इन अवस्थाओं में अनुभव कर। ये जड़ अवस्थाएँ तेरी चेतना को जाग्रत कर देंगी। जब तू जड़ता से परे होकर स्वयं में जड़, इन अवस्थाओं को देखेगा, तो तेरी अवचेतना, चेतना में रूपान्तरित होनी शुरू हो जाएगी। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

'मैं देह हूँ' यह भाव स्वयं में अप्रकट, अदृश्य और देहातीत है। **'मैं'** जब प्रकट हुआ, तो एक जटिल्य (मैं देह हूँ) के रूप में प्रकट हुआ। जिसमें नाम-रूप में कुण्ठित एवं गुण्ठित देह के साथ तद्रूपता सी होती है। सोया हुआ व्यक्ति स्वयं में देह नहीं होता, देह और जगत होते हुए भी उसके लिए नहीं होते, क्योंकि 'मैं देह हूँ' यह सन्देह **'भाव'** तक ही रहता है। छोटे शिशु का **'नाम'** भी रख लिया जाता है, लेकिन जब तक उस नाम को वह स्वयं स्वीकार नहीं करता, उसमें **'मैं'** जटिल्य (Complex) जाग्रत नहीं होता। इसलिए उसे अपनी देह व जगत से सम्बन्धित किसी विधा का ज्ञान नहीं होता। शिशु की निद्रा और उठना दोनों बराबर हैं। **'मैं'** जटिल्य के प्रकट होने की एक अवस्था है। उस अवस्था तक जीवन रूपी चलचित्र के बहुत से परिदृश्य निकल चुके होते हैं। यह ज्ञान भी तब होता है, जब 'मैं देह हूँ' भाव प्रकट होता है। जब यह भाव प्रकट होता है, तब तक जीव की देह, पहले से रखे एक नाम से कुण्ठित-गुण्ठित हो चुकती है।

अबोधता **'सद्'** है, बोधता **'सद्'** है। यदि जन्म **'सद्'** है, तो मृत्यु भी **'सद्'** है। जब '**मैं देह हूँ'** सन्देह होता है, तो मैं स्वयं को देह ही मानता हूँ। नाम-रूप में तद्रूप 'मैं' '**आप्त**' (संकुचित व गुण्ठित) होती है। वह

सर्वव्याप्त 'मैं' नहीं होती। वह **'मैं' व्याप्ति** में **आपत्ति** है। मैं देह के रूप के साथ नाम-रूप में तद्‌रूप सा होता हूँ और मुझे अपने सन्देह का ज्ञान भी नहीं होता। इस मानसिक स्थिति में सर्व का दृष्टा **'मैं'** (जीवात्मा) नाम-रूप में सीमित व कुण्ठित जीव हो गया। जीव सीमित है और अपनी सीमाओं की असीमितता में भी सीमित है। ईश्वर असीम है और उसकी असीमता सदा सर्वदा असीम है। सीमित और असीम के बीच की सीमा भी सीमित ही है। हम मानव, जीवन में होश सम्भालते ही नाम-रूप की अवचेतना में तथाकथित **जीव-सृष्टि की सीमित सीमाओं में बँध से जाते हैं।** दैहिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक क्षमताओं, योजनाओं, परियोजनाओं, मर्यादाओं, प्रतिभाओं की सीमाएँ हैं। संकुचित तुच्छ बुद्धि एवं कुण्ठित मानसिकता भी सीमित है। हमारे पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, कृत्य-अकृत्य, उन्नति-अवनति, लाभ-हानि, सुख-दुःख, विकास-ह्रास, खाना-पीना, उपवास-निराहारता, योग-भोग, जप-तप, पूजन-वन्दन, अर्चना-उपासना, सोना-जागना सब कुछ सीमित की सीमित सीमाओं में प्रतिबद्ध हैं। इन सीमाओं के अतिक्रमण एवं उल्लंघन की भी सीमा है। हमारी कोई सीमा, असीम नहीं है। जीवात्मा को ईश्वर द्वारा प्रदत्त यथार्थ देह असीम है, क्योंकि वह **'गर्वित'** यथार्थ देह जन्म-मृत्यु के दो छोरों से बँधी हुई **'गर्भित'** देह नहीं है। वह प्रारब्ध, काल एवं कर्म के बन्धनों से मुक्त है। उस यथार्थ देह का कोई ओर-छोर नहीं है।

'मैं' शब्द रूप में प्रकट होने के लिए जीवात्मा को मात्र एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेना था। जो, जब, जहाँ, जैसी स्थिति में एक व्यक्ति देह है, सम्पूर्ण चराचर जगत में उसके भूत, भविष्य व वर्तमान सहित **होने** को **'मैं'** शब्द का प्रकट होना प्रमाणित करता है। **'मैं'** लगने से दृश्यमान सृष्टि का प्रदर्शन आरम्भ होता है। एक है, चराचर जगत सहित मानव-देह का **'होना'** और दूसरा है, उसका **लगना।** यह **'होना'** **'प्रारब्धवश'** है तथा **'लगना'** **'मानसिकतावश'** है। जिस जाग्रत देह के जगत सहित होने को **'मैं'** शब्द ने प्रमाणित किया, वह कैसी है और कैसी

लग रही है, दोनों में बहुत अन्तर है। वह देह एक स्थान, समय व स्थिति में है। तदनुसार ही उसका भूत, भविष्य, वर्तमान एवं चराचर जगत है। उसे अपने चराचर जगत सहित कैसा लग रहा है? वहाँ प्रश्न उठता है, कि दृष्टा को कैसा लग रहा है। यह **लगना** दृष्टा की उस समय की मानसिक स्थिति पर निर्भर है। जैसा दृष्टा है, उसके लिए वैसा ही दृश्य है। वह स्वयं को ही देख रहा है। यह गोरखधन्धा क्या है? वास्तव में मैं क्या चाहता हूँ? क्या **'मैं'** उस चैनल को देखने के लिए बाध्य हैऔर क्या उसमें कोई परिवर्तन चाहता है? यदि हाँ ! तो क्या उसमें सक्षम है? जगत में जो कुछ प्रकाट्य है, इसमें जब भी, जो भी, जैसा भी, जहाँ भी हो, उसे मैं आनन्द में देख सकूँ। इसके लिए पुरुषार्थ एवं सद्गुरु की पूर्ण शरणागति अपेक्षित है। पुरुषार्थ कृपा-साध्य है।

प्रारब्धवश एक चैनल लगी है, उसके तहत देह सहित जगत का होना होता है। यदि दृष्टा प्रारब्धवश देख रहा है, तो वह बनी-बनाई चैनल देख रहा है। चाहे दृष्टा उसे देखना चाहे या न देखना चाहे। यह चैनल मानसिक स्थिति के अनुसार लगती है और एक अदृश्य मानसिकता प्रकट होती है। दृश्य समय-समय की मानसिकता के अनुसार प्रारब्धवश प्रकट एवं लीन होता है तथा सतत् परिवर्तित होता है। जन्मों-जन्मान्तरों में जीव भटकता है। विभिन्न मानसिकताओं में जिस भाव से कुछ न कुछ करता-करवाता है, प्रकाट्य उसके अनुसार कभी नहीं होता और अक्सर विपरीत ही होता है। कभी-कभी बिना कुछ किए बहुत कुछ प्रकट होता रहता है। प्रारब्धवश लगी चैनल का रसास्वादन करूँ, इसके लिए सर्वप्रथम मैं आश्वस्त हो जाऊँ, कि किसी भी दृश्य का रचनाकार, पालनकर्ता और संहारकर्ता मैं नहीं हूँ। **'मैं'** देह हूँ' भाव प्रकट हुआ, तो देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता सी हो गई। सतत् परिवर्तनशील देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपतावश मैं स्वयं को भी बदलता अनुभव करता हूँ। निद्रा में यह **'मैं'** जटिल्य (Complex) नहीं रहा और इसके न रहने का बोध भी नहीं रहा।

मानव-हृदय एक श्वास में लगभग 6 बार धड़कता है और एक मानव, एक दिन में लगभग 14,000 श्वास लेता है। इस प्रकार नित्य लगभग 84,000 बार मानव-हृदय धड़कता है। एक नाड़ी या धड़कन महामाया की सौ योनियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार माया की चौरासी लाख योनियाँ हैं, जो पहले से बनी-बनाई हैं। एक श्वास 600 योनियों का प्रतिनिधित्व करती है। कोई शिशु अपना नाम लेकर जन्म नहीं लेता। **'नाम'** बाद में रखा जाता है। शैशवावस्था से बाल्यावस्था में भी काफी समय तक शिशु को अपने बारे में और अपने नाम के बारे में ज्ञान नहीं होता। एक विशिष्ट श्वास की एक अतिविशिष्ट नाड़ी में **'मैं'** का प्रादुर्भाव होता है और तुरन्त एक विशिष्ट नाम-रूप में जकड़े हुए **'रूप'** के साथ वह तद्रूप सा हो जाता है। इसे संसारी भाषा में हम होश सम्भालना या होश आना कहते हैं अर्थात् वह शिशु अपने नाम को स्वीकार कर लेता है। सुबह उठकर होश में आते ही सब अपने-अपने कार्य में लग जाते हैं। दिन भर कार्य करते हुए थक जाते हैं और रात्रि में सोते समय एक विशिष्ट श्वास की अति विशिष्ट नाड़ी में **'मैं'** का लोप हो जाता है। **'मैं'** का लोप होते ही निद्रा में देह और जगत का आभास समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् रात्रि में ही (स्वप्न सृष्टि) अथवा सुबह किसी भी समय (तथाकथित जागृति की सृष्टि) एक विशिष्ट श्वास और अति विशिष्ट नाड़ी में पुनः **'मैं'** का प्रादुर्भाव होता है। इसे हम संसारी भाषा में उठना कहते हैं।

दोनों **'मैं'** के बीच का अन्तराल किसी भी जीव के लिए काल और अकाल से परे अदृश्य होता है। इसे अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) कहते हैं। इसमें मेरी देह सहित समस्त युगों युगान्तरों का जगत मेरे लिए नहीं रहता। साथ ही मुझे इसका भी ज्ञान नहीं होता। मेरे और मेरे जगत के समस्त भाव, अभाव, कुभाव, दुर्भाव, सद्भाव और सब कुछ मुझ से भी छिपा कर दिव्यता में उनका अदृश्य दैवीय प्रकरण (processing) होता है। मेरी नीयत के अनुसार उसमें संशोधन और पुनर्निर्माण होता है। किसी श्वास की किसी विशिष्ट नाड़ी में मेरी **'मैं'** के पुनः प्रकट होते ही मेरी देह सहित जगत,

कुछ भी और कैसा भी बन कर प्रकट हो जाता है। यह समस्त प्रक्रिया ईश्वर के हाथ में है। अन्य लोगों के प्रति मेरे भाव-दुर्भाव, वैर, वैमनस्य, निन्दा, प्रशंसा, आडम्बर आदि मेरे जगत में मैं हूँ, तो ही प्रकट होते हैं। अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) में **'मैं'** किस चैनल में लुप्त हुई और माया की किस योनी अथवा चैनल में **'मैं'** प्रकट होगी, यह मेरे हाथ में नहीं है। देह सहित सम्पूर्ण जगत का दृष्टा एक ही है। मेरा धर्म, कर्म, सम्बन्ध, देश, काल, माया के तीनों गुण अर्थात् मुझ सहित मेरा सम्पूर्ण जगत इस अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) में जब मेरे लिए **'लय'** होते हैं, तो वह **'निद्रा'** है और जब **'विलय'** होते हैं, तो **'मृत्यु'** है। जहाँ लय का लय हो जाए, उसे विलय कहा गया है। यह अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) कुछ मिनटों, घण्टों, दिनों, सप्ताहों, महीनों, वर्षों, कुछ जन्मों और कुछ युगों का भी हो सकता है। देह छोड़ी सतयुग में और पुनः द्वापर में पैदा हुए; ऐसा भी हो सकता है। इस अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) में ही गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मूर्च्छावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था हैं। ये सभी अवस्थाएँ प्रत्येक मानव में समान हैं, लेकिन अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) होने के कारण किसी ने अपनी ये अवस्थाएँ नहीं देखी, जबकि इन्हीं में मानव देह, जीवात्मा, परमात्मा एवं समस्त सृष्टि के रहस्य छिपे हैं। ध्पया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

'मैं देह हूँ' इस भाव को मैं युगों-युगान्तरों से लिए चल रहा हूँ। जब एक मानव-देह जीवित, जाग्रत और जानवित (नाम-रूप में) हो, तब एक विशेष अवचेतना के स्तर पर यह भाव प्रकट होता है। वह मानव उठा हुआ हो; चाहे जो, जब, जहाँ, जैसा भी हो। जब देह भाव प्रकट होता है, तो देह सहित जगत के रूप में प्रकट होता है। चाहे देह कैसी भी हो और जगत कैसा भी हो। मुझे यह ज्ञान नहीं होता, कि सुबह निद्रा से उठते ही मेरी देह व जगत कैसा होगा? जिन्हें मैं बहुत चाहता हूँ, मेरे साथ कैसे होंगे? जिन्हें मैं नहीं चाहता अथवा तिरस्कृत करता हूँ, वे मेरे साथ कैसे होंगे? मेरा अतीत और भविष्य नित्य भिन्न होता है। न केवल प्राणी और मेरे तथाकथित

सम्बन्धी बल्कि प्रकृति, मौसम और पशु-पक्षियों सहित समस्त चराचर जगत नित्य भिन्न होता है। मेरा यह होना क्या है, क्यों है, कैसा है?

'मैं' देह नहीं है, स्वयं में अनाम व अरूप आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि है। लेकिन **'मैं'** शब्द एक नाम से कुण्ठित जाग्रत मानव देह के तनिक अवलम्बन से ही प्रकट होता है। जैसे किसी वृद्ध व्यक्ति को उठने के लिए एक लाठी का सहारा लेना पड़े, तो वह व्यक्ति लाठी नहीं हो जाएगा। **जड़ता** में **'मैं'** शब्द **प्रकट नहीं** होता और **महाचेतना** में **'मैं'** शब्द **लुप्त** हो जाता है। 'मैं देह हूँ' एक विस्तृत भाव है, जो युगों-युगान्तरों से **'मैं'** लिए चल रहा हूँ। मेरे अन्य समस्त भावों, अभावों, दुर्भावों, सद्भावों का मूल यह एक भाव ही है। प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, आधि-व्याधि-उपाधि, जन्म-मृत्यु, रोग-दोष आदि भावों का मूल एक महाभाव है—**'मैं देह हूँ'।** भावों में यह भाव न हों और देह में हों, तो देह सहित जगत के होने की अनुभूति नहीं होगी। जिस नाड़ी पर **'मैं'** लुप्त होती है, वहाँ 'मैं देह हूँ' भाव लुप्त होने से अन्य समस्त भाव भी छिप जाते हैं। फिर एक विशिष्ट नाड़ी पर देह भाव (मैं देह हूँ) प्रकट होता है और तभी मेरा जगत सहित उठना प्रमाणित होता है।

मेरे साथ जगत उठा है, इसका प्रमाण यह है, कि देह की पाँच अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था) मुझ सहित समस्त जगत की एक सी हैं। अपनी देह की उन अवस्थाओं को मैंने नहीं देखा। अपने साथ प्रकट अन्य अनेक में इन अवस्थाओं को जैसे मैंने देखा, ऐसे ही मेरी भी थीं और मेरी भी होंगीं। मेरे अनेक में कोई बादशाह है या भिखारी, जैसे वह माँ के गर्भ में था और शैशव बिताया ऐसे ही मेरा भी था। जैसे उसकी मृत्यु हुई और फिर डेढ़ दो किलो भस्मी रह गई, ऐसे ही मेरी भी होगी। एक है तो अनेक हैं, जो अनेक में है, वह एक में है। जो मेरा अनेक है वह '**मैं**' 'एक' हूँ इसलिए 'एक' के साथ अनेक है। मेरा अनेक मेरे 'एक' होने की वजह से है। मेरे एक के होने में जगत का होना है। जब **'मैं'** लुप्त हुई, तो मेरी **'मैं'** पुनः कब प्रकट होगी, मेरे हाथ में नहीं है। एक बार **'मैं'** लुप्त होने के बाद दुबारा लगे या न लगे।

'मैं' लुप्त होने और पुनः प्रकट होने तथा इनके बीच का अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) किसी के हाथ में नहीं है। अन्तराल के दौरान किसी को अन्तराल का ज्ञान एवं अनुभूति नहीं होती, इसलिए अन्तराल अदृश्य रहता है। देहान्त होने पर '**व्यक्तिगत**' 'सब कुछ' नहीं रहता और देहान्तान्त **'भस्मी'** होने पर '**व्यक्ति**' ही नहीं रहता। भाव रूप में '**व्यक्तिगत देह**' और '**व्यक्ति देह**' अलग-अलग हैं। व्यक्तिगत देह नाम-रूप में कुण्ठित एवं गुण्ठित '**गर्भित**' देह है और व्यक्ति देह, जगत सहित '**गर्वित**' देह है। जिस नाड़ी पर तेरी **'मैं'** हटी उसमें 84 लाख में से कोई चैनल लगी हुई थी। **'मैं'** के अप्रकट होने और पुनः प्रकट होने के अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) में तेरे भाव तुझसे भी छिपा दिए गए और अदृश्य दैवीय प्रकरण (Processing) हुआ। अदृश्य अन्तराल का ज्ञान एवं अनुभूति तुझे नहीं हुई और इसका ज्ञान भी लुप्त हो गया, कि तुझे अवचेतना में प्रकट देह व जगत का कोई ज्ञान नहीं है। दुबारा तेरी **'मैं'** जिस नाड़ी की चैनल विशेष में प्रकट होगी, वह अदृश्य दैवीय प्रकरण (Processing) के बाद की चैनल होगी। कृपया एकाग्र करिए:—

'मैं देह हूँ' भाव के प्रकाट्य में प्रत्येक व्यक्ति, जगत सहित होता है। वर्तमान, भूत और भविष्य सहित सम्पूर्ण युगों-युगान्तरों का जगत, एक के होने से प्रकट होता है। यह जगत नित्य नूतन होता है। कोई दो दिन एक जैसे नहीं होते। जिस नाड़ी पर **'मैं'** लुप्त हुई और जिस नाड़ी पर **'मैं'** प्रकट हुई दोनों के मध्य का अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) किसी की स्मृति में नहीं होता। **'मैं'** लुप्त होने के बाद पुनः प्रकट होगी या नहीं, यदि होगी तो कब, किस स्थिति में प्रकट होगी, यह न कोई जानता है और न जान सकता है। 'मैं' सोने के कुछ देर बाद ही प्रकट हो सकती है और हो सकता है अगले जन्म में प्रकट हो। **'मैं'** रात्रि के स्वप्न में भी प्रकट हो सकती है, किसी मूर्च्छा के बाद भी प्रकट हो सकती है। दो **'मैं'** के बीच का अन्तराल अदृश्य ही होता है। इसमें **'मैं देह हूँ'** भाव लुप्त हो जाता है और इसका मुझे ज्ञान नहीं होता।

मेरी **'एक'** की **'मैं'** जब प्रकट हुई, तभी किसी की भी **'मैं'** प्रकट हो सकती है। मेरा उठना **'मैं'** प्रमाणित करता है और **'मैं'** के प्रकाट्य के लिए एक उठी हुई देह चाहिए। दिन भर एक **'मैं'** जगत सहित, व्यवहार में रत रहती है। कहा गया है **'अन्त मति सो गति',** जिस किसी श्वास की विशिष्ट नाड़ी में **'मैं'** लुप्त होगी, वह दिन का अन्तिम श्वास होगा, जिसमें **'मैं'** लगी हुई होगी। वह उस दिन का **'सार'** होगा। मेरी एक धड़कन लगभग एक जैसी 100 योनियों का प्रतिनिधित्व करती है। दिन के अन्तिम श्वास की जिस नाड़ी में **'मैं'** लुप्त हुई, उस नाड़ी में 100 योनियों में से कोई विशेष योनी थी। अदृश्य अन्तराल (Silent Gap) की आन्तरिक दिव्य प्रक्रिया में मेरे अपने भाव मुझसे अदृश्य कर दिए जाते हैं। **'मैं'** पुनः जब प्रकट होगी, तो अवचेतना में चेतना के स्तर के अनुसार उसका देह सहित जगत होगा। देह सहित जगत की सम्पूर्ण प्रस्तुति से पूर्व **'मैं'** सम्पूर्ण दृश्य के एक दृष्टा रूप में प्रस्तुत होता है। यह **एक दृष्टा** अदृश्य अन्तराल में अदृश्य रूप से हुए दैवीय प्रकरण एवं सम्पूर्ण दृश्य का संघनित स्वरूप होता है। उसकी प्रस्तुति पहले होती है, तदनुसार उसकी देह व जगत का होना होता है। तूने 'निद्रा-दर्शन' नहीं किया। निद्रा में तेरे लिए 'कुछ नहीं था', लेकिन तुझे अनुभूति नहीं हुई और उठते ही तूने स्वयं को रात्रि में सोने जा रहा व्यक्ति मान लिया। निद्रा से उठकर होश में तू उस स्थिति की अनुभूति कर, जब तू गहरी निद्रा में था। उठने के बाद होश में **'सोया है'** वाली स्थिति का अधिग्रहण कर। तू सोया था, तभी कहता है, जब तू उठ गया है। तू सोएगा, यह भी उठा हुआ ही कह रहा है। तेरे सोने का प्रमाण तेरा उठना है। तेरे उठने का प्रमाण तेरा सोना नहीं है। **'था'** और **'गा', 'है'** पर आधारित हैं। निद्रा दर्शन है, कि देह व जगत होते हुए भी तेरे लिए देह और जगत न **हो।** जब तक 'है कुछ नहीं' को अनुभव नहीं करेगा, तब तक तेरी विशुद्ध **'मैं'** जाग्रत नहीं होगी और 'मैं देह हूँ' सन्देह रूपी अज्ञान बना रहेगा।

निद्रा में '**था कुछ नहीं**' मृत्यु के बाद भस्मी बनेगी और '**रहेगा कुछ नहीं**'। **तुझे तो 'है कुछ नहीं' का अनुभव करना है, क्योंकि 'मैं' शब्द**

'हैत्व' को प्रमाणित करता है। जब तक कोई भी स्थिति **'है'** की नहीं होगी, तब तक **'मैं'** उसे पकड़ नहीं सकता, क्योंकि **'मैं'** ने तेरे जो, जब, जहाँ, जैसा भी होने को पकड़ना एवं प्रमाणित करना है। गर्भ में नौ महीने में तेरी देह का निर्माण हुआ। जब शिशु था, तो होश नहीं थी। होश सम्भालने तक बहुत सी अवस्थाओं से गुज़रा और तेरा लालन-पालन स्वतः हुआ। होश में तू उस स्थिति का दिग्दर्शन कर, जब तुझे होश थी नहीं। शिशु अबोधतावश यह नहीं जानता, कि मेरा कुछ नहीं है। अबोधता में वह सब कुछ अपना समझता है। तुझे बोधता में ज्ञान हो जाए, कि **'कुछ नहीं'** तेरा है, यही **'बोध'** है, तो तुझे आभास होगा, कि 'सब कुछ' तेरा नहीं है, लेकिन तेरे लिए ही है। सबका **'सब कुछ'** तेरे लिए है और सब तेरे लिए हैं। **बोधता एवं अबोधता में यही अन्तर है।** यह अनुभूति तेरी चेतना की जागृति है।

प्रत्येक मानव, जो कुछ देर भी जिया है उसकी दो अवस्थाएँ शैशव एवं शव सुनिश्चित हैं, मध्य की बाल्यावस्था, जवानी, बुढ़ापा, अति वृद्धावस्था आदि अवस्थाएँ निश्चित नहीं हैं। शैशव में जीव को अपनी देह व जगत का ज्ञान नहीं होता और शवावस्था भी जड़ अवस्था है। इसी प्रकार निद्रा भी है। गर्भावस्था जीवन काल से पहले की है और भस्मावस्था बाद की है। इन पाँचों अवस्थाओं में जब जीव होता है, तो उसका कोई वर्तमान, भूत, भविष्य नहीं होता तथा इसका उसे कोई ज्ञान नहीं होता। हर वर्तमान में तू भूत, भविष्य व वर्तमान एवं स्थान, स्थिति व समय से बँधा है। तू प्रारब्धवश, कर्मवश, कालवश है। तू वर्तमान में अपने अतीत के शोक व भविष्य की असंख्य योजनाओं व चिन्ताओं के बोझ में दबा रहा है, लेकिन तेरे वर्तमान में इन पाँचों अवस्थाओं में से कोई भी नहीं है। क्योंकि ये पाँचों स्वयं में भूत, भविष्य, वर्तमान से परे स्थित्यातीत, कालातीत एवं स्थानातीत अवस्थाएँ हैं।

देह व जगत तेरी मानसिकता है। अब इस मानसिकता से अपनी चेतना का विस्तार कर। **'मैं'** शब्द को प्रकट होने के लिए चेतना का एक विशेष न्यून स्तर चाहिए। अर्थात् एक जीवित व जाग्रत मानव-देह जो, जब, जहाँ, जैसी है, उसके तनिक अवलम्बन से **'मैं'** शब्द प्रकट होता है। तू

जन्मों-जन्मान्तरों से अवचेतना में देह भाव (मैं देह हूँ) की सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में जकड़ा हुआ है। इन पाँचों अवस्थाओं में तेरा देह भाव भी नहीं होता इसलिए इन अवस्थाओं में तू देह को कोई भाव नहीं देता। सम्पूर्ण जगत का भाव तेरे अपने देह भाव पर आधारित है। देह भाव ने ही सारे जगत को भाव दिया होता है। जैसे-जैसे ध्यान में मानसिक प्रकरणों व चिन्तन द्वारा इन अवस्थाओं में प्रविष्टि होगी, तो तेरे अवचेतनामय मानस में चेतना का स्तर ऊँचा होता जाएगा और आनन्दमय मानस से तेरी तुच्छ मानसिकताएँ हटने लगेंगी। ध्यान में इन अवस्थाओं का अवलोकन **'दर्शन'** में रूपान्तरित हो जाएगा और वह दर्शन स्वयं में आलोकित एवं अलौकिक होगा।

ये समस्त मानसिक प्रकरण सद्गुरु कृपा से उसके सान्निध्य में होते हैं। अवचेतना में जड़ता की अवस्थाओं को आत्मसात् करने में अवचेतना जाती रहती है और चेतना जाग्रत हो जाती है। तब ये अवस्थाएँ जड़ता की न होकर महाचेतना की होने लगती हैं। गर्भावस्था पंच-महाभूतों के संगम की अवस्था है। भस्मी पंच-महाभूतों में विलय की अवस्था है। शैशव से शव तक प्रत्येक अवस्था में नाम-रूप की देह होती है। **'भस्मी'** अनाम व अरूप है। भस्मी से आत्मसात् होने के लिए **ब्रह्म चेतना** चाहिए। वहाँ **'मैंत्व'** हट जाता है और मात्र **'हैत्व'** रह जाता है। सद्गुरु कृपा से जीते जी देह की धारणा में भस्मी की अवधारणा (मैं भस्मी हूँ) से देह भाव (मैं देह हूँ) निर्मूल हो जाता है। भस्मी के साथ आत्मसात् होना ही तेरा वास्तविक पहचान पत्र (I.D.) है। इसी से तू यथार्थ देह व तदनुसार जगत का रसास्वादन कर सकता है अन्यथा नहीं।

भस्मावस्था की अनुभूति के लिए देह चाहिए। देह को ध्यान में क्रमशः क्षरित होते हुए अनुभव करने से पंच-महाभूतों में अपना ही विस्तार दर्शित होने लगता है। ध्यान में अपनी देह अग्नि-युक्त नर कंकाल नज़र आती है। मैं उस समय अग्नि-युक्त भस्मी का कंकाल होता हुआ, पंच तत्वों से परे होता हूँ। भस्मी अविशेष है, जिसमें दो विशेष विलय हो गए। एक तो विशेष

'नाम' और दूसरे **'नाम'** पर आधारित समस्त ताम-झाम जले हुए कागज़ के क्षरित अक्षरों सा अविशेष हो जाता है। किसी कागज़ को जलाओ, तो कागज़ जल कर भी भस्मीमय कागज़ सा रहता है। उसमें लिखे अक्षर भी कुछ-कुछ नज़र आते हैं, हांलाकि उन अक्षरों का भस्मी के अतिरिक्त कुछ भी अर्थ नहीं होता। अतः न वह कागज़ रहता है और न वह अक्षर होते हैं। वे **'क्षर'** अक्षर होते हैं और वह अक्षर **'भस्मी'** होता है।

पहले शैशवावस्था में तेरे **'रूप'** का **'नाम'** रखा गया था। धीरे-धीरे जैसे-जैसे तूने स्वयं को उस नाम-रूप से पहचाना तेरा हर रूप उस **'नाम'** का हो गया। तू स्वयं में नाम का ही रह गया। तेरा स्वभाव, रोग-दोष, सुकृतियाँ-विकृतियाँ, गुण-अवगुण, धर्म, कर्म, सम्बन्ध सब कुछ उस नाम का होकर रह गया। नाम युक्त देह की भस्मी **'अविशेष'** है, जिसमें तेरे दोनों (नाम तथा अन्य विशेष) विशेष समाप्त हो जाते हैं। जब **'मैं'** ध्यान में उस भस्मी से आत्मसात् हो जाता है, तो उसे अपने विशुद्ध स्वरूप की स्मृति जाग्रत हो जाती है। अपने जीवन्त वर्तमान में इन अवस्थाओं में एकाग्र करते हुए तू ध्यानस्थ होगा, तो तेरे लिए तेरा वर्तमान भी लुप्त हो जाएगा और तू काल से अकाल हो जाएगा। समय के भूत व भविष्य का आधार तेरा वर्तमान है। तेरी **'मैं'** भी लुप्त हो जाएगी, जो रहेगी वह तेरी चेतना रहेगी। वहाँ तेरा होना विशुद्ध चेतनामय मानस का द्योतक होगा। उस समाधि अवस्था से बाहर आने पर तेरे सम्मुख जो देह होगी वह अवचेतना में जो, जब, जहाँ, जैसी नहीं होगी, बल्कि विशुद्धतम व यथार्थ **'मैंमयी'** देह होगी। वह आत्मामयी देह किंचित माया का स्पर्श लेते हुए समस्त माया का रसास्वादन ही करेगी। वहाँ समस्त जगत में तू स्वयं को ही देखेगा और तू सर्वार्थ एवं हितार्थ ही जगत में विचरण करेगा। ध्यान में अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होते-होते इसके नित्य नित्याध्यासन द्वारा तेरा **'कुछ नहीं है'** तुझे हृदयंगम हो जाएगा। उस विरक्त अवस्था में तेरे **'स्व'** और **'सर्व'** (सर्वस्व) का समस्त निर्देशन, प्रबन्धन स्वयं ईश्वर द्वारा ही होगा।

मानव जीवन रूपी सम्पूर्ण फिल्म में कुल छः आयाम हैं, जिनमें पाँच (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था) मध्यान्तर हैं। इन पाँचों अवस्थाओं में **'मैं'** (आत्मतत्व) होता है, लेकिन देह और जगत के होने अथवा न होने का आभास नहीं होता। जो देह व जगत मुझे समय-समय पर दर्शित होता है, वह पहले से बना-बनाया है। मेरे लिए अदृश्य उपर्युक्त पाँचों अवस्थाएँ भी पहले से बनी-बनाई हैं। माँ के गर्भ में एक भ्रूण (Zygote) अदृश्य प्रायः बिन्दु रूप में पदार्पण से लेकर मृत्योपरान्त भस्मी बनने तक सम्पूर्ण जीवन का चलचित्र **'प्रारब्ध'** नामक केस फाइल के तहत पहले से बना-बनाया होता है। माया का सद् है, कि यह **'चलचित्र'** की नाईं सतत् गतिमान एवं परिवर्तनशील है। माया प्रकट होती है, इस प्रकाट्य के पीछे आनन्द और चेतना का अद्भुत समन्वय है। सफेद पर्दा **अचल** व **स्थिर** रहता है और उस पर **'चलचित्र'** चलता है। **चलचित्र, दृश्यमान है और अचल, (पर्दा) अदृश्य है।** समय-समय पर मेरी मानसिकता के अनुसार इनकी प्रस्तुति मेरे द्वारा, मेरे लिए होती रहती है। लेकिन होश आने से होश जाने तक के दृश्यमान आयाम में मुझे कर्ता होने का भ्रम हो जाता है। क्योंकि होश सम्भालते ही मैं **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित अपनी देह के साथ तद्‌रूप सा हो जाता हूँ। मेरा प्रारब्ध-दर-प्रारब्ध बनने लगता है और मैं जन्मों-जन्मान्तरों के काल-चक्र में भ्रमित भटकता रहता हूँ।

सद्‌गुरु-कृपा के हस्तक्षेप से सतत् चलती जीवन रूपी फिल्म के दौरान इन पाँच मध्यान्तरों की अवधारणा एवं अनुभूति जन्मों-जन्मान्तरों से अबाध चलते चलचित्र में रुकावट बनते हुए प्रारब्ध के मूलोच्छेदन का हेतु बनती है। इसके बाद चलने वाला जीवन रूपी चलचित्र, विचित्र होता है। जीवन रूपी चलचित्र का हर दृश्य सुख-दुःख, लाभ-हानि, रोने-हँसने का ही होता है। इसमें आनन्द की धारणा ही नहीं है। आनन्द अभावमय है। प्रारब्ध रूपी सज़ा की केस फाइल के अन्तर्गत चलते दृश्यों में अभावमय आनन्द अथवा अदृश्य मानस रूपी शुभ्र पर्दे को देखा और अनुभव नहीं किया जा सकता। चलचित्र पर्दे पर ही चलता है और पर्दा उस दौरान होते हुए भी अचल व

अदृश्य रहता है। पर्दा स्वयं में कोई चित्र भी नहीं है। साथ ही पर्दे पर सुख-दुःख, लाभ-हानि, रोने-हँसने का कोई प्रभाव नहीं होता। सद्गुरु यत्न द्वारा प्रारब्धवश चलते जीवन रूपी सुख-दुःख पूर्ण चलचित्र में हस्तक्षेप करके, उसे रोककर काट देता है और उसके स्थान पर प्रवचन-श्रवण, यज्ञ, हवन आदि प्रकरण करवाते हुए नए दृश्य दिखाता है। उनके चलते अपने चलचित्र को **'स्वयं सहित'** हम भूल जाते हैं। अन्ततः सद्गुरु वे दृश्य भी हटाकर आनन्दमय मन रूपी निर्मल, स्थिर, अप्रभावित शुभ्र पर्दे (है कुछ नहीं) की उपस्थिति के प्रति सजग कर देता है।

जीवन रूपी यज्ञ का प्रसाद भस्मी है। चलते चलचित्र के दौरान मानस रूपी पर्दे पर कोई प्रभाव नहीं होता, लेकिन सद्गुरु द्वारा डाली गई रुकावट के बाद आगे आने वाली फिल्म आनन्दमय होती हुई प्रभावित हो जाती है। सद्गुरु यज्ञ-हवन, तीर्थ-यात्रा, जप-तप, पौराणिक कथाओं, प्रवचन और अपने द्वारा निर्देशित कृत्यों द्वारा प्रारब्ध को रोक देता है और परम सुख की स्थिति उत्पन्न कर देता है। यह स्थिति सबको मस्त व स्थिर कर देती है। आगे चलने वाली फिल्म प्रारब्धवश नहीं, सद्गुरुवश चलती है। क्योंकि सद्गुरु ने चलते चलचित्र में रुकावट करके मानव-देह का अर्थ (भसम) या पर्दा दिखा दिया। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में प्रकट युगों-युगान्तरों की दृश्यमान सृष्टि ईश्वर का चरित्र है। **अचल** की **'चाल'** है और अचल का **'चलन'** है। चलचित्र पहले से अंकित (Recorded) है। यदि तू अचल का अधिग्रहण नहीं करेगा, तो चलचित्र द्वारा प्रभावित होते हुए सुखी-दुःखी होता रहेगा। इस मायिक चलचित्र की कोई भी स्थिति तुझे स्थित नहीं कर सकेगी, क्योंकि प्रत्येक स्थिति गति से एवं गति में है। तू चल सकता है लेकिन चला नहीं सकता। प्रभु तुझे चलाना चाहता है, इसलिए तू चल रहा है। तू विवेक बुद्धि से उसकी चाल देख।

मानव-जीवन असंख्य क्षणों का समूह है, लेकिन गति से एवं गति में निरन्तर चलता जीवन क्षण-भंगुर है, क्योंकि कोई भी क्षण अन्तिम हो सकता है। जब जीवन में सद्गुरु का पदार्पण होता है, तो जीवन

उत्सवमय हो जाता है और जीवन का प्रत्येक क्षण, अक्षुण्ण होने लगता है। युगों-युगान्तरों से जन्मों-जन्मान्तरों में व्यतीत हो रहे क्षणिक क्षणों में, विशिष्ट सद्‌गुरु-कृपा से प्रकट कुछ अक्षुण्ण क्षण, वे आणविक क्षण हैं, जिनके प्रभाव से आज तक व्यतीत समस्त क्षणिक, नश्वर व क्षण-भंगुर क्षण, अक्षुण्ण हो जाते हैं। साथ ही आने वाले समस्त क्षणों की अक्षुण्णता की सुनिश्चितता भी हो जाती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16 जुलाई से 27 सितम्बर 2011)

माया (अकाल)

(भाग - 4)

आनन्द एक अनुभूति है। हम सद्‌गुरु द्वारा निर्देशित यज्ञ-हवन, जप-तप, भजन-कीर्तन, ध्यान-समाधि एवं विशेष पुरुषार्थपरक प्रकरणों द्वारा देह से देहातीत होते हुए आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं। तीर्थ-यात्रा, दान-पुण्य, सद्‌गुरु-सेवा, वेद-वेदान्त, श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, उपनिषदों, आत्मानुभूति आदि ग्रन्थों का पठन-पाठन, स्वाध्याय, मनन-चिन्तन, स्तुति, सिमरन आदि समस्त प्रकरण देह द्वारा ही होते हैं। मानव-देह धारण करने का एकमात्र लक्ष्य **आत्म-दर्शन** है। किसी भी आत्म-चिन्तक को देह से ही देहातीत स्थिति की अनुभूति करनी है। इसलिए जब तक देह सिद्ध नहीं होगी, तब तक आत्म-चिन्तन में न प्रवृत्त करेगी और न ही सहायक होगी।

'मैं' देह नहीं हूँ, यह जानकर-मानकर इसकी सिद्धि मात्र सद्‌गुरु कृपा से मिलती है। आत्मानुभूति और आत्मान्वेषण के दौरान कई बार असद् का संधान होता है। उसमें आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। जहाँ रंच मात्र भी अहं आ गया, कि मैंने इतना जप-तप किया तो आत्म-चिन्तन का स्पर्श तक सम्भव नहीं है। देह और देह द्वारा किए गए अथवा हुए, कृत्यों का कर्ता भाव जब पूर्णतः समर्पित हो जाए और इस समर्पण का भी समर्पण हो जाए, तब देह ही आत्म-चिन्तन में प्रविष्टि दिलाती है। आत्म-स्वरूप की प्रामाणिकता और सत्यापन के बाद जो देह होगी, वह यथार्थ व असीम होगी। **'मैं'** (जीवात्मा) जीव कोटि में

देहमय हो गया, तो सीमित हो गया और देह **'मैं मयी'** हो गई तो असीम हो गई।

मानव-देह ईश्वरीय प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम सुकृति है। इस में एक ऐसा गुण है जो अन्य प्राणियों की देह में नहीं है। प्रभु ने प्रत्येक मानव को दैहिक, बौद्धिक एवं मानसिक तीन प्रकार की शक्तियाँ दी हैं। दैहिक व बौद्धिक शक्ति सीमित है और कितना भी बढ़ा लो सीमित ही रहती है। मात्र मानव ही प्रकृति का उल्लंघन कर सकता है और करता है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त, प्रकृति का उल्लंघन करने की क्षमता का मानव जैसे चाहे उपयोग, सदुपयोग या दुरुपयोग कर सकता है। लेकिन उल्लंघन करने की इसकी क्षमता सीमित है। भोग और योग दोनों में मानव, प्रकृति का उल्लंघन करता है। वास्तव में इस उल्लंघन द्वारा हम कुछ ऐसा पाना चाहते हैं, जो देह की सीमाओं से परे हो। देह के साथ अनबन यहीं से शुरू होती है, जबकि मैं जानबूझ कर देह की सीमाओं का उल्लंघन देह व देहों के सुखों के लिए करता हूँ। एक दिन जीवन समाप्त हो जाता है। मैं सीमाओं के विस्तार से असीम होना चाहता हूँ। मेरी दिशा ही विपरीत है। इस तथाकथित विकास की चाहत में मेरी अज्ञात खोज अपने स्थिर एवं असीम स्वरूप की ही है, जो देह सहित साकार जगत की विविध सीमित विधाओं में है ही नहीं।

'मैं' (जीवात्मा) स्वयं में अपरिवर्तनीय हूँ। अतः यदि मैं कोई परिवर्तन चाहता हूँ, तो इसका अर्थ यही है, कि देह के साथ तद्रूपतावश इस समय जो स्थिति है, उससे मैं तंग आ गया हूँ। मैं इसी को जीवन में विकास या उत्तरोत्तर वृद्धि मानता हूँ। यह तथाकथित विकास और वास्तव में ह्रास, हमारी सीमाओं की सीमितता को और भी पुष्ट करता है। देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, पाप-पुण्य, ऊँच-नीच, शुभ-अशुभ, रीति-रिवाज, मर्यादाएँ आदि, जो कुछ भी है, वह हमारी सीमाओं की प्रतिबद्धता की परिपुष्टि (पुष्टि पर पुष्टि) ही है। **'देह'** और **'मैं'** दोनों, सीमाओं के कारण दुःखी हैं। इन सीमित सीमाओं को देह द्वारा, देह के

उल्लंघन से तोड़ा जा सकता है। मानव-देह स्वयं में सद् है, इससे आनन्द व चेतन की अनुभूति करने के लिए मुझे देह के दौरान, देह की सीमाओं से पार जाना होगा। ईश्वर असीम है, जीवात्मा भी असीम है और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की माया का यह प्रपंच भी स्वयं में असीम है। प्रश्न उठता है कि इस समस्त प्रपंच का प्रतिनिधित्व करने वाली मानव-देह सीमित क्यों है?

'मैं' (जीवात्मा) उस मानव-देह से नाम-रूप में तद्‌रूपता सी के कारण सीमित हुआ, जो स्वयं में असीम है। प्रभु कृपा से जब मैं उसका आश्रय भी लेता हूँ, तो देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता सी के कारण सीमित की सीमाओं का विस्तार ही मेरा लक्ष्य होता है। अपना जो भी मैंने सोचा, वह सीमित ही सोचा। सीमित लोग मेरे शासक हुए, सीमितों पर मैंने शासन किया और शासक कहलाया। सीमाओं का संकुचन और सीमाओं का विस्तार दोनों सीमाओं में ही हैं। मुझे सीमाएँ ही अच्छी लगने लगीं, क्योंकि असीम का अनुभव हुआ ही नहीं। मेरी प्राप्तियाँ, सोच, कर्म-भूमि, कर्मठता, चाहतें, आकांक्षाएँ, महत्वाकांक्षाएँ, योजनाएँ, परियोजनाएँ, पाना, खोना, खुशी, गम सब सीमित से सीमित में रहे। कल मैं बहुत खुश था, क्योंकि दुःख सीमित था, आज मैं दुःखी हूँ क्योंकि सुख सीमित है। मेरी मान्यताएँ, पूजाएँ, यहाँ तक कि ईश्वर की धारणा भी सीमित रही। मेरी सीमितता का ही विस्तार होता है और अन्ततः मैं सीमित ही रहता हूँ। इसलिए मेरी देह का यथार्थ, आत्मस्वरूप एवं ईश्वर तीनों आच्छादित हो गए। पहले मुझे आश्वस्त होना होगा, कि मैं असन्तुष्ट हूँ। मुझे कुछ ऐसी वस्तु चाहिए जो मुझे सीमाओं से पार ले जाए। मैं जीवात्मा रूप में और देह रूप में, सीमाओं से पार ही हूँ।

मानव-देह सीमित इसलिए हो गई, क्योंकि मैंने इसे सीमित मान लिया। जन्म से पहले और मृत्यु के बाद शव की भस्मी बनने के अकाल-काल को हम मानव उपेक्षित किए रहते हैं। मेरा स्वरूप असीम है। **'मैं'** देह की सीमाओं में स्वयं को नहीं पा सकता, इसलिए देह

में, देह की अधिकतम सीमा तक पाकर भी असन्तुष्ट रहता हूँ। मात्र भोगों में कभी मन किंचित एकाग्र होता भी है, तो बाद में ग्लानि हो जाती है। देह असीम की श्रेणी में तब तक नहीं आएगी, जब तक हमारी चाहत **'असीम'** की नहीं होगी। मैंने सीमित से असीम होने के लिए कभी उस असीम का आश्रय नहीं लिया। एक बार असीम का आनन्द मिलने पर सीमाएँ खलती नहीं हैं, बल्कि लीलाएँ बन जाती हैं। ध्पया एकाग्र करिए :—

'मैं' स्वयं में आनन्द-स्वरूप है और आत्मतत्त्व का द्योतक शब्द है, जिस के प्रकाट्य के लिए एक जाग्रत मानव देह का होना अत्यावश्यक है। लेकिन स्वयं में **'अभावमय' 'मैं'** जन्म-मृत्यु की सीमाओं में बंधी देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता सी में **'अभाव में'** हो गया। फिर जो भी **'मैं'** (जीवात्मा) ने प्राप्त किया अभाव में ही रहा, क्योंकि मैं **'अभाव में'** ही देह के साथ तद्‌रूप हुआ। इसलिए मेरा सब कुछ करना, पाना, खोना, होना **'अभाव में'** ही हुआ। अन्ततः **'अभाव में'** देह छोड़ी और **'अभाव में'** ही पुनः देह मिली। अध्यात्म सर्वोपरि देहातीत का ज्ञान है, जहाँ से हमारे मानस एवं देह सहित जगत का संचालन होता है। सबकी अपनी मानसिकता के अनुसार ही देह सहित जगत का होना, होता है।

बुद्धि का विकास पृथक् है और दैहिक है। चेतना व आनन्द ईश्वरीय है। बुद्धि की तीव्रता, A से Z तक ली गई विभिन्न (B.A., M.A., C.A., Ph. D. etc.) डिग्रियों, धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा आदि से चेतना के स्तर का कोई सम्बन्ध नहीं है। शेर का बच्चा पैदा होते ही शिकार नहीं करता। धीरे-धीरे उसकी बुद्धि एवं शरीर का विकास होता है और एक समय पर वह दहाड़ते हुए, बड़े-बड़े पशुओं को मार कर पहाड़ की चोटी तक खदेड़ता हुआ ले जाता है। उसकी शारीरिक, बौद्धिक शक्तियों का विकास तो होता है, लेकिन उसकी चेतना उसी स्तर पर रहती है। जड़ बुद्धि पशु जड़ ही रहता है। वह पैदायशी जानवर है और जानवर ही मरता है। इसी प्रकार मानव बहुत सी डिग्रियाँ प्राप्त कर लेता है, ऊँचे से ऊँचे पद और शासकों का शासक तक बन जाता है, लेकिन यह बौद्धिक व

भौतिक विकास उसकी चेतना का विकास नहीं है। जिसका विकास होता है, उसका ह्रास अवश्य होता है, यह प्रकृति का नियम है। चेतना का विकास जन्मों-जन्मान्तरों तक चलता है और उस गरिमा के अनुसार दैवीय शक्तियों द्वारा समस्त प्रबन्धन एवं सुख-सुविधाएँ आदि प्रदान की जाती हैं। मानव का मूल्य उसकी बुद्धि के विकास से नहीं, बल्कि चेतना के विकास से माना जाता है।

विशुद्ध चेतना में देह व जगत का होना नहीं है। **देह व जगत का होना अवचेतना में ही है।** हम मानव अपनी तीव्र बुद्धि से बहुत धन, सम्पत्ति आदि एकत्र कर लेते हैं, लेकिन चेतना का स्तर वहीं का वहीं रहता है। एक निर्धन व्यक्ति चेतना के उच्चतम स्तर पर है, इसलिए उसका मानस विशाल है। एक अति धनी व्यक्ति चेतना के न्यून स्तर पर होने के कारण अति संकीर्ण मानसिकता का रहता है। देह की सीमाओं को बढ़ाने में हमारा दायरा विस्तृत हो जाता है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से मानस अति तुच्छ व संकुचित हो जाता है। नाम-यश, धन, पद-प्रतिष्ठा, डिग्रियों, आदि की सीमाएँ ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिए हम आकुल, व्याकुल, लालायित, उद्वेलित, विह्वल, अतृप्त, असन्तुष्ट रहते हैं।

24 कैरट सोने में आभूषण नहीं बन सकता। उसमें थोड़ा तांबा मिलाकर आभूषण गढ़ा जाता है। इसलिए 22 कैरट का आभूषण विशुद्धतम माना जाता है। आभूषण 22 कैरेट सोने का हो, 18, 9 अथवा 7 कैरेट का हो, सब सोने के हैं, लेकिन सबमें परस्पर बहुत अन्तर है। अन्तर सोने की विशुद्धता का है और मूल्य भी 7 कैरेट का न्यूनतम और 22 कैरेट का अधिकतम होगा। चाहे 7 कैरेट का आभूषण अधिक चमकदार हो। इसी तरह **मानव देह से देह की भिन्नता वस्तुतः चेतना के स्तर की है।** बिना सद्‌गुरु की कृपा के जीव को ज्ञान नहीं होता, कि उसकी अज्ञात खोज काहे की है। देह सहित साकार जगत की विधाओं में अपनी सीमाओं के अधिकतम विस्तार के बाद भी, जब यह स्वयं को असन्तुष्ट और सीमित पाता है तो किसी जन्म में इसे अकारण कृपावश सद्‌गुरु की

शरण मिलती है।

प्रत्येक दिन जीवन-काल **में** अन्तिम दिन होता है और कोई भी दिन, जीवन-काल **का** अन्तिम दिन हो सकता है। एक ही दिन प्रत्येक के लिए अलग-अलग है और प्रत्येक दिन प्रत्येक के लिए अलग-अलग होता है। कभी दो दिन एक जैसे नहीं होते। यह काल-वर्णन की भौतिक दृष्टि है, आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक दिन, प्रत्येक के जीवन का अन्तिम दिन भी होता है। अगले दिन देह-दृष्टि से मैं वह नहीं होता, जो कल रात सोया था। सम्पूर्ण जीवन-काल में प्रत्येक दिन के काल में स्वतः, सतत् परिवर्तन होते रहते हैं और उन परिवर्तनों के साथ हमारा प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट जगत भी बदलता रहता है। देह के कुछ परिवर्तन हमारी स्मृति में अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं। कुछ बहुत दुःखद, सुखद, चमत्कारिक घटनाएँ, दुर्घटनाएँ हमारे स्मृति कोष का अभिन्न अंग होती हैं। स्वतः उम्र बढ़ती है, बुद्धि की अबोधता, बोधता एवं परिपक्वता में बदलती है और एक दिन शारीरिक, बौद्धिक शक्तियों का ह्रास होते-होते मृत्यु हो जाती है। परिवर्तनशीलता प्रकृति का अटल नियम है। चाहे प्रारब्धवश मान लें अथवा अन्यथा, **नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता देह का शाश्वत व अपरिवर्तनीय 'सद्' है।**

माया ईश्वरीय '**सद्**' है। सम्पूर्ण माया चलचित्र की नाईं सफेद पर्दे रूपी निर्मल व शुभ्र मानस पर चलती है। **'चलचित्र'** के चलने के लिए सफेद पर्दे का **'होना'** अत्यावश्यक है, साथ ही उसका **'अचल'** एवं **'अदृश्य'** होना भी अनिवार्य है। जब चित्र चलते हैं, उन्हें **'चलचित्र'** कहा जाता है और जब चलचित्र रुक जाता है, तो वह **'चित्र'** बन जाता है। पर्दा स्वयं में कोई चलचित्र (फिल्म) अथवा चित्र नहीं है। पर्दा अचल व सफेद है तथा चलचित्र चलने के दौरान **'अदृश्य'** रहता है। सारांश में चलचित्र चलने के दौरान पर्दे की उपस्थिति अचल एवं अदृश्य रूप से होनी अत्यावश्यक है। माया के रहस्यों को हृदयंगम करने एवं रसास्वादन करने के लिए इससे सरल दृष्टान्त नहीं हो सकता।

जब चलचित्र अदृश्य होगा, तभी सफेद पर्दा दृश्यमान होगा। फिल्में पर्दे ने नहीं बनाई, क्योंकि फिल्म पहले से बनी-बनाई है। चाहे मुझे कोई दृश्य पसन्द आए, चाहे न आए, प्रत्येक चलचित्र में जो भी अंकित (Recorded) दृश्य हैं, वैसे के वैसे आएँगे ही। उसमें कहानी है, नायक-नायिका, खलनायक, विदूषक आदि विभिन्न पात्र हैं, जो अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए प्रकट होते हैं। उसमें प्रेम, घृणा, संगीत, नृत्य, रोना, हँसना सब कुछ मिला-जुला कार्यक्रम हमारे जीवन की ही तरह होता है। सफेद पर्दे पर फिल्म प्रारम्भ होने से पहले कुछ विज्ञापन और ट्रेलर आदि चलते हैं और उससे पहले सफेद पर्दा दृश्यमान रहता है। इसी प्रकार फिल्म का अन्त समाप्त (The End) के रूप में होता है। अन्त के अन्त में समाप्त भी ओझल हो जाता है और हमें सफेद पर्दा पुनः दृश्यमान हो जाता है। जिन्होंने फिल्म देख ली होती है, वे बाहर जाने लगते हैं और अगला शो देखने के इच्छुक लोग सिनेमा हॉल में प्रविष्ट होने लगते हैं।

दृश्यमान सफेद पर्दा यह दर्शाता है, कि फिल्म का एक शो समाप्त हो गया है और अगला प्रारम्भ होगा। सफेद पर्दे का दृश्यमान होना प्रारम्भारम्भ का प्रारम्भ भी है और अन्तान्त का अन्त भी है। यदि हम कभी सिनेमा हॉल में देर से पहुँचे और कुछ फिल्म निकल गई हो, तो जो फिल्म निकल गई है, हमें उसे जानने की उत्सुकता होती है। इसी प्रकार किसी कारणवश फिल्म समाप्त होने से पहले सिनेमा हॉल से बाहर आना पड़े, तो आगे की फिल्म को जानने का कौतूहल भी बना रहता है। फिल्म के मध्य में मध्यान्तर होता है। लम्बी फिल्मों में दो मध्यान्तर भी होते हैं। इनके विषय में हमें ज्ञान होता है, कि फिल्म मध्यान्तर में पहले जहाँ छोड़ी थी, बाद में वहीं से प्रारम्भ की जाएगी। सफेद पर्दे के रूप में दृश्यमान यह मध्यान्तर जानते-बूझते डाली हुई रुकावट होती है, जिसका हमें पूर्ण ज्ञान होता है।

हमारी जीवन रूपी फिल्म भी लगभग ऐसी ही है। यह चलचित्र काल

से बँधा है। इसमें समयानुसार विविध दृश्य रुलाएँगे, हँसाएँगे, हम चाहे हँसे-रोएँ चाहे न हँसे-रोएँ। प्रारब्धानुसार एक अदृश्य प्रायः बिन्दु अथवा भ्रूण (Zygote) रूप में माँ के गर्भ में मेरी देह के पूर्ण निर्माण एवं जन्म (शैशव) से लेकर शव एवं शव की भस्मी बनने तक की मेरे जीवन की पूरी फिल्म पहले से अंकित (Recorded) होती है। तदनुसार समय-समय पर मेरे लिए उसकी प्रस्तुति होती है। मैंने संसार रूपी सिनेमा गृह का सफेद पर्दा कभी नहीं देखा। जब मेरी प्रविष्टि हुई तब तक मेरे जीवन के बहुत महत्त्वपूर्ण परिदृश्य निकल चुके थे। अपनी गर्भावस्था एवं शैशवावस्था मैंने नहीं देखी। निद्रावस्था मध्यान्तर की तरह रही और मृत्यु रूप में शव तथा भस्मी बनने से पूर्व मैं संसार रूपी सिनेमा गृह से बाहर निकाल दिया गया।

जीवन रूपी चलचित्र के पाँच मुख्य एपीसोड हैं—गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था। चलते चलचित्र में तेरे जीवन के ये पाँच एपीसोड तेरे स्वयं के लिए अदृश्य हैं और अचल सफेद पर्दे पर ही चलते हैं। ये किसी भी जन्म में तूने स्वयं में, न कभी देखे हैं और न देख सकता है। अगले पल क्या होने वाला है, यह तेरे हाथ में नहीं है। मृत्यु का कोई निश्चित समय, स्थान, अवस्था और स्थिति नहीं है। चाहे किसी भी समय, किसी भी स्थान पर, किसी भी अवस्था और स्थिति में तू मृत्यु को प्राप्त हो सकता है और तू मात्र डेढ़ दो किलो भस्मी ही रह जाएगा। इसी देह की पाँच अवस्थाओं में जगत सहित तेरी देह का बाध हो जाता है और तू स्वयं में देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत व त्रिगुणातीत होता है। स्वयं में तेरा जीवन-काल भी कुण्ठित व गुण्ठित है। क्योंकि होश सम्भालने से पूर्व की शैशवावस्था एवं गर्भावस्था का काल तेरे लेखे-जोखे (Record) में नहीं है।

होश सम्भालने से होश जाने तक के काल में तू एक दिन के 24 घण्टों में यदि 6 घण्टे भी सोता हो, तो इस निद्रावस्था में तुझे स्वयं का एवं जगत का कोई आभास नहीं होता। तेरा यह जीवन-काल भी कितना

अधूरा है। जीवन-काल में देह की पाँच अवस्थाओं में तू **'अकाल'** स्थिति में होता है। उस समय तुझे देह व जगत का कोई आभास नहीं होता, लेकिन तू काल (समय, स्थान, स्थिति) के शिकंजे से मुक्त होते हुए भी स्वयं में नहीं होता। क्योंकि देह व जगत का आभास न होने का ज्ञान एवं अनुभूति भी तुझे नहीं होती। इसलिए जब भी तू होता है, जन्मों-जन्मान्तरों में काल के वश ही होता है। जिस प्रकार तेरे लिए अदृश्य पाँच अवस्थाएँ पहले से अंकित (Recorded) होती हैं, उसी प्रकार तेरी तथाकथित जागृति का समय भी प्रारब्ध के अंकन के अनुसार बना-बनाया होता है। तू यह सोच तेरा कर्म क्या है? इस चलचित्र में जो तू कर रहा है, वह तो उस अंकन (Recording) के अनुसार समय-समय पर तुझ से तेरे जगत सहित करवाया जा रहा है।

तेरे लिए अदृश्य पाँचों (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) अवस्थाओं में तू देहातीत होता है। इन मध्यान्तरों का दर्शन कर, और इन्हें रुकावट बना, काल से अकाल में प्रविष्टि पा। यह तेरा निजी मानवीय कर्म है। **जीवन-काल से जीवनाकाल (जीवन+अकाल) होना ही तेरा कर्म है।** महा+काल=महाकाल और महा+अकाल=महाकाल। काल या अकाल के साथ जब असीमता (महा) जुड़ जाएगी, तो काल की सीमाएँ ही तुझे असीम '**द्वार**' दिखा देंगी। जीवनकाल में अपनी देह की जिन पाँच अवस्थाओं (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) को तू उपेक्षित कर रहा है, उनमें तेरे जीवनकाल का समस्त रहस्य छिपा है। तू उनका **'दर्शन'** कर। ये पाँचों अवस्थाएँ तेरे अपने लिए अदृश्य रहती हैं, इसलिए इनकी अनुभूति तेरे लिए **'दर्शन'** बन जाएगी। तू अपने साथ प्रकट अन्य+एक=अनेक, का सदुपयोग कर। उनमें उन अवस्थाओं को तू देख सकता है, जो तू अपनी नहीं देख सकता। तू कभी एक व्यक्ति रूप में प्रकट नहीं होता, जो जगत तेरे साथ प्रकट होता है, उनमें ये पाँच अवस्थाएँ समान दर्शित होती हैं। अतः ये सम्यक् हैं। तू अपने में उन्हें

आत्मसात् कर। जब तू अपने में उन्हें आत्मसात् करेगा, तो तू एक-अनेक से परे देहातीत हो जाएगा। तेरी दृष्टि सम्यक् हो जाएगी। तू काल-बन्धन से मुक्त हो जाएगा। जिनका तुझे दर्शन व अनुभूति करनी थी, उनमें से दो एपीसोड (गर्भावस्था एवं शैशवावस्था) तेरे होश सम्भालने से पूर्व निकल गए। गर्भावस्था वाला परिदृश्य तो तूने तथा तेरे तथाकथित माता-पिता और सम्बन्धियों ने भी नहीं देखा। वह ऐसा परिदृश्य था, जो दिव्यता ने, दिव्यता से, दिव्यता द्वारा, दिव्यता के लिए ही डिज़ाइन किया। इस परिदृश्य द्वारा तू स्वयं में पूर्णतः आश्वस्त हो सकता है, कि चराचर जगत सहित तेरी देह के निर्माण में कोई भी मानवीय बुद्धि पूर्णतः अक्षम है।

गर्भावस्था का नौ महीने का समय तेरे जीवन के प्रारम्भ का आरम्भ अथवा प्रारम्भारम्भ था। जीवन का प्रारम्भ तू देह के जन्म से मानता है, इसलिए शैशवावस्था तेरे जीवन की प्रारम्भिक अवस्था है। यह अवस्था भी तूने नहीं देखी, जबकि तेरा जन्म हो चुका था और तू जीवित था। तू खाता-पीता, सोता-जागता, हँसता-रोता, हँसाता-रुलाता था। तू जानता है, तू शैशवावस्था में शिशु देह रूप में था और तू मानता भी है। शिशु रूप में तेरी निद्रा और उठना दोनों जड़ता में थे। जो कुछ तेरे लिए हुआ, वह अपने परिपक्व होश में विचार करके देख ले, तू होश में कर ही नहीं सकता।

ये पाँच अवस्थाएँ हमने अन्य में देखी हैं। अपनी इन अवस्थाओं के समय हमें देह अवचेतना (Body Consciousness) की होश (Awareness) नहीं होती। हमारी समस्त तथाकथित जागृति (Awareness) वस्तुतः अवचेतना (Consciousness) में है। देह अवचेतना (Body Consciousness) की तथाकथित जागृति (Awareness) जगत सहित देह के रूप में होती है। वहाँ **'नाम'** की वजह से प्रत्येक व्यक्ति, व्यक्तिगत (individualised) हो जाता है। We are degraded, demarked, demolished, demoralised, disturbed, disdirected, diverted and remain in depression because of this individualisation. मानव-देह के

साथ नाम-रूप की तद्‌रूपता सी एवं 'मैं देह हूँ' के सन्देहवश तथाकथित सांसारिक पहचान (I.D) में हम सबका यह हाल हो गया। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

'मैं' सर्व अथवा कुल समष्टि का द्योतक शब्द है और **'मैं'** **'स्व'** का नहीं **'सर्व'** का है। नाम, एक व्यक्ति का व्यक्तिगत है। मानवों में यह परम्परा है, कि प्रत्येक व्यक्ति के सम्बोधन एवं पहचान के लिए उसका **'नाम'** रखा जाता है। मानव अपने पालतू पशु का भी नाम रखता है। अन्य प्राणी, पशु, पक्षी, जलचर, कीट-पतंगे आदि अपनी-अपनी जाति से जाने जाते हैं और फल, फूल, वनस्पतियाँ आदि भी जाति से जानी जाती हैं। हर फूल, फल, वनस्पति का अपना अलग आकार-प्रकार व सुगन्धि है। प्रत्येक मानव को उसके नाम से सम्बोधित करते हुए ही जगत व्यवहार चलता है। कोई मानव **'नाम'** लेकर पैदा नहीं होता, लेकिन नाम रखने से लेकर मृत्यु तक देह के असंख्य बदलते रूपों में **'नाम'** वही रहता है। इसलिए हर व्यक्ति नाम से मरता है, कि अमुक-अमुक की मृत्यु हो गई। अमुक-अमुक पैदा नहीं हुआ था, क्योंकि जन्म के समय उसका कोई नाम था ही नहीं। मात्र देह का रूप था।

एक समय पर तेरा **'नाम'** रखा जाता है और बौद्धिक विकास की एक विशिष्ट स्थिति में तू स्वयं को उस नाम से जानने लगता है। **'नाम'** की देह है, इसलिए अन्यार्थ है और यथार्थ से कोसों दूर है। **'मैं'** आपा (Self) है, जो सब की एक है, लेकिन यह 'मैं देह हूँ' वाली **'मैं'** है। यह वस्तुतः एक जटिल्य (Complex) है। जब तूने बुद्धि के विकास की अवस्था में स्वयं को **'नाम'** से पहचानना आरम्भ किया, तो तू चेतना से अवचेतना में आ गया। बुद्धि का विकास होने पर यदि **'चेतना'** का ह्रास हो रहा है, तो तेरी अधोगति होती है। वहीं तुझे काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन जकड़ लेता है। तुझे मानव-देह, चेतना के विकास के लिए मिली है। अपने इस निजी मानवीय कर्म के लिए तू स्वतन्त्र है।

चेतना का विकास होना आरम्भ तब होता है, जब मानव परिपक्व व

समर्पित बुद्धि द्वारा अपनी देह की जड़ता की स्थितियों का दर्शन करते हुए उनकी अनुभूति करता है। इन अवस्थाओं के दर्शन से मन स्थिर होना शुरू हो जाता है और बुद्धि में चेतना का विकास होने लगता है। अवचेतना में जो दर्शित है, उसमें अवचेतना ही दृष्टिगत होती है। जड़ता की स्थितियों का दर्शन चेतना से होगा। उस दर्शन से जब अवचेतना में लौटेगा, तो उसमें चेतना का स्तर बढ़ा हुआ होगा। मानवीय बुद्धि की परिपक्वता में जीव जान जाता है, कि अपनी देह की दो अवस्थाएँ (गर्भावस्था एवं शैशवावस्था) जो अतीत में बीत चुकी हैं, उसने नहीं देखीं। जब भी वह होता है, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था हमेशा उसके लिए भविष्य बनी रहती हैं। निद्रावस्था अतीत और भविष्य दोनों रहती है। **इन पाँचों अवस्थाओं में उसने अपना होना कभी अनुभव नहीं किया, इसलिए हर होनी उसे विचलित, क्षुब्ध, व्यथित, असन्तुष्ट, अतृप्त व आसक्त करती रहती है।** अत्यधिक तीव्र बुद्धि होते हुए भी जलचर, थलचर, नभचर और अन्य प्राणी जगत यह बात नहीं जान सकता। मानव मात्र और मात्र मानव को प्रभु ने अपनी चेतना और आनन्दमय मन से नवाज़ा है। जब हम अपनी देह द्वारा अपनी इन अवस्थाओं का ध्यान करते हैं, तो अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ने लगता है।

हे मानव ! तूने अपनी गर्भावस्था एवं शैशवावस्था नहीं देखी, लेकिन तू उन अवस्थाओं से गुज़रा है, इसलिए तू अब है। तू है, तो काल से बँधा है। तू है, तो वे अवस्थाएँ थीं। उनका चिन्तन करते हुए उन स्थितियों की अनुभूति करेगा तो, तू काल से अकाल में प्रविष्टि पा लेगा। तेरा होना यथार्थ हो जाएगा। तू काल की समय, स्थान एवं स्थिति तीनों विधाओं से परे होते हुए अकाल स्थित्यातीत स्थिति की अनुभूति करेगा। ये अवस्थाएँ तूने जगत में अन्य लोगों की देखी हैं और अपनी तुझे कभी दर्शित नहीं हुईं, इनके **'दर्शन'** से तेरी चेतना जाग्रत होनी शुरू हो जाएगी। तू अब अपनी उस अवस्था का ध्यान कर, जब तेरी देह का निर्माण हो रहा है। देह का एक-एक सैल, कोशिका और समस्त कार्य-प्रणालियाँ वह अज्ञात

शक्ति बना रही है। अतः जिसे तू अपनी देह मानता है, उसके एक-एक रोम का स्वामी मात्र परमात्मा ही है। फिर तू अपनी शैशवावस्था का ध्यान कर। उस मानसिक स्थिति की अनुभूति कर, जब तू शिशु था, अपरिपक्व बुद्धि के कारण तू उस स्थिति और अपने अधिकारों की अनुभूति नहीं कर सका। तुझे अपने किसी सम्बन्ध, कुल, जाति, यहाँ तक कि अपने नाम का भी पता नहीं था। भूख लगने पर तू रोता था, मानो रुदन ही तेरी भाषा थी। उस स्थिति में प्रविष्टि होने पर तुझे अनुभूति होने लगेगी, कि अब भी जगत जननी आद्याशक्ति माँ भवानी ही अनेक रूपों में तेरा पालन-पोषण कर रही है। जड़ता का दर्शन चेतना से होगा। अपने साथ प्रकट जगत में तूने लोगों को शव बनते एवं भस्मी बनते देखा है। तू भी ऐसे ही शव बनकर पड़ा होगा। उसके शव की भस्मी बन गई, ऐसे ही एक दिन तू भस्मी बनकर पड़ा होगा। यह भस्मी सबकी एक जैसी है।

भस्मी **'अकाल'** है और मृत्यु **'काल'** है। काल व अकाल दोनों का स्वामी **'महाकाल'** है। काल की तीन विधाओं समय, स्थान एवं स्थिति में **'स्थिति'** सबसे महत्त्वपूर्ण है और समय तथा स्थान उससे बँधे हैं। स्थिति का अर्थ **'स्थिरता'** है। काल की कोई भी स्थिति स्वयं में **स्थिति सी** है, क्योंकि हर स्थिति गति से और गति में है। स्थान और समय की स्वामिनी स्थिति को समस्त विधाओं सहित किसी **'स्थित'** को समर्पित करना परमावश्यक है। जगत को देखते-देखते हम स्वयं को देखना भूल जाते हैं। जीवन के नग्न सत्यों को यथावत् स्वीकार करना अत्यावश्यक है। हम जीवन में उन विधाओं से संघर्षरत हैं, जिनसे जूझने का कोई अर्थ ही नहीं है।

काल-बन्धन को स्वीकार करना आवश्यक है, क्योंकि हम काल, कर्म एवं प्रारब्धवश हैं। स्थान, समय और स्थिति को जो, जब, जहाँ, जैसा भी तू है, प्रणाम कर दे। काल अपना स्वयं का परिचय दे देगा और काल का पाश काल ही छुड़ाएगा। काल ही 'भस्मी' से आत्मसात् करा देगा और शिव से मिलवा देगा। एक-अनेक के रहस्य के **'सद्'** से काल अवगत कराएगा। यदि काल-बन्धन को यथावत् स्वीकार नहीं करेगा, तो काल

प्रतिरोधी होते हुए विकराल हो जाएगा। शंकर काल से अकाल में ले जाएगा। **शिव, कालमूर्ति, कालज्ञ और काल-नाशक है।**

सद्‌गुरु कृपा से जीते जी देह की धारणा में, मृत्यु की अवधारणा जब धारणा बन जाती है, तो मृत्यु अतीत बन जाती है। जीते जी मृत्योपरान्त मानस स्थिति, भविष्य का उल्लंघन है। भविष्य व अतीत, किसी वर्तमान का ही होता है। जिसके आगे भविष्य है, वह वर्तमान होगा और उसके पीछे कोई न कोई अतीत अवश्य होगा। इस प्रकार समय के तीनों रूप वर्तमान, अतीत व भविष्य **'वर्तमान'** की ही तीन विधाएँ हैं। भविष्य का उल्लंघन वह है, जहाँ आगे कोई भविष्य न हो अर्थात् आगे वहाँ न कोई वर्तमान हो, न अतीत हो। जहाँ अतीत, वर्तमान व भविष्य में से किसी **'एक'** का उल्ल्ंघन हो गया, कि वह पुनः न आए तो तीनों का स्वतः उल्लंघन हो जाएगा। देह की भस्मी, काल के वशीकरण से छुटाएगी। भस्मी जीवन-काल में निश्चित, दर्शित व परिलक्षित ऐसा भविष्य है, जिसके आगे कोई भविष्य नहीं है। इस प्रकार भविष्य के उल्लंघन से, समय के तीनों स्वरूपों का उल्लंघन हो जाता है और **'अकाल'** स्थित्यातीत स्थिति में प्रविष्टि हो जाती है। जीवन काल में जो मृत्यु हमेशा तेरा भविष्य बनी रहती है, वह अतीत बन जाएगी, क्योंकि तूने भविष्य का उल्लंघन कर लिया।

मैंने जीवन-काल, गर्भ में आने से **'भस्मी'** बनने तक, को माना है। यदि किसी से पूछो, कि आप माँ के गर्भ में आने से पहले क्या थे, कहाँ थे ? वह कोई न कोई अनुमान लगाएगा, लेकिन **'भस्मी'** बनने के बाद **'भस्मी'** ही रहेगी। भस्मी स्थिति, एक भौतिक अन्तान्त है, जिसके आगे भविष्य नहीं है। उसके पीछे कोई अतीत भी नहीं है और उसके मध्य में वर्तमान नहीं है। जहाँ आप समय की तीनों विधाओं से परे हुए, वहाँ स्थान और स्थिति से भी परे होंगे। काल से परे होकर आप **'अकाल'** में होंगे। सृष्टि, स्थिति प्रारब्ध है और काल में है। **'काल'** से **'अकाल'** में प्रविष्टि **'पुरुषार्थवश'** होती है। यहाँ तक जीव का कर्म है। उसके आगे दैवीय

कृपा का ही क्षेत्र है। **'अकाल'** स्थिति के बाद वह अकाल स्वयं महाकाल से मिला देगा।

जन्म से मृत्यु तक तेरे सम्पूर्ण जीवन का चलचित्र पहले से प्रारब्ध रूपी केस फाइल के अन्तर्गत अंकित (Recorded) दृश्यों के अनुसार चलता है। समय-समय पर जो तुझे मिलना, बिछुड़ना है, तदनुसार होता रहता है, लेकिन **तेरी चेतना का स्तर तेरे द्वारा किए गए पुरुषार्थ से ही बढ़ेगा।** मानव होने के नाते यही तेरा कर्म है। शेष सब कुछ तो स्वतः हो रहा है। चेतना के स्तर की वृद्धि सद्गुरु और इष्ट की कृपा का सुफल है। जिस चेतना के स्तर पर तूने सर्वप्रथम स्वयं को देह के रूप और उसके रखे गए **'नाम'** से पहचाना, वह चेतना का अति न्यून स्तर था। तू अबोध शिशु से धीरे-धीरे बोधता में प्रविष्टि पा रहा था। तू धीरे-धीरे बड़ा हुआ, तेरी बुद्धि परिपक्व हो गई, तुझे कई डिग्रियाँ मिली, नौकरी अथवा व्यापार में उन्नति हुई, विवाह हुआ, सन्तान मिली, परिवार एवं देह का रूप बिल्कुल बदल गया, लेकिन तू उसी नाम से स्वयं को पहचानता रहा। यही तेरा तथाकथित विकास हुआ है। देह के विभिन्न रूपों में **'नाम'** वही रहना जगत व्यवहार के लिए आवश्यक था, लेकिन अपनी देह के रूप के साथ नाम-रूप में तेरी तदरूपता हो गई। पहले तेरा नाम रखा गया था, अब उस **'नाम'** ने तुझे अधिगृहीत और वशीभूत कर लिया। तेरी शक्तियाँ बढ़ गईं, डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा, परिवार बढ़ गया, बुद्धि तीव्र से तीव्रतम हो गई लेकिन तेरी चेतना उसी स्तर पर रही। इस विकास में तीव्र बुद्धि होते हुए भी वास्तव में तेरी चेतना का ह्रास होता है, क्योंकि देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता का अध्यास हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट होता रहता है।

सम्पूर्ण जीवन में करना, पाना-खोना-होना और सब कुछ विशिष्ट बनी-बनाई अंकित चैनल के तहत है, जिसका नाम 'प्रारब्ध' है। हम सब प्रारब्धवश हैं, इसके साथ काल और कर्म की विवशता जुड़ी हुई ही है। हम जिस समय जो, जहाँ कर-करवा रहे हैं, उसके लिए वशीकृत हैं। हमारी सृष्टि ऐसी बनी है, कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक ब्रह्माण्ड है और कोई

भी कर्म व्यक्तिगत नहीं है। अपने नाम से अपना स्वयं का परिचय देते और मानते ही मेरा सब कुछ **'नाम'** द्वारा अधिकृत हो जाता है। मृत्यु के समय यह सब मुझे अधोगति में ले जाता है। **'नाम'** का भयंकर स्वरूप व ताण्डव सबको उस समय अवश्य नज़र आता है। काल से बँधे जीवन रूपी चलचित्र के प्रत्येक एपीसोड में एक भूत, भविष्य होता है क्योंकि वर्तमान होता है।

सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की संघनित **'अभिव्यक्ति'** एक व्यक्ति है। उस व्यक्ति ने जब स्वयं को जन्म के बाद में रखे गए एक नाम से पहचानना शुरू कर दिया, तो वह **'व्यक्तिगत'** हो गया। वह **'नाम'** का बन गया। स्वयं में वह, व्यक्ति सहित सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति था। **'नाम'** में कुण्ठित व गुण्ठित रूप के साथ तद्‌रूपता में वह एक तुच्छ, संकीर्ण, संकुचित **'जीव'** बन गया। व्यक्ति का सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, ख्याति उसके बौद्धिक विकास से नहीं, चेतना के विकास से जाना और माना जाता है। चेतना का विकास ईश्वर भक्ति से होगा। ईश्वर कृपा से ही देह की अदृश्य अवस्थाओं का दर्शन होगा। किसी भी मानव को अपने होने का आभास व ज्ञान इन पाँच (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) अवस्थाओं से अन्यथा का है और उसके होने में ये पाँच अवस्थाएँ हैं। कोई व्यक्ति जो, जब, जहाँ, जैसा है, वह **'मैं'** जटिल्य (Complex) में होता है। इसके अन्तर्गत अपनी बोधता में इन पाँच अवस्थाओं का ज्ञान अनुभूतिगम्य नहीं, सुना-सुनाया है। दृष्टा जीवात्मा किसी जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेकर प्रकट होने पर इनका भी दृष्टा है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

मैं निद्रा से उठा, तो मुझे ज्ञान हुआ, कि मैं सोया था और सोने से पहले क्या था। जब मैं सोया था, तो मुझे ज्ञान नहीं था, कि मैं उठूँगा। सोए हुए मुझे ये भी ज्ञान नहीं था, कि मैं सोने से पहले क्या था? क्योंकि सोए हुए मुझे यह मालूम नहीं था, कि मैं सोया हूँ इसलिए मुझे यह मालूम नहीं था, कि सोने से पहले मैं क्या था? बिल्कुल ऐसे ही शैशवावस्था में मुझे मालूम नहीं था, कि मैं शैशवावस्था में हूँ और जन्म से पहले मैं माँ के गर्भ

में था। उस समय मुझे देह की अवचेतना नहीं थी। 'मैं देह हूँ' यह देह-भाव अवचेतना में ही प्रकट होता है। दृश्यमान देह सहित जगत में सुनकर, चखकर, सूंघकर, स्पर्श करके एवं देखकर देखना **'बोधता'** है। यह बोधता शैशवावस्था में अबोधतावश नहीं होती। बुद्धि के विकास की एक अवस्था है, जिसमें अवचेतना (मैं देह हूँ) की चेतना हो जाती है। इससे पहले शिशु निद्रावस्था में और जागते हुए दोनों स्थितियों में जड़ता में होता है। मैंने जड़ता की इन स्थितियों को जब देखा **'मैं'** स्वयं जड़ता से परे था, लेकिन अवचेतना में था। साथ ही जो मैंने अन्य का देखा, मेरा भी ऐसा ही है।

जो जड़ अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) तू अन्य में देख रहा है, ऐसी ही तेरी अपनी भी हैं। अतः इन जड़ अवस्थाओं में कोई भेदभाव नहीं है। सबकी जड़ता एक है। अवचेतना में जो कुछ है, वह पृथक्-पृथक् है और यह पृथक्ता अवचेतना में ही है। जड़ता एवं पूर्ण चेतना में देह व जगत का होना, नहीं होता। अवचेतना में चेतना का स्तर पृथक्-पृथक् होता है। अवचेतना में चेतना के उच्च स्तर पर ऊपरी चमक-दमक का कोई भाव नहीं होता। यह मानव-देह तेरे सच्चिदानंद स्वरूप की अनुभूति के लिए ईश्वर प्रदत्त सुकृति है, जो अति कृपा करके तुझे लब्ध हुई है। तेरी देह की पाँचों जड़ अवस्थाओं में सर्वोत्तम भस्मावस्था है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था एवं मृतकावस्था में तेरी देह किसी न किसी विशेष जाति, धर्म, कुल, काल, सम्बन्ध, लिंग अथवा गुण, अवगुणमयी होगी। लेकिन भस्मावस्था में तेरे लिए तेरी देह ही नहीं होगी। **'भस्मी'** अनाम के साथ अरूप भी है। जो अनाम है, वह **'कुछ नहीं'** है और वह तेरा है। जो नाम से है, वह तेरा नहीं है। नाम रूप की तद्‌रूपता में अज्ञानवश तुझे भ्रम हो गया, कि 'मैं देह हूँ'। मैं देह हूँ—यह संदेह है। पहले तो तुझे अपने सन्देह का ही ज्ञान नहीं था। सद्‌गुरु सेवा, कृपा, ध्यान, चिन्तन-मनन से तुझे अपने अज्ञान (सन्देह) का ज्ञान हुआ और अज्ञान दूर हुआ तथा तुझे अपनी स्मृति आ गई। चेतना का

यह विकास ही वास्तविक विकास है।

मानव-देह के साथ सम्पूर्ण सृष्टि देकर तुझे प्रभु पुनः पुनः स्वर्ण अवसर देते हैं, कि तू जान ले, मान ले एवं अनुभूति कर ले, कि तू देह नहीं है, तेरा कुछ नहीं है। तू जानता है, कि जो कुछ तेरे नाम से है, उसका तुझे कोई भोग नहीं है और वह सब तेरे लिए तनाव का विषय बना हुआ है। तू अतृप्त, आसक्त, असन्तुष्ट जन्म-दर-जन्म भटक रहा है। तेरी समस्त दौड़ **'अतिरिक्त'** के लिए है, क्योंकि तेरा नाम अतिरिक्त है। इसलिए तू अति रिक्त ही रहता है। तेरी **'अति रिक्ति'** ही **'अतृप्ति'** एवं **'आसक्ति'** है। **'अति रिक्ति'** निरन्तर बढ़ती ही है। जीव को उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए भगाती है, जो अन्ततः छोड कर जाने हैं।

वह शक्ति जो संसार की ओर भागती है, उसे आसक्ति कहा गया है। आसक्ति स्वयं में अप्रकट शक्ति है। आसक्ति पदार्थो की है, जो भीरुता की जननी है और समस्त विभूतियों का आच्छादन करके विकृतियाँ प्रकट कर देती है। विरक्ति उत्पन्न होते ही आसक्ति नहीं रहती। विरक्ति स्वयं में वीरता है, अप्रकट शक्ति है। आसक्ति शक्ति का अभिमान सबको होता है। हम अपने द्वारा एकत्र भौतिक पदार्थों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करते हैं। सन्त महापुरुषों की कृपा से और उनके सत्संग से विरक्ति शक्ति मिल जाती है। आसक्ति और विरक्ति दोनों शक्तियाँ एक साथ एक समय में नहीं रहतीं। जब विरक्ति शक्ति जाग्रत हो जाती है तो आसक्ति में कभी रूपान्तरित नहीं होती। लेकिन आसक्ति का प्रभु कृपा से विरक्ति में रूपान्तरण हो जाता है।

समर्थ सद्‌गुरु घोर आसक्त की मानसिकता बदलते हुए उसे महा विरक्त बना सकता है। सद्‌गुरु प्रवचन, श्रवण, प्रकरण, यजन, संकल्प, विकल्प, परिकल्प और अपने निर्देशन में किए-करवाए किसी भी कृत्य-अकृत्य द्वारा शिष्य के जीवन रूपी अबाध चलते चलचित्र को रोक देता है। सद्‌गुरु शब्दों द्वारा, स्पर्श द्वारा, दृष्टि द्वारा, चरणामृत द्वारा, क्रोध-प्रेम द्वारा और अपने निर्देशन में करवाए गए प्रकरणों द्वारा **'अकाल'**

परम सुख की स्थित्यातीत स्थिति में ले जाता है। सद्गुरु द्वारा डाली गई रुकावट में उसके यत्न द्वारा प्रस्तुत दृश्य **'अकाल'** में होते हैं।

जब तू अपनी ही देह की अनाम व अरूप भस्मी से आत्मसात् हो जाएगा, तो अपने स्वरूप की स्मृति तुझ में जाग्रत हो जाएगी। **'भस्मी'** देह का **अर्थ** है। इस अर्थ से आत्मसात् होने का प्रकरण पुरुषार्थ का शुभारम्भ **'अर्थ'** है यहाँ तू **'द्विज'** हो जाता है। **'मैं'** का कोई नाम-रूप नहीं है और भस्मी भी अनाम और अरूप है। **'मैं'** शब्द आत्म-तत्त्व का प्रतिनिधि है और **'भस्मी' 'विरक्ति'** की प्रतिनिधि है। 'मैं देह हूँ' एक **'व्यक्तिगत जटिल्य'** (Individual Complex) एवं सन्देह है, जो आसक्तिजन्य है। 'मैं भस्मी हूँ' यह **'समष्टिगत सहजता'** (Totality Simplex) विरक्तिजन्य है। विरक्ति पुरुषार्थ का द्वितीय सोपान, **'धर्म'** है। **'अर्थ'** की पूर्णतः सिद्धि होने पर '**धर्म**' के इस सोपान पर तू **'त्रिज'** हो जाता है।

ज्ञान-ध्यान का समस्त विषय भक्ति से प्रस्फुटित होता है तथा **'भक्ति'** का प्रादुर्भाव विरक्ति से होता है। **'विरक्ति' 'भाव'** अदृश्य है। भस्मी भाव वस्तुतः स्वयं में विरक्ति भाव है, अतः **'विरक्ति' विभूत्यातीत विभूति** है और स्वयं में **'दर्शन'** है। समस्त विभूतियों के मूल में विरक्ति भाव है। इसका प्राकट्य सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ख्याति, ऐश्वर्य आदि विभूतियों के रूप में दृश्यमान होता है। विरक्ति के साथ एक अदम्य चाहत, गुप्त भाव के रूप में प्रकट होती है, जिसे **'भक्ति भाव'** कहते हैं। भक्ति का मूल **'विरक्ति'** ही है। भक्त को मात्र ईश्वर और ईश्वर मात्र की चाहत होती है। विरक्ति भाव से सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति आदि विभूतियाँ तो न चाहते हुए भी प्रकट होती ही हैं, साथ ही ईश्वर की अदम्य चाहत (जिसे रोका नहीं जा सकता) युक्त भक्ति भाव प्रकट होता है। यह भाव ईश्वर की विशुद्ध भक्ति बनकर प्रकट होता है। चन्दन यदि सुगन्ध न चाहे, तो भी सुगन्धित तो होगा ही। भक्ति स्वयं में दुर्लभ भाव है, जिसका प्रकाट्य अर्चना, आराधना, विह्लता, उन्माद, रोमांच, अश्रुपात, तड़पन, दीवानगी आदि में होता है। भक्ति, भाव भी है और भक्ति प्रकाट्य भी है।

भक्ति भाव प्रकट होने पर समस्त सांसारिक भटकन समाप्त हो जाती है और ईश्वर प्राप्ति की तीव्रतम इच्छा का प्रादुर्भाव होता है। भक्त आकुल-व्याकुल हो जाता है, यह पुरुषार्थ का तृतीय सोपान **'काम'** है, जो उसे मात्र प्रभु की कामना करवाता है। यहाँ वह **'चतुर्ज'** हो जाता है। भक्ति की सिद्धि होने पर अति प्रभु कृपा से जब प्रभु स्वयं भक्त को चाहने लगते हैं, वही पुरुषार्थ का अन्तिम सोपान **'मोक्ष'** अथवा **'अनुराग'** है। यह **'पंचज'** पद का आभास करवाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 से 16 सितम्बर एवं 4 से 13 अक्टूबर 2011)

माया (अमुक)

(भाग – 5)

किसी भी मानव-देह में देह का **'मुख'** या रूप (चेहरा) मुख्य है। व्यक्ति की पहचान और परिचय उसके मुख से ही की तथा करवाई जाती है। मानव-देह में प्रमुख **'मुख',** देह का मुखिया है, क्योंकि मुख स्वयं में मुख सहित सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधि है। रूप (देह) का एक नाम, मात्र परिचय, पहचान, जगत व्यवहार एवं सम्बोधन के लिए रखा जाता है। किसी भी नाम का अपना कोई रूप नहीं है। एक ही नाम कितने ही लोगों का रखा जाता है और मात्र रूप (मुख) से किसी के नाम का ज्ञान नहीं होता अर्थात् कोई भी नाम स्वयं में **'अमुख'** या **'अरूप'** है। जिस नाम का अपना कोई मुख नहीं है, कालान्तर में वह नाम उस **'मुख'** का हो जाता है। **'नाम'** का अपना कोई भी नाम नहीं है। नाम रखने पर पूछा जाता है, कि क्या नाम रखा? कि **'अमुक'** नाम रखा। **'अमुख'** से **'अमुक'** शब्द बना। नाम, जो स्वयं में अनाम और अरूप (अमुख) है, जब एक रूप सहित सम्पूर्ण देह पर अधिकार कर लेता है, तो **'अमुक'** हो जाता है।

अमुक नाम के व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं दूसरों से पृथक् करने के लिए उसके साथ अनेक **'अमुक'** और जुड़ जाते हैं। जब तक अमुक नाम **'मुख'** या रूप का था, तब तक समस्या नहीं हुई, लेकिन जब **'मुख'** नाम का हो गया तो धर्म, कर्म, देश, सम्बन्ध, पद, प्रतिष्ठा, डिग्रियाँ, व्यवसाय आदि अनेक अमुक जुड़ने से हर व्यक्ति अमुक-अमुक होते हुए, एक दूसरे से पृथक् हो गया। जब कोई एक रूप (देह) अमुक नाम का हो गया और **'मैं'**

(आत्मतत्त्व का शब्द रूप में प्रतिनिधि) ने स्वयं को उस नाम से पहचाना, तो वहाँ कई अमुकों के लिए **'मैं'** जटिल्य (Complex) जाग्रत हो गया। नाम का मुख होने में **'मैं'** नाम-रूप की देह से तद्‌रूपता सी में जीव-सृष्टि में उतरता हुआ ईश्वर विमुख हो गया। प्राप्य की प्राप्तियों में संघर्षरत, लब्ध को उपलब्ध करता हुआ अनेक अमुकों में घिर गया। यह अमुकता मानवों में ही होती है। पशु-पक्षी प्राणी जगत अपनी जाति से जाना जाता है। कृपया एकाग्र करिए:–

मानव शिशु जन्म के समय कोई नाम लेकर धरा पर नहीं आता। उसका मात्र एक रूप होता है। रूप को मुख कहते है। उस मुख का एक नाम पहचान, सम्बोधन एवं जगत व्यवहार हेतु रखा गया। यह नाम स्वयं में अनाम एवं अरूप था। जब अमुख (नाम) का स्वयं में अनाम **'मुख'** हो गया, तो उसे **'अमुक'** कहा गया, कि मैं अमुक (नाम) हूँ, वह अमुक व्यक्ति है; आदि-आदि। जब तक मात्र सम्बोधन और पहचान की बात थी, तब तक मुख (रूप), मुख था और अमुख (नाम), अमुख था। लेकिन जब नाम ने 'रूप' सहित सम्पूर्ण देह को अधिगृहीत कर लिया, तो रूप **'तद्‌नाम'** हो गया अर्थात् मुख (रूप) उस नाम का हो गया, जो स्वयं में अमुख है। इस प्रकार रूप सहित नाम से व्यक्ति तद्‌नाम होते हुए 'अमुक' नाम का व्यक्ति हो गया। इसके बाद जितना भी इसने अपने नाम को बढ़ाने और भौतिक उपलब्धियों के लिए कार्य किए, वे सब असंख्य अमुक इसके साथ जुड़ गए; क्योंकि सब एक नाम से जुड़कर उस नामक व्यक्ति के हो गए। अमुक डिग्री, अमुक पद, अमुक बिल्डिंग, अमुक व्यापार, अमुक राज्य, अमुक रियासत, अमुक स्थान, अमुक भूमि-खण्ड, अमुक सम्बन्ध, अमुक धर्म, अमुक कर्तव्य आदि में जीव भटकने लगा। जीव-सृष्टि में हर व्यक्ति अमुक-अमुक हो गया। **'अहंकार'** बढ़ गया और **'अधिकार'** समाप्त हो गया। जीव को **'नाम रोग'** हो गया, उसका सुख, चैन, शान्ति, संतोष, विश्राम समाप्त हो गया। स्वयं ईश्वर (परमात्मा), आत्मतत्त्व (जीवात्मा) और मानव-देह का यथार्थ तीनों आच्छादित हो गए। एक ही जीव

कोटि-कोटि जीवों की सृष्टि में **अमुक-अमुक करते-करते बार-बार मुकने (मरने) लगा।**

इस अमुक-अमुक का क्रियान्वयन एवं प्रस्तुति **'मैं'** शब्द से होती है, जो सबका एक ही है। **'मैं'** स्वयं में अनाम और अरूप (अमुख) है। अमुक (नाम) **'स्व'** अथवा एक व्यक्ति का है और उसके अन्य समस्त अमुक उस नाम के हैं। **'मैं'** सर्व का एक ही और एक जैसा है। नाम पृथक्-पृथक् हैं और अमुक नाम के साथ जो अन्य अमुक-अमुक हैं, वे भी पृथक्-पृथक् हैं। लेकिन अमुक-अमुक की प्रस्तुति एवं अधिग्रहण जिस **'मैं'** के बिना नहीं हो सकता, उस **'मैं'** का अपना कोई रूप नहीं है, इसलिए **'मैं'** का अपना कोई नाम नहीं है। अमुक-अमुक देह जो, जब, जहाँ, जैसी जाग्रत (होश में) है, उसके तनिक अवलम्बन से आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द, **'मैं'** प्रकट होता है। **'मैं'** जो, जब, जहाँ, जैसी नहीं है, बल्कि हमेशा से वैसी की वैसी है और देह के साथ प्रकट समस्त जगत की एक ही है। यद्यपि देह के साथ जगत होता ही है, लेकिन एक जाग्रत मानव-देह के तनिक अवलम्बन लेकर प्रकट होने पर **'मैं'** को भ्रम हो गया, कि मैं अमुक-अमुक हूँ। यहाँ **'मैं'** का स्वरूप, ईश्वर का ईश्वरत्व एवं मानव-देह का यथार्थ तीनों पर आवरण पड़ गया। वहाँ जन्मों-जन्मान्तरों से अमुक-अमुक में फंसे जीव को सद्‌गुरु उसकी देह (अमुक-अमुक) के साथ प्रकट अन्य (अमुक-अमुक) में उनकी **'भस्मी'** दिखाता है। यह भस्मी हर अमुक-अमुक देह का निश्चित, दर्शित, परिलक्षित भविष्य है। देह विशेष (अमुक नाम) और विशेष देह (अन्य अमुक) की भस्मी स्वयं में **'अविशेष'** है, जिसमें दोनों (अमुक-अमुक) विलय हो जाते हैं।

हमें मानव देह धारित है। हम जी नहीं रहे, बल्कि भटक रहे हैं। **प्रारब्ध में भटकते हैं और भटकने से प्रारब्ध बनता है।** इससे मुक्ति के लिए **'पुरुषार्थ'** अपेक्षित है। जीवन में जो कुछ मिलना अथवा नहीं मिलना है, वह प्रारब्धवश है, लेकिन पुरुषार्थ प्रारब्ध में नहीं लिखा होता। पुरुषार्थ सद्‌गुरु की कृपा से होता है। 'मैं देह हूँ' यह अहं व सन्देह है। हम इस सन्देह रूपी

अज्ञान को नहीं जानते और जानना भी नहीं चाहते; यह हमारे अहंकार की पराकाष्ठा है। जो मानव-देह निःसन्देह ईश्वर की सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट सुकृति है, उसके लिए मुझे निःसन्देह जन्मों-जन्मान्तरों से सन्देह हो गया, कि मैं देह हूँ। पहले यह मानना आवश्यक है, कि 'मैं देह हूँ' यह मेरा अज्ञान (सन्देह) है। **'सन्देह'** का अर्थ शक (Doubt) नहीं है, बल्कि **'सदेह'** के ऊपर ऊंकार का बिन्दु लगने से बना **'सन्देह'** एक शास्त्रीय शब्द है। **'मैं'** का कोई एक नाम-रूप है ही नहीं। जिस **'मैं'** का एक नाम एक रूप है, उसी **'मैं'** के सब नाम-रूप हैं।

तू अमुक (नाम) अमुक (रूप) है, यह मानने के कारण ही तू घोर सन्देहवश जन्मों-जन्मान्तरों में भटक रहा है। इसे तू जीवन की दिनचर्या मानता है। सन्देह के कारण तेरी हर सोच संशयात्मक (In doubt) होती है, हर कृत्य-अकृत्य संशयपूर्ण (doubtful) एवं हर पाना-खोना अनेकानेक संशयों से भरा (Full of doubts) होता है। तू जीव नहीं, विशुद्ध आत्मतत्व (जीवात्मा) है, जो एकमात्र दृष्टा है। **'मैं'** शब्द में तेरा प्रकाट्य एक जाग्रत मानव-देह के होने पर होता है, लेकिन तेरा अमुक-अमुक होना ईश्वर विमुखता का परिणाम है। जब तेरा रूप (देह) एक नाम के साथ तद्नाम हो गया और तेरा **'मैं'** जटिल्य प्रकट हुआ, तब तू **'नाम-रूप'** में तद्रूप सा हो गया। समस्त राग, द्वेष, वैर, वैमनस्य, रोग, दोष, हीन भावना, विकृतियाँ, स्पर्धाएँ, प्रतिस्पर्धाएँ, आधि, व्याधि, उपाधि, अहंकार, जन्म, मृत्यु एवं जरा आदि तेरे अमुक अमुक होने में हैं। तेरा यह होना सन्देह में है। प्रारब्धवश हुई प्राप्तियों का तुझे अहंकार हो गया और तू समस्त अधिकार खो बैठा। प्रारब्धवश से कर्मवश एवं कालवश भी हो गया। तेरी समस्त विभूतियाँ ही विकृतियाँ बन गईं।

जीवन **में** जीव जो-जो चाहता है, वह प्रारब्धवश ही मिलना अथवा खोना होता है। जब सद्गुरु कृपा से इसकी सोच इस दिशा में हो जाती है, कि जीवन क्षण-भंगुर है और कोई भी श्वास अन्तिम हो सकती है। जीवन में जो कुछ प्राप्त होता है अथवा खोता है, वह सब कुछ मैं न तो साथ

लेकर दुनिया में आया था और न साथ लेकर दुनिया से जाऊँगा। आखिर मैं कुल जीवन **से** क्या चाहता हूँ? तब इसमें विवेक जाग्रत होता है। यह 'मैं देह हूँ' सन्देहवश अमुक-अमुक के संचय एवं संग्रह से उदासीन हो किसी महापुरुष की खोज में भटकने लगता है। सब मानवों में जो जीवित हैं और तथाकथित होश में हैं, उनमें **'मैं'** शब्द समान है और नाम भिन्न-भिन्न हैं। अतः **'मैं'** किसी एक नाम-रूप का नहीं हो सकता। **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द है, जिसके प्रकाट्य के लिए एक जीवित व जाग्रत (होश में) मानव-देह का होना आवश्यक है। **'मैं'** अमुक (नाम), अमुक (रूप) हूँ, यह स्वयं में एक जटिल्य (Complex) है। जो-जो **'मैं'** लगा रहे हैं, उन सबकी **'मैं'**, मानव-देह और उसका जो, जब, जहाँ, जैसा होना समान (Common) है और **'मैं'** के साथ जो-जो लग रहे हैं, वे सब अपने-अपने नाम के कारण असमान (Uncommon) एवं पृथक्-पृथक् हैं। इस जटिल्य (Complex) में मानव-देह सर्वव्यापी है। समस्त भिन्नताएँ, सबमें उल्लेखनीय अन्तर (Remarkable Differences) और सीमांकन (Demarkations) पृथक्-पृथक् **'नाम'** के कारण हैं।

किसी बाज़ार या मॉल (Shopping Complex) में सभी दुकानें भिन्न-भिन्न होती हैं और जो-जो दुकान जिस-जिस नाम से होती है, उसी से पहचानी जाती है। इसलिए **'नाम'** सम्बोधन व पहचान के लिए आवश्यक है। **'मैं'** का लगना भिन्नताओं की पुष्टि है, क्योंकि **'मैं'** एक देह के उस रूप के साथ तद्‌रूप सी हो जाती है, जो एक नाम का हो चुका है। इसे ही शास्त्र ने नाम-रूप में तद्‌रूपता कहा है। मानव-देह की अवचेतना (Consciousness) को **'मैं'** शब्द प्रमाणित करता है। अदृश्य (मैं) के दृश्यमान (मानव-देह) का अवलम्बन लिए बिना मानव-देह व समस्त चराचर जगत का होना प्रमाणित नहीं होता, परन्तु यह होना अवचेतना में ही होता है। अवचेतना में प्रकट इस **'मैं'** जटिल्य (Complex) में चार अंग है—आत्मतत्व का शब्द रूप में प्रतिनिधि शब्द **'मैं'**, मानव-देह, नाम और उसका जाग्रत व होश में होना। मात्र **'मैं'** हूँ अथवा मानव-देह हूँ,

से जगत व्यवहार नहीं चलता। सब देहों में मुख उस मुख सहित सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधि है। **'नाम'** सबके भिन्न-भिन्न हैं। जो नाम देह के साथ नहीं आया और बाद में मात्र पहचान एवं सम्बोधन के लिए रखा गया, कालान्तर में मुख उस **'नाम'** का हो गया। इसके बाद **'मैं'** लगते ही उस नाम से कुण्ठित एवं गुण्ठित होकर जीव जो-जो पाता है, उससे हर 'अमुक-अमुक' व्यक्ति ईश्वर विमुख हो गया।

'मैं' मानव-देह और उसका होना व्यष्टि का नहीं समष्टि का द्योतक है। जब **'मैं'** किसी **'रूप'** (जो एक नाम से गुण्ठित व कुण्ठित था) का हो गया, तो 'मैं' एक जटिल्य (Complex) बन गया। हर व्यक्ति व्यक्तिगत होते हुए अमुक-अमुक बन गया। इसलिए इस जटिल्य में **'मैं' 'मानव-देह'** और **होना,** तीन अंग सब मानवों में एक जैसे होते हुए भी प्रत्येक, एक दूसरे से विमुख हो गया। समस्त प्राप्तियाँ, करना-पाना-खोना-होना अमुक-अमुक का हो गया और **'मैं'** ईश्वर विमुख होते हुए भटकने लगा।

नाम **से** सब कुछ होने लगा, नाम **का** सब कुछ होने लगा। डिग्रियाँ, पद, लाभ, हानि, रोग, दोष, गुण, अवगुण सब नाम के होकर रह गए। नाम का, नाम होने लगा, नाम बदनाम होने लगा। बैंकों में नाम से **खाते** (Accounts) खुलने लगे जो इसे आजीवन **खाते** हैं। नाम से की-कराई, हुई-हुआई कमाई (कम+आई) कम ही रही। इस कमाने में जीव कमीना हो गया। व्यापार (व्यय+अपार) में अपार व्यय में लगे दिल-दिमाग के कारण जीव सुख-शान्ति, सन्तोष, स्वास्थ्य, स्वजन व सत्संग खो बैठा। कोई भी व्यापार जब प्रभु के नाम से होगा, तो वह **'अव्यापार'** होगा। अव्यापार द्वारा प्राप्त धन, कमाई नहीं, प्रभु का प्रसाद लक्ष्मी रूप में होता है। वह सुख, शान्ति, सन्तोष, स्वास्थ्य, स्वजन व सत्संग से परिपूरित होता है। देवी-देवताओं के सहस्त्र नामों में **'अव्यय'** नाम है। **'व्याकरण'** में व्यय शब्द अन्तर्हित है, लेकिन व्यय भाव नहीं **'अव्ययी भाव'** समास आता है। **'अव्ययी'** भाव सम **'भसम'** है।

देह व मानव जीवन का अर्थ **'भसम'** है। रूप और नाम वाले की भस्मी

रूप रहित है, इसलिए नाम रहित है। रूप व नाम वाले की **'मैं'** भी स्वयं में नाम रहित एवं रूप रहित है। **'मैं'** की फोटो नहीं खिचवाई जा सकती। जिस देह का अवलम्बन लेने से **'मैं'** प्रकट हुई उसमें **'नाम'** के कारण हर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न हो गया। एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न समय, स्थान व स्थितियों में भिन्न-भिन्न होकर मक्खी-मच्छरों की तरह भिनभिनाने लगा। नाम के कारण यह जटिल्य (Complex) हुआ और **'मैं'** शब्द द्वारा पुष्टि हुई। **'भस्मी'** में यह जटिल्य (Complex) अदृश्य हो जाता है। भस्मी के प्रकाट्य के लिए वही देह पंच महाभूतों में पूर्णतः विलय होनी चाहिए। **'भस्मी'** और **'मैं'** दोनों अनाम व अरूप हैं। **'मैं'** मानव देह के जाग्रत व नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित होने का **'प्रमाण'** है तथा **'भस्मी'** का प्रकाट्य उस देह के पंच-महाभूतों में विलय होते हुए अदृश्य होने का **'परिणाम'** है।

तेरी **'मैं'** के मानव-देह के साथ नाम-रूप में तद्रूप सा होने में तू जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा है। भस्मावस्था स्वयं में अमुख (रूप रहित) है, इसलिए **अनाम** (नाम रहित) है। उस **भस्मी के साथ आत्मसात् सा होने में भी भटकन समाप्त होने लगती है।** तू विशुद्ध जीवात्मा है, स्वयं में परमात्मा का अंश अदृश्य दृष्टा है। तू किसी साकार देह के साथ तद्रूप कैसे हो सकता है ? तुझे भ्रम हो गया, कि 'मैं देह हूँ'। देह नाम से कुण्ठित थी, अतः तू नाम-रूप में **तद्रूप सा** हो गया। उसी देह की **'भस्मी'** स्वयं में अनाम व अरूप है। तू उस भसम से मानस रूप में आत्मसात् होने की प्रार्थना कर। तू जानता है और मानता है, कि अन्ततः तू भस्मी ही बनेगा। भस्मी से आत्मसात् **सा** होने में भी तेरी आत्म-स्मृति जाग्रत हो जाएगी। तेरी देह का मोह व सन्देह नष्ट हो जएगा और तू अपने स्वरूप में स्थित होने लगेगा। तेरी चेतना जाग्रत हो जाएगी और तुझे आभास होने लगेगा, कि सम्पूर्ण कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड मात्र तेरे लिए और तेरे लिए मात्र प्रकट होते हैं। इसके बाद तेरी यथार्थ देह आत्मतत्त्व (**'मैं'**) का प्रतिनिधित्व (Representation) करेगी और तेरी देह के साथ सम्पूर्ण सृष्टि तेरे लिए तेरे

इष्ट का प्रदर्शन (Presentation) होगी। यही आत्मा और परमात्मा का संगम है।

आत्मा के आत्मत्व की पुनर्लब्धि के लिए जीव सद्गुरु कृपा से उसके दिव्य निर्देशन में हर-हर भजता हुआ ध्यान में अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होने का मानस-प्रकरण करता है। देह के साथ तद्रूपता सी में यह जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा था। अब अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् सा होते हुए भी अपना खोया स्वरूप, देह का यथार्थ प्राप्त करते हुए, स्वयं के ईश्वर के साथ जुड़े होने की अनुभूति करता है। **'मैं'** शब्द के प्रकट होने के लिए **'नाम'** से तद्नाम हुई जो, जब, जहाँ, जैसी मानव देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। जब **'मैं'** ने उसी देह की **'भस्मी'** से स्वयं को पहचाना, तो भस्मी के साथ आत्मसात् होते-होते देह आत्मामयी, भस्मीमयी अर्थात् विरक्तिमयी होते हुए यथार्थ (यथा+अर्थ) हो गई। **'मैं** देह हूँ' यह सन्देह जाता रहा, देह का मोह नष्ट हो गया। आत्मतत्व की स्मृति जाग्रत हो गई और **'मैं'** अपने स्वरूप में स्थित हो गया। मानव देह का लक्ष्य यही है।

हे मानव ! तू अपने इस अविशेष (भसम) को जानता भी है और मानता भी है। तेरी कोई भी स्थिति, परिस्थिति **'भसम'** के बनने में बाधा नहीं है। यह तेरा निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है,** जो किसी भी क्षण सम्मुख आ सकता है। तू उस निश्चित को सुनिश्चित करते हुए दर्शित का दर्शन कर और इस परिलक्षित को ही जीवन का लक्ष्य बना ले। यह तेरा निजी कृत्य है, जो तूने कभी नहीं किया। यह सब 'मानस' प्रकरण है, जिसमें अति एकाग्रता की आवश्यकता है। ध्यान ही ध्यान में अपने सामने ध्यानाग्नि में अपनी देह का प्रज्ज्वलन करते हुए पंच-महाभूतों में विलय कर। तेरा पंच महाभूतों से सम्पर्क हो जाएगा। देह के पंच-महाभूतों में विलय होने पर तेरा जो अविशेष (भसम) प्रकट होगा, वह न अमुक (नाम) होगा, न अमुक (अन्य विशेष) होगा। तेरा अमुक (नाम) अमुक (अन्य विशेष) तेरी अविशेष खाक या भसम भाव से ही धुलेगा। स्वयं में अमुख और अनाम तेरे नाम के अमुक

(विशेष देह तथा देह विशेष) होने पर जो सब कुछ **'खाक'** हुआ, वह इस अनाम व अमुख पदार्थ (स्वयं में अविशेष) भसम से निर्विशेष हो जाएगा। जगत में कोई धर्मावलम्बी मानव जो, जब, जहाँ, जैसा भी है इस **'सद्'** को जानता है और तहे-दिल से मानता भी है। इस प्रकरण के नित्याध्यासन से कभी न कभी विरक्ति भाव जाग्रत हो जाता है। यह विरक्ति ही **'वीरता'** है। विरक्त ही **'वीर'** है। वीर पुरुष ही वसुन्धरा का भोग करते हुए अन्तिम **'मोक्ष'** पद को प्राप्त होते हैं।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(1 नवम्बर से 8 नवम्बर 2011)

माया (होना)

(भाग - 6)

ईश्वर सच्चिदानंद है। सद्, चेतन व आनन्द तीन अंगों में चेतन व आनन्द अदृश्य हैं, अर्थात् ईश्वरीय **'चिदानन्द स्वरूप'** अदृश्य है और **'सद्' 'रूप'** दृश्यमान है। जो दृश्यमान है, वह माया है। अनन्त आनन्द व अनन्त चेतन के अनन्त समन्वय से अनन्त सद् (माया) का प्रकाट्य हुआ है; अतः माया ईश्वर से अभिन्न है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि दृश्यमान महाब्रह्माण्ड ईश्वर का सर्व रूप (सद्) में प्रकाट्य है। ईश्वर अनंत कलाओं का स्वामी है। उसकी कलाएँ स्वयं में अदृश्य हैं और उन बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन उसकी दृश्यमान माया है। यह माया स्वयं ईश्वर की भाँति अलौकिक एवं आलोकित है। माया स्वयं में **'सद्'** है। नित नूतनता एवं पल-पल परिवर्तनशीलता इसका **'सद्'** है। दृश्यमान माया का हर पहलू अर्थात् निर्माण, पालन एवं संहार की प्रत्येक विधा में आनन्द व चेतना का प्रतिभास दृष्टव्य है।

स्वयं में **'सद्'** माया की दो विधाएँ हैं—**'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'।** अतः माया के **'हैत्व'** में **'होना'** दो विधाओं में है। माया में **'आनन्द'** का प्रतिभास **'है कुछ नहीं'** है और **'चेतन'** का प्रतिभास **'सब कुछ है'** है। दोनों स्वयं में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। माया के **'सब कुछ'** के रसास्वादन के लिए इसके **'है कुछ नहीं'** को आत्मसात् करना आवश्यक है। माया में **'सब कुछ'** नाम-रूप युक्त है और **'कुछ नहीं'** नाम-रूप मुक्त है तथा इस सबका कारण अदृश्य है। ब्रह्मात्मा स्वयं में परमानन्द कैवल्य पद है। उनकी आद्याशक्ति माँ भवानी की इच्छा (**'एकोऽहम् बहुस्याम्'**) के प्रादुर्भाव होने

पर उन्हें अपने एक होने का आभास होता है और उनकी परमात्मा (स्रष्टा) व जीवात्मा (दृष्टा) दो विधाएँ प्रकट होती हैं। **'चेतना और आनन्द'** की दृष्टि से परमात्मा और जीवात्मा में कोई भेद नहीं है, अतः दोनों में स्रष्टा व दृष्टा रूप अभेद-भेद सा है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का चेतनानंदमय **'सद्'** प्रकाट्य प्रभु का भृकुटि विलास मात्र है; जिसका दृष्टा 'जीवात्मा' है। स्रष्टा और दृष्टा दोनों चेतना और आनन्द से युक्त हैं, लेकिन दृष्टा स्वयं में स्रष्टा द्वारा सद् प्रकाट्य की हर विधा का मात्र दृष्टा है और स्रष्टा स्वयं में दृष्टा का दृष्टा भी है।

ईश्वर स्रष्टा है और स्वयं में **'है ही है'। जीवात्मा दृष्टा** है और स्वयं में वह भी परमात्मा की भाँति **'है ही है'।** सम्पूर्ण ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट, परम विलक्षण, अति चमत्कारिक व रहस्यमयी सुकृति **मानव-देह 'है'**। यह मानव देह युगों-युगान्तरों की समस्त सृष्टि का संघनित स्वरूप एवं प्रतिनिधि है। समस्त साकार व निराकार दृश्यमान सृष्टि का प्रतिनिधित्व करती एक साकार **मानव-देह** ईश्वर की समस्त कलाओं के प्रदर्शन, स्वयं में अदृश्य उन कलाओं के दर्शन एवं स्वयं परमात्मा व जीवात्मा की दिव्य अनुभूति का माध्यम है। अतीत, भविष्य और वर्तमान की सम्पूर्ण महासृष्टि के होने को और न होने को 'आत्मतत्त्व' का प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द प्रमाणित करता है। सृष्टि हो अथवा न हो, परमात्मा **'है ही'** और आत्मतत्त्व जीवात्मा भी **'है ही'** तथा दोनों स्वयं में **अदृश्य हैं।**

आत्मतत्त्व **'मैं'** (दृष्टा जीवात्मा) सृष्टि को निहारने के लिए मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेता है। **'मैं'** (दृष्टा) का अथवा मेरा **'होना'** ही देह सहित जगत का होना है और देह सहित जगत का **'न होना'** भी मेरे होने से है। मेरे एक के होने से ही मेरी देह सहित जगत भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थान, स्थितियों, परिस्थितियों एवं समस्त अवस्थाओं की समस्त विधाओं सहित होता है। **'मैं हूँ'** मेरे इस **'हैत्व'** का **'हेतु' 'तू'** (परमात्मा) है। मेरे **'होने'** का कारण ईश्वर है और क्योंकि वह मेरे **'हित'** का कारण है, इसलिए **'हेतु'** है। हितकारी, हितपरिपूरित एवं मात्र हितयुक्त कारण को हेतु कहते हैं।

कभी-कभी कोई विधा किसी की दुर्गति एवं अधोगति का कारण भी होती है, लेकिन परमात्मा मात्र मेरे होने के **'हित'** का हेतु एवं कारण है। मेरा होना प्रभु के होने से है और मेरे इस **'हैत्व'** के पीछे प्रभु के हेतु में मात्र मेरा हित ही समाहित है।

'हैत्व' एवं **'होना'** में सूक्ष्म लेकिन पारदर्शी अन्तर है। मेरा होना तब है, जब मुझे होने का ज्ञान है और जब मुझे अपने होने का ज्ञान भी नहीं है, वह मेरा **'हैत्व'** है। **'हैत्व'** हर **'होने'** में है, **'होना'** **'हैत्व'** में हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। **'मैं'** जीवात्मा भी स्वयं में परमात्मा की भाँति सच्चिदानंद एवं अदृश्य हूँ। परमात्मा **'है'** तो **'मैं'** हूँ। वह **'है ही है'** इसलिए **'मैं'** भी **'हूँ ही हूँ'।** प्रभु का **'हैत्व'** एवं मेरा **'हैत्व', अटल** है, लेकिन मेरा होना परिवर्तनशील है। मैं जड़ता, अवचेतना, चेतना और अवचेतना में चेतना के जिस भी स्तर में होता हूँ; मेरे हर होने में तेरा, मेरे प्रति हित ही होता है। निद्रा में मुझे देह और जगत का आभास नहीं होता, इसलिए मेरे लिए मेरी देह व जगत नहीं होता। साथ ही मुझे यह भी एवं आभास भी नहीं होता, कि मेरे लिए मेरी देह और जगत नहीं है। उस समय भी मैं होता हूँ। मेरी यही स्थिति मेरी देह की गर्भावस्था, शैशवावस्था, मूर्च्छावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था में भी होती है। यह भी मेरा होना है, जिसमें मुझे अपने होने का पता नहीं होता। यह भी मेरे होने का एक प्रकार है, कि मेरे लिए मेरी देह व जगत नहीं होता, साथ ही देह व जगत के होने अथवा नहीं होने का मुझे ज्ञान नहीं होता तथा अपना स्वयं का भी आभास नहीं होता।

मानव-देह में देह का प्रतिनिधि उसका **'रूप'** है। **'रूप'** पंच-महाभूतों का प्रतिनिधि है, क्योंकि नाक, जिह्वा, त्वचा, नेत्र एवं कान में क्रमशः पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश का प्रतिनिधित्व दृष्टव्य है। इसलिए **'रूप'** मानव-देह के **'सब कुछ'** का प्रतिनिधि है और अवचेतना में 'नाम' से कुण्ठित एवं गुण्ठित रूप के साथ 'मैं' तद्रूप सी हुई नाम युक्त हो जाती है। मानव-देह का **'अरूप'** व **'अनाम'** पदार्थ **'भसम'** जो देह के पूर्णतः पंच-महाभूतों में विलय होने के बाद प्रकट होता है, देह का निश्चित,

परिलक्षित, दर्शित भविष्य है। पंच-महाभूतों से परे यह तत्त्वातीत तत्त्व स्वयं में **'कुछ नहीं'** का प्रतिनिधि है और **'नाम-रूप'** से मुक्त है।

रूप स्वयं में **'अनाम'** है और **'नाम'** स्वयं में **'अमुख'** है। जब **'मुख'** (रूप या देह) अमुख (नाम) को स्वीकार कर लेता है, तो इस स्वीकृति से **'मुख'** **'अमुक'** बन जाता है। मेरा होना इस **'स्वीकृति'** का **'स्वीकार्य'** है। नाम से गुण्ठित व कुण्ठित **'रूप'** (अवचेतन देह) के अमुक होने को **'मैं'** प्रमाणित करता हूँ। इसके बाद देह की जितनी भी प्रतिभाएँ, प्राप्तियाँ, निकृष्ट, विशिष्ट, अतिनिकृष्ट एवं अति विशिष्ट विधाएँ हैं, वे सब असंख्य अमुक, एक अमुक (नाम) के साथ **'अमुक'** रूप में जुड़ जाती हैं और **'मैं'** अमुक-अमुक हूँ, के भ्रमजाल में फंसने का कारण बन जाता हूँ। इस प्रकार जीव-कोटि में पतित होकर **मैं** प्राप्य की प्राप्तियों के लिए संघर्षरत रहता हुआ लब्ध को उपलब्ध करता रहता हूँ। मैंने विचार नहीं किया, कि मुझे मानव-देह स्वतः प्राप्त थी, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश स्वतः लब्ध थे। **मैं** जीव-कोटि में सन्देह (मैं देह हूँ) रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में जन्मों-जन्मातरों के मिथ्या एवं स्वकल्पित काल-चक्र में भटकता हूँ।

मेरा होना सात विधाओं अथवा सप्त आयामों में है और मेरी **'मैं'** की स्थिति पर निर्भर है। समस्त दृश्यमान सृष्टि का होना **'अवचेतना'** में है। अवचेतना, न चेतना है और न जड़ता है। शास्त्र में इसे अवचेतना नहीं **'जड़-चेतन की ग्रन्थि'** कहा गया है। ईश्वर से विमुखता जड़ता है और जब साथ में चेतन तत्त्व का सान्निध्य रहता है, तो चेतन, अवचेतन बन जाता है। इसे ही जड़-चेतन की ग्रन्थि कहा है। जड़-चेतन की ग्रन्थि में जड़ता व चेतना परस्पर इस प्रकार गुथ-मुथ जाती हैं, कि इन्हें पृथक् करना सम्भव नहीं होता। जड़ता और चेतना के परस्पर **'समाहन'** के लिए शास्त्रीय शब्द **'ग्रन्थि'** है। जड़-चेतन की ग्रन्थि न विशुद्ध जड़ता है और न विशुद्ध चेतना है। पूर्ण चेतना में ईश्वरत्व की सम्मुखता ही होती है। पूर्ण जड़ता में ईश्वरत्व से विमुखता होती है। उसमें उस **'हेतु'** का जानना व मानना सम्भव ही नहीं होता। जड़ता तथा चेतना सहित जड़-चेतन की ग्रन्थि में मेरे **'होने'** की सप्त

विधाओं में मेरा प्रत्येक (प्रति+एक) होना, **'एक'** परमात्मा के होने के कारण है। सप्त विधाओं में मेरा प्रथम होना **'जड़ता'** में है। इसमें जो किंचित आंशिक चेतना होती है, उसका भी ज्ञान नहीं होता और सप्तम् होना स्वयं में **चेतना** अथवा **'हैत्व'** है। चेतना स्वयं में शुद्धता-अशुद्धता से परे पूर्ण विशुद्धता है। मेरे इस **'हैत्व'** का होना अनिवर्चनीय एवं मात्र अनुभूतिगम्य है। दोनों के मध्य के पाँच **'होने'** में **'मैं'** जड़-चेतन की ग्रन्थि में होता हूँ। चेतना में जड़ता की मिलावट का स्तर मेरे पाँचों 'होनों' में पृथक्-पृथक् होता है। हम इस होने में ही देह व जगत को देखते हैं।

मैं अमुक-अमुक हूँ, इस सन्देह रूपी अज्ञान में जब मुझे निःसन्देह कोई सन्देह नहीं होता, तब मेरे इस होने में मेरी देह के साथ जो जगत होता है, उसे मैं स्वयं से पृथक् ही मानता हूँ। देह मेरी है (देहाधिपत्य) और मैं देह हूँ (देहाध्यास) से मैं जन्मों-जन्मातरों से पीड़ित चला आ रहा हूँ। मेरी समस्त पीड़ाओं का मूल यह पीड़ा है, कि मैं सन्देह में हूँ और इस अज्ञान का मुझे ज्ञान ही नहीं है तथा मैं इसका ज्ञान चाहता भी नहीं। यद्यपि मेरे इस होने का कारण भी परमात्मा है, परन्तु इस होने में **'मैं'**, उस (परमात्मा) के और अपने (आत्मतत्त्व के) होते हुए भी उससे विमुख हो जाता हूँ। परमात्मा से विमुख होने के इस प्रकरण में **'मैं',** वास्तव में स्वयं अपने से विमुख हो जाता हूँ, क्योंकि परमात्मा मुझसे कभी विमुख या परे नहीं होता। अपने इस होने में स्वयं अपने से विमुख हो कर **'मैं'** परमात्मा से भी विमुख **सा** हो जाता हूँ और मानव-देह के यथार्थ (यथा+अर्थ) से परे होकर निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की श्रंखला में भटकता हूँ। मैं देह व जगत की विभिन्न विधाओं की प्राप्ति के लिए पागलों की भाँति दौड़ता रहता हूँ। सुख, शान्ति, सन्तोष, स्वास्थ्य, स्वजन, व सत्संग से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता।

'मैं देह हूँ' यह भाव स्वयं में सन्देह है। इस अज्ञान की अनभिज्ञता में कालवश, कर्मवश, प्रारब्धवश तू घोर अन्धकार में युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। धृष्टतावश तू अपने अज्ञान को ज्ञान मान रहा है और वास्तविकता को जानना नहीं चाहता। इसलिए तू दृष्टा से **धृष्टा** और **भ्रष्टा** हो गया तथा

भ्रष्ट हो गया। तुझे जानते-बूझते हुए फँसने का स्वाद पड़ा हुआ है। तूने फँसने को अपना कर्म, धर्म और पूजा मान लिया है। घोर सन्देह में तेरे इस होने में ईश्वर का समस्त **'प्रदर्शन'** तेरे लिए **'प्रश्न'** बना रहता है। मानव-देह के **'अर्थ'** (निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'**) से विमुखता व उपेक्षा में तू प्रश्नों के स्वकल्पित उत्तरों में उत्तरोत्तर उलझा रहता है। इस स्थिति में देह व जगत हर प्रकार से **'दंशन'** बनते हुए तेरा प्रतिरोधी ही बना रहता है। हर क्षण, हर प्राप्ति, खोना, बनना, बनाना और होना सर्पदंश की भाँति तुझे डसता रहता है। देह का यथार्थ आच्छादित होते ही **'मैं'** (आत्मतत्त्व) और **'तू'** (परमात्मा) भी तेरे लिए आच्छादित हो जाता है। जीव सृष्टि के तेरे इस होने में तेरी देह, जगत सहित प्रतिरोधी हो जाती है।

जड़-चेतन की ग्रन्थि के पाँच होनों में यह मेरा प्रथम होना है। इस अनर्थकारी होने में अति सद्‌गुरु कृपा से जब मुझे ज्ञान होने लगता है, कि मेरे होने का कारण मात्र परमात्मा ही है और मेरे हर होने में उसका हेतु मात्र मेरा **'हित'** है; तो मेरी उर्ध्वगति की आशा हो जाती है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का निर्माण, पालन और संहार प्रभु का **'यत्न'** है। यहाँ जो कुछ होना है वही होता है और वह प्रभु इच्छा से ही होता है। प्रभु ने हर होना अपने अधिकार में रखा है। सदगुरु की कृपा से मुझे अपने अज्ञान **'मैं देह हूँ'** (सन्देह) का ज्ञान होता है। **अज्ञान का ज्ञान तथा अपनी अनंत अधोगति का आभास ही ज्ञान का प्रथम सोपान है।** यह मेरा दूसरे प्रकार का होना है। यद्यपि मेरा सन्देह दूर नहीं होता, लेकिन मुझे आभास होने लगता है, कि मैं देह नहीं हूँ, मैं देह रूप में हूँ। यद्यपि मैं अज्ञान से बाहर नहीं आ पाता और वास्तविकता (मैं देह नहीं हूँ) को छू नहीं पाता, लेकिन पाना चाहता हूँ। इस स्थिति में मैं परमात्मा को अपना हेतु मानते हुए यद्यपि काल, कर्म एवं प्रारब्ध से वशीकृत रहता हूँ, लेकिन मेरी चेतना का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ विचार व विवेक शुरू हो जाता है। जिज्ञासाएँ उठने लगती हैं, सत्संग में रुचि होने लगती है। यह मेरे होने का द्वितीय प्रकार है।

मैं देह नहीं हूँ तो मैं कौन हूँ? यदि मैं देह हूँ, तो मैं क्यों हूँ। छोटे से

छोटा कर्म भी मेरे अपने हाथ में नहीं है, तो इतने बड़े महाब्रह्माण्ड में **'मैं'** क्यों हूँ? मेरे बिना भी सब कुछ हो रहा था, मैं अभी करना छोड़ दूँ, तो भी होगा। मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है, तो मेरा कर्तव्य क्या है और मेरे होने की सार्थकता क्या है? यहाँ साधक किसी काम को करना छोड़ता नहीं है, लेकिन उसकी दृष्टि में किसी भी कृत्य, प्राप्ति, होना और बनने-बनाने का मूल्य कम हो जाता है। मानव-देह का मूल्य इसकी दृष्टि में कई गुना बढ़ जाता है और तभी देह इसके साथ सन्धि करती है। **सन्देह का ज्ञान होने और इससे बाहर न आ पाने की विवशता में जब मेरी जिज्ञासा तीव्रतम हो जाती है, तो मैं किसी भी प्रकार और सब प्रकार से मात्र अपने स्वरूप और देह के यथार्थ को पाना चाहता हूँ, यह मेरे होने का तृतीय प्रकार है।**

ज्ञानार्जन की उत्कण्ठा और दीवानगी पर देह इससे सन्धि करती है। **'उत्'** कण्ठा में जिज्ञासा कण्ठ तक आ जाती है और जिज्ञासु हर प्रकार से अपना अज्ञान दूर करने के लिए व्याकुल व आतुर हो जाता है। वहाँ धीरे-धीरे **'सन्देह'**, सन्धि में रूपान्तरित हो जाता है। **'सधि'** में ऊंकार का बिन्दु लगने से संधि शब्द बना। यहाँ **'धी'** अर्थात् बुद्धि में विवेक, मेधा, प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होते ही बौद्धिक चेतना का विकास होने लगता है। **'सन्धि'** में आत्म-चिन्तन, आत्म-विश्लेषण एवं आत्म-मनन के विभिन्न आयाम प्रारम्भ हो जाते हैं। चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं। **'सन्धि'** में देह, जीव को अपने समस्त **'रूप'** एवं **'स्वरूप'** दिखाती है। देह अपनी विभिन्न अवस्थाएँ (गर्भावस्था, शैशवास्था, निद्रावस्था, मूर्च्छावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था) जो इसके स्वयं के लिए हमेशा अदृश्य रहीं, उनका **'दर्शन'** कराती है। देह व जगत के लिए यदि मेरी आवश्यकता नहीं है, तो इसका अर्थ है, कि मेरी किसी विशेष कृत्य के लिए आवश्यकता है, जिसका ज्ञान मुझे नहीं है।

जब तू स्वयं में पूर्णतः आश्वस्त हो जाएगा, कि कोई भी पद्, प्रतिष्ठा, धन, सम्पदा और प्राप्ति तेरी मानव-देह के समक्ष तुच्छ है, तब तुझ में हूक पैदा होगी, कि मैं कौन हूँ? तब देह तेरे लिए अपने समस्त गुप्त रहस्य अनावृत करने को आतुर हो जाएगी। जो देह पहले **'दंशन'** बनी हुई थी, वही

देह तुझे प्रभु की कलाओं का **'दर्शन'** कराती है। प्रभु का प्रदर्शन जो पहले **'प्रश्न'** बन गया था, वह पुनः प्रदर्शन बनते हुए फंसास्वादन के स्थान पर तेरे लिए रसास्वादन का हेतु बनने लगता है। इस होने में कर्ता भाव लुप्त हो जाता है और मुझे आभास होने लगता है, कि सब कुछ प्रभु इच्छा से स्वतः हो रहा है। देह व जगत हर प्रकार से मेरा सहयोगी व सहायक होने लगता है। **'मैं'** देह नहीं हूँ, मैं आत्मतत्त्व हूँ। मैं कोई देह नहीं है, यदि 'मैं' देह है, तो जगत सहित देह है। क्योंकि देह व जगत मेरे होने में है। इस चिन्तन-मनन में आत्मतत्त्व की जागृति होनी शुरू हो जाती है। आत्मतत्त्व (दृष्टा) जिस देह का **'मैं'** शब्द में प्रकट होने के लिए अवलम्बन लेता है, उसे यथार्थ का उपहार देता है। क्योंकि उस देह द्वारा ही प्रभु द्वारा रची माया का सद् दृष्टा बनता है। यथार्थ होकर वह देह आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि होती है और तभी देह सहित जगत प्रभु की माया का सद् प्रदर्शन होता है। उसमें **'मैं'** अनुभव करता हूँ, कि देह व जगत का रसास्वादन सुख व प्राप्तियों में नहीं है। अतः वस्तुओं व पदार्थों के प्रति विरक्ति होने लगती है।

सन्धि में **'देह'** निर्देशक बनते हुए अपने नाम-रूप रहित स्वरूप (भसम) तक ले जाती है। भसम रूप निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य के प्रकाट्य के लिए देह का पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होना आवश्यक है। यह भविष्य हमेशा भविष्य ही रहता है और मेरे लिए अदृश्य रहता है। लेकिन देह मुझे अपनी उस अवस्था में ले जाकर उसका दर्शन करा देती है, जब वह स्वयं पंच-महाभूतों में विलय हो जाती है। देह रूप में अपने निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** का दिग्दर्शन व आभास होते ही जीव जीवन-काल में देह के रहते काल से परे होने जाता है। काल से परे होते ही कर्म एवं प्रारब्ध बन्धन से भी मुक्त होने लगता है। अपनी भस्मी से आत्मसात् होने की तीव्र आकांक्षा और जुनून में साधक देह की किसी अवस्था का अवलम्बन मात्र इसी हेतु लेता है और देह, जगत सहित अविलम्ब इस पर अवलम्बित हो जाती है। इस **'द्विज'** स्थिति में साधक भस्मी से आत्मसात् होते-होते **'विरक्त'** हो जाता है। नाम से कुण्ठित व

गुण्ठित गर्भित (Conceptual) देह इस प्रक्रिया में पंच-महाभूतों में ही विलय हो जाती है और स्वयं में अरूप व अनाम हो जाती है।

यहाँ मानव-देह का विदेह स्वरूप प्रकट होता है, जिसका प्रतिनिधित्व **'भस्मी'** करती है। देह का यह देहातीत एवं विदेह स्वरूप तभी है, जब देह है, क्योंकि देह होगी, तब वह होगा। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए एक जाग्रत मानव-देह चाहिए जो पंच-महाभूतों से निर्मित एवं पालित है और **'भस्मी'** के पूर्णतः प्रकाट्य के लिए ऐसी मानव देह चाहिए, जो पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय **हो गई है**। इस अवस्था में देह पूर्णतः यथार्थ हो जाती है और 'मैं भस्मी हूँ' इस अवस्था का मैं दर्शन करता हूँ। देह की भस्मावस्था से पूर्णतः आत्मसातता में **'मैं'** और **'भस्मी'** मिल जाते हैं। **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'चेतना'** (सब कुछ है) का प्रतिनिधित्व करता है और **'भस्मी'** विरक्ति शक्ति की प्रतिनिधि **'आनन्द'** (है कुछ नहीं) का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ **'मैं'** (चेतना) और **'भस्मी'** (आनन्द) दोनों मिल जाते हैं। **'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'** दोनों **'सद्'** की विधाएँ हैं। मैं और भस्मी का संगम होते ही यथार्थ देह प्रकट होती है और **'मैं'** (आत्मतत्त्व) को अपनी स्मृति आने लगती है। **'भस्मी'** स्वयं में शिवतत्व है, यहाँ बुद्धि की दिव्यतम् विधा ऋतम्भरा जाग्रत हो जाती है। यह मेरा **चतुर्थ** प्रकार का **'होना'** है। यहाँ पूर्ण विरक्ति भाव में ईश्वर की विशुद्ध भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अर्थ और धर्म के सोपानों के बाद साधक पुरुषार्थ के तृतीय सोपान **'काम'** पर पहुँचता है। यह **'त्रिज'** स्थिति है। जब इसे भक्ति मिल जाती है, तो **'चतुर्ज'** स्थिति में ऋतम्भरा द्वारा ईश्वर के रहस्यों का आभास होने लगता है। भक्ति की इस स्थिति में ईश्वर के रहस्य स्वयं ईश्वर ही जनवाते हैं। क्योंकि भक्त पूर्णतः ईश्वर का शरणागत हो जाता है। इससे पहले इस स्थिति के लिए पृष्ठभूमि तैयार होती है।

पंचम होने में महामाया द्वारा इसकी परीक्षाएँ शुरू हो जाती हैं। ऋद्धियों और सिद्धियों के महा आकर्षक जाल से निकलते हुए महामाया

की कृपा से ही यह ईश्वर का अनुराग **'मोक्ष'** प्राप्त करता है। यह **'पंचज' स्थिति सर्वोपरि है** और इस **'होने'** तक इसका होना है। इसके बाद पूर्ण चेतना स्वयं में **'होना'** नहीं है, बल्कि अनिवर्चनीय कैवल्य पद है, जो **'हैत्व'** का सूक्ष्म आनन्दमय आभास मात्र है :–

''तुम वो बात क्यों पूछते हो जो बताने के काबिल नहीं है।''

तेरी देह तेरे होने में है, देह में होना नहीं है। तेरे होने में तेरी देह, जगत सहित है। तेरे होने में जो जगत सहित देह है, वह साथ-साथ स्वतः एवं तेरे अनुसार है। तेरा होना अदृश्य है और जो हो रहा है, हुआ था व होगा वह दृश्यमान है। तेरा **'होना'** जैसा भी है, वह तेरे **'होता'** व **'हेतु'** परमात्मा की वजह से है। प्रभु की कृपा से ही तेरा **'होना'** बदलने से तेरे लिए तेरी देह सहित तेरा जगत बदलेगा। तेरा हर होना उस एक के होने की **'प्रति'** है। यह चाहे तेरी जान्यता व मान्यता में हो, चाहे न हो, क्योंकि यह आध्यात्मिक विज्ञान है, जो युगों-युगान्तरों से **'सद्'** है। जड़-चेतन की ग्रन्थि में मध्य के पाँच होनों में, मेरा होना प्रारब्ध, काल और कर्म तीन **'वशों'** में होता है। इसीलिए मैं प्रारब्धवश, कर्मवश एवं कालवश होता हूँ। जिन्हें हम सब अपना **'कर्म'** जानकर एवं मानकर कर रहे हैं, वे कर्म स्वयं में हुए-हुआए होते हैं, क्योंकि प्रारब्ध के तहत पहले से अंकित (Recorded) होते है। लेकिन हम अज्ञानवश हुए-हुआए कृत्यों को कर्ताभाव से करते हैं और प्राप्य की प्राप्तियों में लगे हुए लब्ध को ही उपलब्ध करते रहते हैं। जो स्वतः हो रहा है, वह कर्म नहीं है। जो होना है, वह होता है और वह **'होना'** इस करने-करवाने का कर्मफल भी नहीं है। **'कर्मवश'** कर्म वस्तुतः **'अकर्म'** है। उसकी इच्छा के सम्मुख नत मस्तक होते हुए अपना मन समर्पित कर देना ही **'कर्म'** है। करना-कराना बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। पशु-पक्षी आदि प्राणी भी कुछ न कुछ करते हैं। हम मानव भी कुछ न कुछ करते हैं, अधिक बुद्धिजीवी बहुत कुछ करते हैं और योजनाबद्ध हो योजनाओं से ही बँधे रहते हैं। लेकिन जो होता है और होना है, वह मात्र प्रभु इच्छा से ही होना होता है।

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के निर्माण, पालन एवं संहार में उस एक

कर्ता (ईश्वर) की ही हुकूमत एवं पूर्ण सत्ता है। पूर्ण जड़ता से पूर्ण चेतना तक सात विधाओं में वही **'एक'** है। पूर्ण जड़ता में मुझे मेरे हैत्व का **'भी'** ज्ञान नहीं होता और पूर्ण चेतना में मुझे मेरे **'हैत्व'** का **'ही'** ज्ञान होता है। मेरे हर होने का कारण मात्र परमात्मा है और क्योंकि वह हितकारी, हितपूरित व हितयुक्त कारण है, इसलिए वह मेरा **'हेतु'** है। हित करने वाले को **'होता'** कहते हैं। सातों पदों में मेरे होने में जो भी होता है, उसका **'हेतु'** परमात्मा ही होता है। साथ ही **वह मेरे होने के अनुसार होता है।** यदि मैं यह जानकर व मानकर चलूँ, कि मेरे हर होने का **'हेतु'** मेरा **'होता'** मात्र परमात्मा है, तो मैं हर **'होने'** में से होते हुए, उस **'होता'** (परमात्मा) की ओर उन्मुख होते हुए उसके सम्मुख ही रहूँगा।

मेरे होने में प्रमुखता आत्मतत्त्व की है। मेरे होने की स्थितियाँ समय-समय पर विभिन स्थानों में भिन्न भिन्न हैं। मेरा **प्रत्येक** होना तेरे (प्रभु के) **'एक'** होने की वजह से है। मेरा होना पृथक्-पृथक् है, कभी मैं जड़ अवस्था (निद्रा, मूर्च्छा, मृतकावस्था आदि) में होता हूँ, कभी चेतना में होता हूँ, कभी अवचेतना में चेतना के विभिन्न स्तरों में होता हूँ। मेरा हर होना उस (प्रभु) एक के होने से है। प्रभु **'एक'** है, **'मैं'** (जीवात्मा) भी **'एक'** हूँ लेकिन मेरा प्रत्येक होना इस प्रदर्शन में भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक देह हर रोज़ भिन्न-भिन्न होती है। मेरी प्रत्येक **'प्रति'** तेरी (प्रभु) एक की ही है। मैं जो, जब, जहाँ, जैसा भी **'हूँ'** अथवा **'नहीं हूँ'** मेरे **'होने'** अथवा **'नहीं होने'** का हेतु मात्र परमात्मा है। **'मैं'** जिस भी **'स्वरूप'** (सर्वरूप) अथवा **'रूप'** (नाम के साथ कुण्ठित व गुण्ठित देह के साथ तद्‌रूप) में हूँ, स्वरूप से परे हूँ, रूप से परे हूँ, स्वरूप एवं रूप दोनों से परे हूँ, जिसमें भी **'मैं हूँ'** वह तेरे (प्रभु) होने से हूँ। मेरी समस्त भटकन, काल, कर्म व प्रारब्ध वशता, पाप-पुण्य, मल-विक्षेप-आवरण, जन्म-मरण, रोग-दोष, सुख-दुख, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, आधि-व्याधि-उपाधि की अन्तहीन श्रंखला वहाँ से शुरू हुई, जब मैंने अपने **'होने'** में उस (परमात्मा के) होने को नकार दिया अथवा जाने-अनजाने उपेक्षित कर दिया। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

किसी चलचित्र अथवा नाटक में विभिन्न भूमिकाएँ निर्वाह करते पात्र स्वयं में अच्छे-बुरे नहीं होते। सबका **'हेतु'** मात्र निर्देशक व निर्माता है। यदि पात्रता में अच्छाई-बुराई की भूमिका करते पात्र यदि अपने **'हेतु'** (निर्देशक व निर्माता) को भूल जाएँ, तो उनका व्यवहार तद्नुसार ही हो जाएगा। इसी प्रकार प्रत्येक खेल खेलते हुए यह याद रखना आवश्यक है, इसका कारण वह निर्माता व निर्देशक है; मैं स्वयं नहीं हूँ। देह सहित जगत के सुचारु कार्यान्वयन के लिए सृष्टि में सबकी अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं और सब बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि सबका हेतु व कारण मात्र परमात्मा है। तेरी देह व जगत तेरे होने से होता है और तेरा होना प्रभु के होने से होता है। तेरे होने का आकलन और स्तर इस पर निर्भर करता है, कि जिसके होने से तू होता है, तू उसके कितना पास अथवा कितना दूर है। जब तू प्रभु के पास होता है, तो **तू और तेरा जगत 'एक' ही होता है,** वहाँ कोई दूसरा नहीं होता। तेरा अस्तित्व प्रभु से है. अतः तू प्रभु दूर हो ही नहीं सकता। जब तू प्रभु के पास होता है, तो तेरा **'होना'** आनन्दमय, सुरभिमय, ऐश्वर्यमय एवं अमृतमय होता है। जब तू उससे दूर सा होता है, तो तेरा होना होता है लेकिन वह होना दुर्गति व अधोगति से युक्त रोना, धोना, खोना और जीवन ढोना होता है।

नाममय देह के साथ तद्रूपतावश मुझे सन्देह हो गया, कि मैं देह हूँ। यह मेरा अज्ञान है, लेकिन मुझे अपने सन्देह नामक अज्ञान का ज्ञान नहीं है इसलिए अपने पतन, अधोगति व दुर्गति का अनुमान भी नहीं है। उत्थान का प्रथम सोपान अपने पतन का अनुमान है। प्रभु पतित पावन हैं। प्रभु की कृपा की अनुभूति तभी होगी, जब पहले मुझे अपने पतन का अनुमान होगा। अपने पतन का अनुमान तभी हो सकता है जब मुझे अपने अज्ञान का ज्ञान हो। अपने अज्ञान (सन्देह) का ज्ञान होते ही मुझे अनुमान हो जाएगा, कि मैं कितना पतित हो चुका हूँ। यदि मुझे अपने पतन का अनुमान नहीं है, तो पतित पावन प्रभु भी मेरे लिए कुछ नहीं कर सकते।

सन्देह में किए गए पुण्य भी पाप ही हैं। यह होना भी ईश्वर के होने से ही होता है, लेकिन सन्देह में होने के कारण ईश्वर से दूरी हो जाती है। प्रभु

के दूर होने से तेरे होने का कोई **'अर्थ'** नहीं है और तेरा होना निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ ही होता है। अपने इष्ट व सद्गुरु से समीपता के लिए तुझमें जितनी लगन, तड़प, दीवानगी, हृदय विदारकता व वेदना होगी उसमें तेरे होने की चैनल बदल जाएगी। फिर तेरा होना हर्षमय, उल्लासमय और आनन्दमय होगा। यदि तू यह नहीं जानता और तहेदिल से नहीं मानता, कि तू प्रभु के होने से है, तो तेरी दुर्गति व पतन ही होगा। यह पतन भी असीम है। अज्ञान का ज्ञान और पतन का अनुमान भी प्रभु ही कराएँगे। कृपया एकाग्र करिए, मैं इसके समाधान का वर्णन भी करूँगा।

मेरे जीवन रूपी यज्ञ का **'होता'** परमात्मा है, इसलिए वह **'एक'** ही पूर्ण जड़ता से पूर्ण चेतना तक मेरे सातों होने का **'हेतु'** व कारण है। मेरे जिस होने में तू मुझे जैसा भी रख रहा है उसका **'हेतु'** व **'होता'** तू है। हर होनी, अनहोनी मेरे लिए सुहानी एवं मोहनी है क्योंकि हर होनी-अनहोनी का हेतु व होता तू है। जब सदगुरु कृपा से मैं स्वयं में पूर्ण आश्वस्त हो जाता हूँ, कि जो घटनाएँ हो चुकीं, हो रही हैं और होंगी उन सबका का हेतु मात्र परमात्मा और परमात्मा मात्र है, तो हर होनी-अनहोनी मेरे लिए हितपूरित, सुहानी व मोहनी ही होती है। प्रत्येक शुभ आगमन एवं शुभ गमन में मात्र मेरा हित ही होता है। यह पूर्ण विश्वास उसके **'होता'** व **'हेतु'** मानने का मूल मन्त्र है :—

''तू मेरा साहिब रहमाना, मैं तेरा दीदार दीवाना,
तू मुझे खुशी दे या गम दे, यह तेरा अख्तियार है,
हम बेनियाज़ हो गए झोली पसार के।''

मेरा होना विभिन्न, स्थितियों, समय, स्थानों और अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होता है। मैं जड़ता, घोर जड़ता, अवचेतना, अवचेतना के निम्नतम स्तर, चेतनायुक्त अवचेतना, चेतना, चेतना के भिन्न-भिन्न स्तरों, महा चेतना, कैवल्य पद, प्रेम में पूरित भक्ति, अनुराग किसी भी होने में हूँ; मेरे प्रत्येक होने में प्रभु ही हित पूरित कारण अथवा हेतु हैं। मेरे प्रत्येक होने में देह व जगत भिन्न-भिन्न होता है। देह व जगत का होना मेरे होने के प्रकार पर निर्भर है। प्रभु कोटि-कोटि महाब्राह्मण्डों के नायक हैं। सृष्टि-स्थिति,

उत्पत्ति-स्थिति, पालन, संहार प्रभु का भृकुटि विलास एवं क्रीड़ा है। अपने भक्तों के लिए कभी भी कुछ भी कर सकते हैं। प्रभु के संकेतों के अधिग्रहण के लिए '**प्रज्ञा**' चाहिए। कभी-कभी कोई स्थिति और होनी बहुत अनहोनी सी प्रतीत होती है लेकिन वस्तुतः वह सुहानी होती है। हमारी मात्र इतनी सोच अपेक्षित है, कि हम हर करने-कराने और बनने-बनाने वाला भी प्रभु को ही मानें। हमसे भूल यह होती है, कि हम जो होना चाहते हैं, उसे पहले से धार लेते हैं और तदनुसार करते-कराते हैं। यह दोहरी भूल हम सब से हो जाती है। पहले हमने प्रभु की चीज़ पर अपना हक जमा लिया और दूसरे तथाकथित अपने हक के अनुसार प्रभु से विमुखता में करना-करवाना शुरू किया। स्वयं कर्ता बनने और होना निर्धारण करने से असीम अधोगति होने लगी। न मुझे कर्ता बनने का अधिकार है और न होना निर्धारित करने का अधिकार है। वहाँ दैवीय अधिनियमानुसार प्रारब्ध का केस चलता है और 1008 धाराओं के अन्तर्गत मैं जन्म-दर-जन्म धारावाहिक सज़ाएँ भुगतता रहता हूँ। मेरा यह होना भी प्रभु के कारण है। प्रभु ने प्रत्येक होना अपने हाथ में रखा है, कि तू जो चाहे कर अथवा न कर, होगा वही जो मैं चाहूँगा। उस होने में मेरी किसी क्रिया या अक्रिया की आवश्यकता नहीं है।

प्रारब्धवश, कालवश एवं कर्मवश होते हुए तू आर्तनाद और विवशतापूर्ण प्रार्थना कर, कि प्रभु मेरी इस तुच्छ व संकुचित मानसिकता का '**होता**' भी तू है। मैं इससे बाहर नहीं आ पा रहा। विवशतापूर्ण आर्तनाद एवं प्रार्थनाओं से तेरा वह होना भी तेरे हित में हो जाएगा। जिस भी अवस्था में प्रभु ने तुझे रखना होता है, तदनुसार तेरे लिए व्यवस्था पहले बनती है। उस अवस्था में भी यदि तू प्रभु से जुड़ जाए, उसका ध्यान करे, आर्तनाद करे, अपनी विवशता प्रकट करे, तो प्रभु को वह सब तेरे हित में करना ही पड़ेगा। अतः भक्ति व प्रेम की विह्वलता में तू प्रभु को अपने हर होने का हेतु मान ले। इसके बाद तेरा हर कृत्य '**होता**' हुआ होगा। 'हे प्रभु ! मुझे तुमसे परे और नज़दीक भी तुम्हीं करते हो। मैं स्वयं में असमर्थ, असहाय और पतित ही हूँ। तुम मेरे बहुत पास हो, लेकिन कोई शक्ति मुझे तुझसे परे कर रही है। उस

शक्ति का मैं मुकाबला नहीं कर सकता, क्योंकि वह शक्ति भी तेरी ही शक्ति है। मैं तेरी उस शक्ति को प्रणाम करता हूँ। मैं तेरा और तेरी शक्तियों का विरोध नहीं कर सकता। कम से कम मुझे तेरी शक्ति का आभास तो हो रहा है, जो मुझे तुझसे परे कर रही है। मैं तेरी उस शक्ति को बार-बार प्रणाम करता हूँ, जो तेरे पास होते हुए भी मुझे तेरे पास नहीं होने देती। कम से कम आज के ध्यान में मुझे तेरी उस शक्ति का साक्षात् आभास तो हो गया। तू आज ऐसा ही चाहता होगा।'

मेरे होने को सुरभित, सुगन्धित और आनन्दमय मात्र मेरे इष्ट की समीपता कर सकती है, क्योंकि मेरे होने के स्तर का आकलन मात्र इसी आधार पर होता है। मैं जो जब, जहाँ, जैसा भी होता हूँ, तेरे होने से होता हूँ, इसलिए मेरा होना तेरी नज़दीकी तय करेगी, कि मेरा होना किस स्तर का है। मैं जन्मों-जन्मान्तरों से प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश हूँ। मुझे वश में रहने की आदत पड़ गई है। हे प्रभु ! मुझे अपने वश में कर लो। हे शिव ! मैं वशीकृत हूँ और वशीकरण से बाहर मैं रह ही नहीं सकता। इसलिए अब तुम मुझे अपने वश में कर लो। तुझमें ध्यान वही लगा सकता है, जिसे तू चाहेगा। यदि तू मुझे अपने से दूर रखना चाहेगा, तो मैं तेरे समीप कैसे हो सकता हूँ। उस अपने व्यर्थ और अनर्थपूर्ण होने को मैंने क्या करना है। तेरे से दूरी में मेरा होना वस्तुतः **'होना'** नहीं रोना, धोना, खोना व जीवन ढोना है।

तेरे होने का आकलन **'मैं'** के स्तर से होगा। **'मैं'** जटिल्य (Complex) तो है ही, लेकिन **'मैं'** देह के साथ कितनी लिप्त है? यदि **'मैं'** भस्मी से आत्मसात् होना चाहती है (क्योंकि सबकी भस्मी भी **'मैं'** की तरह एक ही है) तभी तेरी देह के साथ तेरी लिप्तता और बंधन ढीला पड़ना शुरू होगा। देह के साथ बँध कर तू बन्दा बन गया और जब 'मैं' शब्द एक जाग्रत मानव-देह के तनिक अवलम्बन से प्रकट हुआ, तो तेरा तेरे जगत सहित बँधा होना घोषित हो गया। मानव देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूप सा होकर, देह के साथ लिप्त होते हुए बंध गया और जगत तेरे लिए विरोधी एवं प्रतिरोधी हो गया। सन्देह का ज्ञान होते ही तुझे पतन का अनुमान हो

जाएगा और वहाँ से प्रभु की समीपता के लिए आर्तनाद, प्रार्थना, रुदन व दीवानगी का प्रादुर्भाव होगा। **भक्त की शक्ति मात्र, रुदन है।** वहाँ मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र सबकी गति समाप्त हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व और तेरे समस्त जगत की स्थितियाँ तेरे एक का होना बदलने के साथ तेरे लिए बदलती हैं।

एक के लिए उसकी देह व जगत क्लेश का कारण है, दूसरे के लिए आनन्द का हेतु है, उसके लिए सब कुछ रसास्वादन ही है। इसलिए अपने जो, जब, जहाँ, जैसा भी होने को और नहीं होने को प्रभु समर्पित कर दे। प्रभु की नज़दीकी के लिए आर्तनाद व प्रार्थना कर। जड़ता में अपने होने की, चेतना में अपने होने की और अवचेतना में चेतना के विभिन्न स्तरों में अपने जो, जब, जहाँ, जैसा होने को तू प्रभु के चरणों से जोड़ दे। कष्ट मिले तो उसे प्रभु का प्रसाद मान, सुख मिले तो प्रभु की कृपा का शुक्र मना। कष्ट में प्रभु में ध्यान लगाना बहुत कठिन है, क्योंकि तेरा मन कई जगह भटकता है, सुख में सुख भोगने की वृत्ति और लालसा प्रभु से दूर सा कर देती है। समस्त खेल प्रभु का है। तू हर होने को प्रभु का प्रसाद मान। **जब तू रोते हुए आर्तनाद करते हुए प्रभु के सान्निध्य में हो जाएगा, तो जैसा भी तेरा होना है, उसमें से तू निकल जाएगा और तेरे होने में प्रभु स्वयं प्रविष्ट हो जाएँगे।** साथ ही जैसा भी तेरा, तेरे जगत सहित होना है, वह तेरे लिए आनन्द का हेतु बन जाएगा। तेरे होने की चैनल तेरे जगत सहित तेरे लिए आनन्दमय ही होगी।

प्रभु लीलाधारी हैं, तुझे एक ही प्रकार में कैसे रखेगें ! तेरे स्तर वह बदलता है और उस स्तर के अनुसार तेरी सृष्टि रचता है। तेरे एक के भाग्य में तनिक सा परिवर्तन या रूपान्तरण लाने के लिए तेरी समस्त सृष्टि में परिवर्तन लाता है। तू प्रारब्ध, काल, कर्मवश न होकर प्रभु के **'वश'** में हो जाएगा, तो यह **'वशता'** आनन्दमय ही होगी। प्रभु जो कराएँगे, वही तू करेगा, अन्यथा उनके ध्यान में मग्न रहेगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(20 नवम्बर से 3 दिसम्बर 2011)

माया (वंचित)

(भाग – 7)

आज पुनः प्रवचन-श्रवण महोत्सव में हम सब आत्मज्ञान एवं भक्ति की अमृतमयी धारा में आप्लावित होने के लिए सहर्ष, सोल्लास व सानन्द एकत्रित हुए हैं। प्रवचन-श्रवण महोत्सव की धारा भारत में अविरल चलती है। भारत से, भारत के द्वारा ही ज्ञान, ध्यान व भक्ति की यह धारा अविरल चलती रहेगी। आनन्द देहातीत है, जो मानव जीवन-काल में देह के जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, खोना-पाना-होना, करना-कराना, मिलना-बिछुड़ना और समस्त आधि-व्याधि-उपाधियों का देह द्वारा उल्लंघन करके, 'इसके बाद क्या है ? और 'इससे पहले क्या था ?' को सहर्ष जानना चाहता है, वही आत्म-चिन्तन का अधिकारी है। हमारा सम्पूर्ण जीवन वस्तुतः जीवनोत्सव (जीवन+उत्सव) है। जीवनोत्सव, महोत्सव, हवनोत्सव पयार्यवाची शब्द हैं। मानव जीवन स्वयं में यजन है। यजन ईश्वरीय '**यत्न**' है। शास्त्र में आनन्द को **'अभावमय'** कहा गया है। **'यजन'** उस अभावमय एवं आनन्दमय स्थिति के दिग्दर्शन का **'यत्न'** है, जो दैवीय ही होता है। यज्ञ योग्य व्यक्ति युगातीत एवं निःसन्देह सन्देह रहित है। जो सन्देह रहित है, उसे स्वरूप दर्शन (आत्म दर्शन) हो चुका है। वह यथार्थ देह का अधिग्रहण कर्ता है और उसे ही ईश्वर के चरणों के दर्शन का अधिकार भी है।

भौतिक जगत में जिसे Colour Blindness होती है, उसे रंगों में रंग, वे नहीं दिखाई देते, जो वास्तव में होते हैं। कुछ लोग पूर्ण Colour blind होते हैं

और कुछ आंशिक। यह Colour blindness दृष्टि-दोष है, जिसका कारण कई दैहिक रोग होते हैं। इसी प्रकार देहाध्यास (मैं देह हूँ) व देहाधिपत्य (देह मेरी है) के कारण जीव का दृष्टा भाव दूषित हो गया, उसे दृश्यमान सृष्टि में कुछ का कुछ नज़र आने लगा। उसे Colour Blindness की तरह दृष्टि-दोष हो गया। आध्यात्मिक दृष्टि से विभिन्न मानसिकताओं के कारण दृष्टा भाव प्रदूषित होता है।

मानव देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता सी में उलझकर तुझ में सात **'वट'** पड़ गए—मिलावट, बनावट, सजावट, दिखावट, थकावट, रुकावट एवं गिरावट। यह **'गिरावट'** अन्तहीन है। इन सातों **वटों** का मूल 'मैं देह हूँ' नामक सन्देह है। सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में तू इन वटों को खोलना नहीं चाहता और इन्हीं में उलझकर प्रारब्धवश, कर्मवश, कालवश युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। यहाँ इन वटों में तू हर समय किसी न किसी पदार्थ, प्राणी अथवा विधा से वंचित रहता है। तू '**अभावमय**' से '**अभाव में**' हो गया और तेरी कोई न कोई मन-वांछित इच्छा मरते दम तक बनी रहती है। जो जीवन में बहुत कुछ चाहते हैं, उन्हें वास्तव में यह ज्ञान ही नहीं होता, कि वे क्या चाहते हैं? '**ज़रा-ज़रा**' (थोड़ा ये-थोड़ा वो) तेरा स्वभाव बन जाता है, इसलिए युवावस्था में ही तुझे '**जरा**' (वृद्धावस्था) घेर लेती है। मात्र सद्‌गुरु की शरण ही इन वटों और तेरी ज़रा-ज़रा का एकमात्र समाधान है।

दृश्यमान जगत प्रकाट्य है और जो प्रकाट्य है, वह **'दृष्टा'** के अनुसार है। जब तू जैसा दृष्टा बनता है, वैसा तुझे दृश्य दिखाई देता है। तेरी देह सहित, जगत सहित जब, जहाँ, जैसी दृश्यमान सृष्टि होती है, वह तुझ दृष्टा के भावानुसार होती है। तुझे दृश्य की प्रस्तुति वैसी ही लगती है, जैसा तू दृष्टा होता है। तेरा समय-समय का अतीत, समय-समय का भविष्य तेरी मानसिकता के अनुसार ही होता है। यदि तुझे देह का अहं है, कि मैं देह हूँ, तो दृश्य तदनुसार ही होगा। लेकिन तू समय-समय पर कैसा दृष्टा होगा, यह तेरे हाथ में नहीं है। तू कैसा दृष्टा है, इस दृष्टा भाव की प्रस्तुति भी

परमात्मा की है। अतः तेरे दृष्टा भाव का निर्णय भी परमात्मा के हाथ में है।

मानव-देह ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्तम एवं विशेष चमत्कारिक सुकृति है। मानव-देह ईश्वर प्रदत्त सुवर्ण अवसर है। यह देह भौतिक दृष्टि से भी मेरी नहीं है और जगत सहित मुझे नित नूतन मिलती है। मैं कोई देह (body) नहीं है। **'मैं'** शब्द एक नाम में गुण्ठित व कुण्ठित मानव-देह के अवचेतना में होने पर ही प्रकट होता है। मानव-देह स्वयं में क्षण-भंगुर, हर क्षण परिवर्तनशील एवं सतत् गतिशील है। 'मैं देह नहीं हूँ' इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि इसका अगला क्षण क्या व कैसा होगा, यह मेरे हाथ में नहीं है। मैंने इसे क्षण-क्षण परिवर्तित होते देखा है, लेकिन हर क्षण होने वाले परिवर्तन को मैं रोक नहीं सकता।

देह भाव (मैं देह हूँ) के प्रकट होने पर **'मैं'** (आत्म-तत्त्व का प्रतिनिधि) शब्द में आत्म-तत्त्व का प्रकाट्य होता है, जो सब मानवों का एक ही है। **'मैं'** स्वयं में **अदृश्य, अनाम** व **अरूप** है। मानव देह तथा देहें **साकार** व **दृश्यमान** हैं तथा **नाम** स्वयं में **निराकार** है। नाम का अपना कोई रूप नहीं है। अतः **'नाम'** भी स्वयं में अनाम व अरूप है। **'मैं'** की ऐसी मानव देह के साथ तद्रूपता सी हो जाती है, जो एक **'नाम'** से कुण्ठित, अति सीमित व गुण्ठित हो चुकी है। यह **'मैं'** आत्म-तत्त्व न होकर, एक जटिल्य (Complex) है। देह रूप में **'मैं'** और मेरा समय-समय का दृश्यमान जगत किसी अदृश्य का बाह्य प्रकाट्य है। यदि दृश्यमान दृश्य में कोई परिवर्तन, संशोधन अपेक्षित है, तो कहाँ और कैसे सम्पर्क किया जाए? हम भ्रमवश उस दृश्यमान देह सहित जगत के चलचित्र में उलझे रहते हैं, जो पहले से ही बना-बनाया (recorded) है।

दृश्यमान जगत के किसी छोटे से छोटे अंश में किंचित परिवर्तन के लिए सम्पूर्ण सृष्टि में आमूल-चूल परिवर्तन एवं संशोधन अपेक्षित होता है। उदाहरणतः एक शिशु की जन्मपत्री द्वारा किसी ज्योतिषाचार्य ने कोई विशेष कष्ट बताया। यहाँ ध्यान देने योग्य विशेष तथ्य है, कि इस कष्ट की भविष्यवाणी से शिशु अप्रभावित है और उसके माँ-बाप और सगे-सम्बन्धी

दुःखी होते हैं तथा कुछ न कुछ उपाय करते हैं। प्रश्न उठता है, कि वह जन्मपत्री किसकी है ? स्पष्ट है कि जन्मपत्री और भाग्य का लेखा-जोखा एक का न होकर अनेक का है। जो-जो उससे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सम्बन्धित व प्रभावित हैं, सबका है। इसमें देश, काल, भूगोल, इतिहास, मौसम आदि की विधाएँ भी आ जाती हैं। अतः **'एक'** की सृष्टि में ज़रा से भी संशोधन व परिवर्तन करने के लिए विधाता को कुल सृष्टि में परिवर्तन करना पड़ता है।

देह भाव (मैं देह हूँ) सन्देह है और **'मैं'** शब्द इस सन्देह (मैं देह हूँ) को पुष्ट करता है। देह की मृत्यु के साथ **'मैं'** जटिल्य (Complex) नहीं मरता, बल्कि यही पुनः देह धारण करता है। समस्त अंकन (Recording) मानसिक है। इस अंकन (Recording) का कोई रुटीन नहीं है। प्रत्येक अंकन (Recording) प्रकट नहीं होता और जो प्रकट होता है, वह आवश्यक नहीं अंकित (Recorded) भी हो। देह व जगत का प्राकट्य एक नित नूतन घटना है। भ्रम में मैं मान लेता हूँ, कि जो मैं रात को सोया था, वही सोकर उठा हूँ। यह भाव धारणा (Concept) है। उठने वाला स्वयं को प्रकट नहीं मानता। यदि वह आश्वस्त हो गया है, कि मैं देह सहित, जगत सहित प्रकट हुआ हूँ, तो उसका गर्भित (Conceptual) देह से कुछ लेना-देना नहीं है। तब सन्देह (मैं देह हूँ) मिट जाएगा और देह व जगत स्वयं में प्राकट्य ही होगा। वास्तविक (Factual) देह व गर्भित (Conceptual) देह तेरा मानस है। जब तेरे मानस से जन्म-मरण की धारणा हटने लगेगी, तो तेरा मानस चेतना से परिपूरित होगा। तू नाम से कुण्ठित व गुण्ठित गर्भित (Conceptual) देह के कार्यक्रमों से न बँधेगा, न बाँधेगा। प्रकट यथार्थ देह चेतनामयी होती है।

कहा गया है—'अन्त मति सो गति' जो अनादि व अनन्त है उसका अन्त कैसे हो सकता है। वस्तुतः अन्त **'मैं'** जटिल्य (Complex) का है। सृष्टि में ईश्वरीय प्रक्रिया ही प्राकट्य है। प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम प्राकट्य का प्रारम्भ है। प्रारम्भ उसी का होगा, जिसका अन्त हुआ। जो रात को सोया है, वह सुबह उठेगा यह सुनिश्चित नहीं है, लेकिन यदि वह उठेगा,

तो सोते समय की मति की अपनी गति देखेगा। पूर्ण दृष्टा भाव की अनुभूति के सात सोपान हैं—धृष्ट, भ्रष्ट, अशिष्ट, शिष्ट, विशिष्ट, अतिविशिष्ट एवं विशुद्ध दृष्टा।

मैं देह हूँ, मैंने देखा यह तेरी दृष्टता नहीं, धृष्टता है। सुबह निद्रा से उठते ही तेरी **'मैं'** प्रकट हो जाती है। यह **'मैं'** आत्म-तत्त्व की द्योतक न होकर नाम-रूप से कुण्ठित व गुण्ठित देह की व्यक्तिगत **'मैं'** होती है। जब तूने स्वयं को नाम-रूप की देह दृष्टा मान लिया, तो **'धृष्ट'** हो गया। यह धृष्ट दृष्टा अपने सन्देह रूपी अज्ञान को ही सर्वोपरि ज्ञान मानता है। वह ईश्वरीय माया का रसास्वादन नहीं कर सकता। वह फंसास्वादन ही करता है। जो धृष्ट है, वह **'भ्रष्ट'** है और **'भ्रष्टाचारी'** है। तेरे एक के उठते ही सम्पूर्ण जगत तेरे साथ उठता है। एक के साथ अनेक हैं और सबकी **'मैं'** एक ही है। तुझे नाम के कारण वे सब पृथक् लगने लगते हैं, जबकि तेरे होने से ही उनका होना होता है।

जगत में कोई सम्राट, भिखारी, ऊँचा, नीचा, ज्ञानी, अज्ञानी, बड़ा, छोटा, सुखी, दुःखी, तेरे एक के होने से है। निद्रा में न तू एक होता है, न तेरे लिए अनेक होते हैं और तुझे यह ज्ञान भी नहीं होता, कि तू देह व जगत अर्थात् एक-अनेक से परे है। रात्रि में देखे गए स्वप्न पर विचार करने पर तुझे आभास हो जाएगा, कि तू एक है, तो अनेक भी तू ही है। **'स्व'** और **'सर्व'** में तू ही तू है। देह में **'सिर'** व्यष्टि है और सिर सहित सम्पूर्ण देह समष्टि है। समष्टि में व्यष्टि भी है; लेकिन व्यष्टि है, तो समष्टि है और समष्टि होगी तो व्यष्टि अवश्य होगी। इसलिए तेरा होना ही जगत का होना है। सद्गुरु कृपा हुई तो तुझे अपने अज्ञान (मैं देह हूँ) का ज्ञान हुआ और धीरे-धीरे तू धृष्ट, भ्रष्ट तथा अशिष्ट से **'शिष्ट', 'विशिष्ट', 'अतिविशिष्ट'** हुआ। चेतना के विकास की चरम सीमा पर तू विशुद्ध **'दृष्टा'** (आत्म-तत्त्व) होता है, जिसका **'मैं'** शब्द में प्राकट्य होता है। सद्गुरु कृपा से अपने सन्देह रूपी अज्ञान का ज्ञान होते ही तेरी चेतना का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है।

'मैं' लगे बिना तेरी देह व्यर्थ व निष्क्रिय है। **'मैं'** तुझे जगत सहित उठा हुआ होना प्रमाणित करती है। यह सन्देहयुक्त **'मैं'** नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित देह के साथ तद्‌रूप सी हुई, तो वह देह या रूप भी तद्‌नाम हो गया। इससे छूटने के लिए तेरी चेतना का विकास अपेक्षित है। चेतना के विकास एवं **'मैं'** (आत्म-तत्त्व) की जागृति के लिए देह की वह अवस्था चाहिए, जो निश्चित, परिलक्षित व दर्शित हो, लेकिन स्वयं में अनाम व अरूप हो। यह है तेरी देह की भस्मावस्था, जो तूने अपनी नहीं देखनी, लेकिन अन्य की देखता है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था सब भिन्न-भिन्न देहों की **'सम'** है। **'भस्मी'** सबकी **'सम'** है। तू अपनी भस्मी पर ध्यान करते हुए उस अवस्था से आत्मसात् हो। जब तू जीते जी अपनी **'मैं'** को भस्मी से जोड़ेगा, तो तू शिष्ट, विशिष्ट और अति विशिष्ट होता हुआ अन्ततः अपना दृष्टा पद पा लेगा। वही स्वरूप तेरी सभी अवस्थाओं, जो तुझे दृश्यमान हुईं अथवा नहीं हुईं, उन सबका एकमात्र **'दृष्टा'** है। तेरे अनेकों का भी वही **'दृष्टा'** है। परमात्मा **'धृष्ट', 'भ्रष्ट', 'अशिष्ट', 'शिष्ट', 'विशिष्ट' 'अतिविशिष्ट'** और **'दृष्टा'** का भी एकमात्र दृष्टा है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

देह भाव का प्रकाट्‌य देह सहित जगत के नाना रूपों में होता है और यह देह सहित जगत का होना अवचेतना में है, इस चिन्तन से सन्देह का ज्ञान तो हो ही जाता है, साथ ही इसके टूटने की आशा भी जाग्रत हो जाती है। फिर यह चिन्तन जन्मों-जन्मान्तरों तक चलता रहता है। देह द्वारा तू अपने विदेह स्वरूप का दर्शन कर। वह भी तेरा है और तेरे एक का है। चलचित्र में तू एक से अनेक हुआ है, तेरा विदेह स्वरूप आनन्दमय मानस रूपी पर्दा है, वहाँ तू **'एक'** ही है। यह तेरा **'एकान्त'** स्वरूप है, जहाँ देह-रूप में तेरे एक का भी अन्त हो जाता है। यह एकान्त स्वयं में, स्वतः अनेकान्त भी है। अचल पर्दे और चलचित्र में यही अन्तर है। यदि चलचित्र न हो, तो तुझे इस रहस्य का ज्ञान ही न हो। तू अनेकों में से एक (One out of all) नहीं है, बल्कि अनेकों में एक (One in all) है, क्योंकि देह रूप में **'एक'** तेरे होने से

एक व अनेकों का चलचित्र चलता है। पर्दा या आनन्दमय मानस एक ही है और स्वयं में अनेकों में कोई नहीं (None in all) है तथा इस आनन्दमय मानस रूपी पर्दे का कारण सभी सब कुछ(All in all) परमात्मा है।

हर चलचित्र का अस्तित्व अचल व अदृश्य पर्दा है, लेकिन वह चलचित्र के किसी भी अंश का कारण नहीं है। यदि पर्दा होगा, तभी चलचित्र चलेगा। पर्दा, बिना चलचित्र के भी हो सकता है, लेकिन चलचित्र पर्दे के बिना नहीं हो सकता। चलचित्र हो न हो, पर्दा अचल ही रहता है और चलचित्र में चलते दृश्यों से सदा अप्रभावित व निर्लिप्त रहता है। चलचित्र में प्रकट भयंकर तूफान, अग्निकाण्ड, युद्ध, प्रेम, मार-काट आदि किसी से रंच मात्र भी प्रभावित हुए बिना सभी के सम्पूर्ण जीवन के अनेकानेक विभिन्न दृश्यों को प्रस्तुत करता है।

प्रत्येक चलचित्र पहले से बना-बनाया होता है और मध्यान्तर के बाद फिल्म वहीं से शुरू होती है, जहाँ मध्यान्तर से पहले बन्द की गई थी। मध्यान्तर में सफेद पर्दा दृश्यमान होता है। जीवनकाल में जीवन की पाँच अवस्थाएँ मध्यान्तर की तरह होती हैं। इनमें दो मध्यान्तर (गर्भावस्था और शैशवावस्था) हमेशा अतीत रहते हैं और दो मध्यान्तर (मृतकावस्था और भस्मावस्था) भविष्य बने रहते हैं तथा 'निद्रावस्था' अतीत व भविष्य दोनों रहती है। इन पाँच अवस्थाओं में चलचित्र नहीं चलता और किसी ने अपनी ये अवस्थाएँ नहीं देखीं और मानस रूपी आनन्दमय, अभावमय, अचल पर्दा अदृश्य ही बना रहता है।

तेरा आनन्दमय मानस रूपी पर्दा युगों-युगान्तरों से चलते विभिन्न चलचित्रों का **अयुग** व **अकाल** दृष्टा एवं आत्म-स्वरूप है। तेरी जीवन में जब प्रविष्टि होती है, तो उस समय तक तेरे जीवन के अनेक दृश्य तेरे लिए निकल चुके होते हैं। गर्भावस्था और शैशवावस्था के समय तेरा अदृश्य, अप्रभावित एवं अचल आनन्दमय मानस रूपी पर्दा तेरे लिए दृश्यमान होता है। तेरी निद्रावस्था, मृतकावस्था और भस्मावस्था में भी तेरे लिए तेरा जीवन रूपी चलचित्र नहीं चलता, वहाँ मानस रूपी अचल पर्दा दृश्यमान होता है,

लेकिन तुझे दिखाई नहीं देता। ये अवस्थाएँ तूने अन्य की देखी हैं और अपनी स्वयं की नहीं देखीं। इन पाँच अवस्थाओं में से किसी एक का ध्यान में **'दर्शन'** कर ले, तो तुझे उस आनन्दमय मानस का दर्शन हो जाएगा, जो सबका एक ही है। जो अवस्थाएँ जगत में दर्शित हैं और अपने में तूने नहीं देखीं, वे तेरे लिए अदृश्य थीं और अदृश्य रहेंगी, इनकी तू सद्‌गुरु कृपा से ध्यान में **'दर्शन'** व अनुभूति कर सकता है।

'मैं देह हूँ' के सन्देह से युक्त व्यक्ति, जिसे अपने इस अज्ञान का ज्ञान नहीं है, वह यही कहेगा, कि गर्भावस्था से पहले मैं नहीं था और मेरी देह की भस्मी बनने के बाद मैं नहीं रहूँगा। **'मैं हूँ'** यह घोर अज्ञान है। क्योंकि **'मैं'** आत्म-तत्त्व का प्रतिनिधि न होकर नाम से कुण्ठित व गुण्ठित देह के साथ तद्‌रूप जीव का द्योतक एक जटिल्य (Complex) हो जाता है। जीव अपने साथ प्रकट जगत को स्वयं से भिन्न ही मानता है। होश सम्भालने से होश जाने के अन्तराल में जीव सोना-उठना, उठना-सोना में रत रहता है। उठने में करना-करवाना, पाना-खोना, बनना-बनाना और बहुत कुछ संघर्ष करते-करते एक दिन चिर निद्रा में लीन हो जाता है। एक दिन ऐसा अवश्य होगा, जब तू अन्तिम बार सोएगा और मरणोपरान्त तू नहीं उठेगा। इसके बाद तू भस्मी बनेगा, तू जानता और मानता है क्योंकि समय-समय पर तेरे साथ तेरे जगत में प्रकट अन्य लोगों को इन अवस्थाओं में तूने देखा है। होश सम्भालने से पूर्व तू शैशवावस्था में था और गर्भावस्था में था। यह भी अपने अन्य अनेक में तूने देखा है, इसलिए तू जानता और मानता है। गर्भावस्था से पहले और भस्मावस्था के बाद तूने दूसरों का नहीं देखा इसलिए इस विषय में तू मौन हो जाता है अथवा कहता है, कि तू नहीं था और नहीं रहेगा। क्योंकि गर्भावस्था से पहले और भस्मावस्था के बाद क्या होता है, यह तूने किसी का नहीं देखा।

जीव की बहुआयामी दौड़ अनादि है। मृत्यु किसी ने न देखी है और न देख सकता है। जीव यह जानता है और मानता है, कि मृत्यु होगी; लेकिन यह हमेशा उसका भविष्य ही रहती है। अपनी स्वयं की '**निद्रा**' भी किसी ने

नहीं देखी। सुषुप्ति के साक्षी व गवाह मिलते हैं लेकिन, मृत्यु का साक्षी व गवाह भी किसी को नहीं मिलता, कि 'भाई साहब मैंने आपको मरे हुए देखा था'। मृत्योपरान्त मृत्यानुभूति, नहीं हो सकती, क्योंकि कोई मर कर नहीं मरता, सब जीते जी मरते हैं। जिस प्रकार अपना स्वयं का जन्म मान्यता है उसी प्रकार स्वयं की मृत्यु भी मान्यता है। जन्म और मृत्यु मानव-जीवन की दो अद्‌भुत सीमाएँ है; जो किसी ने अपनी स्वयं की नहीं देखीं। जन्मदिन मनाते हैं लेकिन अपना स्वयं का जन्म होते किसी ने नहीं देखा। इसी प्रकार मुत्यु की तलवार हर समय सिर पर लटकती रहती है। लोग अंग रक्षक (Body Guards) तक रखते हैं। अंग रक्षक देह के किस-किस अंग की रक्षा कर सकते हैं? कभी-कभी रक्षक ही **'भक्षक'** बनकर हत्यारे बन जाते हैं। रोग, सुनामी, भूकम्प, तूफान, आँधी आदि से कौन से अंग रक्षक (Body Guards) रक्षा कर सकते हैं? अमुक नामक गर्भित देह स्वयं में **'भ्रामक'** है, क्योंकि नाम जन्म के बाद रखा गया। जब भी हम होश सम्भालते हैं, अर्थात् स्वयं को एक नामक देह से पहचानते हैं, तो जन्म कई वर्ष पूर्व हो चुका होता है और मृत्यु, भविष्य में होने वाली घटना बनी रहती है। जन्म की भाँति मृत्यु भी तेरी धारणा (concept) है, जिसको भी तूने मृतक देखा है, वह जीते जी मरा है और तूने जीते जी उसे मरे हुए देखा है अथवा सुना है। इसी प्रकार तू भी जीते जी मरेगा।

पैदा होते समय जगत में तू **'कुछ नहीं'** लाया था और मरने के बाद **'कुछ नहीं'** ले जाएगा। देह के चिता में जलाने के बाद तेरा **'कुछ नहीं'** (भसम) रहेगा। जगत में लेकर आया था **'कुछ नहीं'** और अन्ततः तेरा रहेगा **'कुछ नहीं'**। **'कुछ नहीं'** का पदार्थ रूप तेरी देह की **'भसम' है। 'सब कुछ'** का आधार व अस्तित्व तेरा अपना **'कुछ नहीं'** ही है। **'कुछ नहीं'** वह है, जो तू लाया था, ले जाएगा और भसम रूप में रहेगा। साथ ही **'कुछ नहीं'** वह है, **जो है** और तेरा है। सन्देहवश, अज्ञान के अज्ञानवश **'सब कुछ'** के चक्कर में तू अपना **'कुछ नहीं'** खो चुका है, इसलिए तू अस्थिर होकर भटक रहा है। तू सद्‌गुरु निर्देशन में अपना **'कुछ नहीं'** सुनिश्चित (Assure) कर,

जिसके लिए तू insured है। तूने युगों-युगान्तरों से पूर्ण परिपक्व अपने इस insured **'कुछ नहीं'** का कोई लाभ नहीं लिया, क्योंकि उसे तू **'सब कुछ',** कभी कुछ, कभी कुछ में खोज रहा है, जो असम्भव है।

प्रभु ने किसी को जिस वस्तु या पदार्थ से वंचित रखा है, वह **'वंचन'** वस्तुतः प्रभु तक पहुँचने और देह के दौरान, देह से देहातीत होने का प्रभु प्रदत्त द्वार है। उस द्वार से ही चाहत या वांछा का रूपान्तरण हो सकता है। जीवन **में** असंख्य चाहतें होती हैं लेकिन उनकी प्राप्ति सीमित से सीमित की सीमाओं के विस्तार तक रहती है। हमारी भौतिक चाहतें अनन्त हैं, उनका नियन्त्रण और मूलोच्छेदन कैसे हो? एक बीज धरती में बोया जाता है तो पल्लवित होता है और फूल, फल में बढ़ते हुए असंख्य बीजों का जन्म दाता बनता है। जड़ ज़मीन के नीचे होती है और पौधा ऊपर फलता है। इसी प्रकार चाहत मानव मानस का अदृश्य बीज़ है, जो उगता है तो जड़ बन कर मानस में फैल जाता है। चाहत पूरी हो कर जड़ छोड़ देती हैं और जड़ें हमें जकड़े रखती हैं। चाहत के पूरी होने पर तात्कालिक अस्थाई प्रसन्नता होती है लेकिन शीघ्र ही अन्य असंख्य चाहतें हमें घेर लेती हैं। कुछ चाहतें आवश्यकतानुसार होती हैं, कुछ सुख सुविधा एवं आडम्बरवश होती हैं। इसीलिए जीवन में चाहतें कभी पूरी नहीं होतीं। जो पूरी होती हैं, वे पूरी सी होती हैं और अन्य असंख्य चाहतों के रूप में मन और रूह तक को घेर लेती हैं। चाहत '**जरा**' रोग बन कर ज़रा-ज़रा की जड़ रूप में मानस में फैलती रहती हैं। यह जड़ वस्तुतः जरा रोग की जननी है। **'मैं'** कुल **जीवन से** क्या चाहता हूँ, यह एक चाहत जीवन **में** समस्त चाहतों को लील जाती है।

जीवन में जिससे कोई वंचित है, वह वंचन वस्तुतः प्रभु की ओर उन्मुख होने का हेतु और प्रभु की असीम व अकारण कृपा का द्योतक है। मानव को प्रभु ने मानने की अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है। धर्म, कर्म, सम्बन्ध, देश, काल, लिंग, गुण, अवगुण, लाभ, हानि, सुख, दुःख, मान, अपमान, यश, अपयश सब मानवीय मन की मान्यताएँ हैं। मन भी अदृश्य है और मान्यता भी अदृश्य है। जिसे माना जाता है, वह वस्तु, पदार्थ, प्राणी दृश्यमान होता है। जिस पदार्थ

से मैं **वंचित** हूँ, वह मेरे लिए **वांछित** है। वंचित से वांचित और वांचित से वांछित शब्द बना है। **'मन वांछित फल'** प्रभु से सभी मांगते हैं। किसी के लिए मन वांछित वही होगा, जिससे वह वंचित होगा। जो वस्तु या पदार्थ किसी के पास है वह उसकी वांछा (इच्छा या चाहत) क्यों करेगा ! अभाव अथवा वंचन से वांछा पैदा होती है। मन वांछित पाने के लिए मानव कहाँ-कहाँ भटकता है और भटकते-भटकते ही तीर्थों, देवी-देवताओं, पीर-पैगम्बरों एवं सन्तों-महात्माओं तक पहुँच जाता है। उनके द्वारा कराए गए प्रकरणों, तन्त्रों-मन्त्रों से वांछित पदार्थ, प्राणी अथवा भौतिक जगत की विधाएं मिल भी जाती हैं, लेकिन वे विधाएं ही चिन्ता व तनाव का कारण बनी रहती हैं।

किसी पदार्थ या भौतिक जगत की किसी भी महत्त्वपूर्ण विधा का वंचन परमात्मा जन्मों-जन्मान्तरों से भटके हुए जीव को कृपावश देता है। यह वंचन उसे महापुरुषों के **'वचन'** और **'प्रवचन'** की ओर ले जाता है। उस वंचन से सद्गुरु अपने वचनों द्वारा कृपा करते हुए उसे वह दिला देता है, जो उसने सोचा भी नहीं होता। यह **वंचन** जीव को **'प्रवचन', श्रवण** और मानव-देह के **'अर्थ'** की ओर प्रेरित करता है, जिससे जीव अपने आत्म-स्वरूप, मानव देह के यथार्थ और ईश्वर के ईश्वरत्व की अनुभूति कर सकता है। इसके बाद चाहत या वंचन की चिन्ता नहीं, चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है और चाहत का रूपान्तरण प्रभु की महाचाहत में हो जाता है। जीव को सदा-सर्वदा के लिए अनिर्वचनीय विश्राम मिल जाता है। संसार व दृश्यमान विधाओं से मान्यता द्वारा मान्यता हटा कर किसी भी रूप, अरूप, नाम, अनाम में शाश्वत्, अनादि, अनन्त ईश्वर को मानना ही सद् है।

चाहतें चिन्ता का कारण बनती हैं और प्रभु की **'महा चाहत'** **चिन्तन** की ओर प्रवृत्त कर देती है, कि प्रभु ने मुझे अमुक-अमुक वस्तु से वंचित रखा है, इसमें प्रभु का मेरे लिए अवश्य कोई विशेष हित ही है। आखिर मैं कुल जीवन से क्या चाहता हूँ ? यह एक चाहत, महा चाहत बनकर चिन्तन बन जाती है। मानव-जीवन व देह का अर्थ एक ही है और वह है अन्ततः

प्रकट होने वाली भस्मी जो देह के पंच महाभूतों में विलय के बाद प्रकट होती है। यही मेरा अपना 'कुछ नही' है। वस्तुतः मैं अपने **'कुछ नहीं'** से वंचित हूँ और यह वंचन ही मेरे समस्त दुःखों, अभावों एवं वंचनाओं का मूल है। प्रभु के अतिरिक्त मुझे मेरा **'कुछ नहीं'** कोई नहीं दिला सकता। हे प्रभु ! मेरी रक्षा करो। मैं देह के सन्देह में अपना **'कुछ नहीं'** खो बैठा हूँ। मैं जीवन के चलचित्र की बाढ़ में बहा जा रहा हूँ।

देह का **'सद्'** है, कि यह पल-पल परिवर्तनशील एवं नश्वर है। नश्वर देह पर आधारित जगत भी नश्वर है। इस देह को ध्यान में मृतक देखना और फिर इसे चिता में दहन होते देखना 'लययोग' प्रकरण है। जीते जी तू विभिन्न पदार्थों, प्राणियों एवं देह व जगत सम्बन्धी विभिन्न विधाओं से वंचित रहता है और 'ज़रा' 'ज़रा' (थोड़ा-थोड़ा) करते-करते तुझे जरा (वृद्धावस्था) घेर लेती है। अतः तू 'ज़रा-ज़रा' से मुक्त होकर जिस भी विधा से तू वंचित है उसका रहस्य जान और अपना हर मन वांछित प्रभु को समर्पित कर। सद्गुरु किसी भी तरह से अबाध चलते जीवन रूपी चलचित्र में रुकावट डालकर मानस रूपी पर्दे की अलिप्तता एवं अचलता के प्रति जाग्रत कर देता है। कुछ समय के लिए चलचित्र रोक देता है और आश्वस्त कर देता है, कि तेरे सम्पूर्ण जीवन रूपी विभिन्न दृश्य, अचल व तेरे लिए अदृश्य मानस रूपी पर्दे पर चले हैं और आगे भी चलते रहेंगे। यह मानस रूपी पर्दा स्वयं में तेरा अपना **'कुछ नहीं'** है।

सद्गुरु जीवन अथवा प्रारब्ध रूपी चलचित्र को रोक कर ऐसे दृश्यों की प्रस्तुति करता है, जिनके चलते अकाल स्थिति में हमें अपने अभावमय आनन्द की अनुभूति होती है। सद्गुरु द्वारा किए गए हस्तक्षेप एवं रुकावट के बाद चलने वाला जीवन रूपी चलचित्र विचित्र एवं आनन्दमय होता है। इसके बाद चलते चलचित्र में जीव की कोई लिप्तता नहीं होती। जीवन स्वयं में कालातीत, युगातीत एवं आनन्दमय होता है। इसके बाद साधक को मात्र उस आनन्दमय व अभावमय मानस रूपी पर्दे के दर्शन की लिप्तता एवं वांछा हो जाती है। देह द्वारा लिए हुए इन्द्रियों के सुख उसके समक्ष तुच्छ

दृष्टिगत होते हैं। सुख-दुःख परस्पर सापेक्षिक हैं, क्योंकि कोई भी सुख, दुःख की अपेक्षा होता है और कोई भी दुःख, सुख की अपेक्षा में ही होता है। वहाँ सुख-दुःख दोनों की उपेक्षा होती है और दोनों का महत्त्व नगण्य हो जाता है और मानव स्वयं में पूर्ण तृप्त एवं विरक्त हो जाता है। देह द्वारा अपना खोया हुआ शाश्वत् **'अर्थ'** ग्रहण करना प्रत्येक मानव का लक्ष्य है। यह **'अर्थ'** सद्गुरु द्वारा दिया गया **'उपहार'** है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 अक्टूबर से 30 अक्टूबर एवं 16 नवम्बर 2011)

माया (कर्म)

(भाग - 8)

सम्पूर्ण निराकार एवं साकार जगत दृश्यमान है, जिसका स्रष्टा ईश्वर '**स्वयं**' में अदृश्य है और इसका एकमात्र दृष्टा जीवात्मा भी अदृश्य है। मानव अपनी बुद्धि से ही जान जाता है, कि दृश्यमान के पीछे कोई ऐसी शक्ति अवश्य है, जो अदृश्य है। यह जगत कैसे बना, कैसे चल रहा है, पालन कैसे होता है और संहार क्यों व कैसे होता है? इसका निर्णय मानवीय बुद्धि से परे है। अतः ईश्वर की अदृश्यता का आभास दृश्यमान परिदृश्य ही से होता है। सम्पूर्ण निराकार-साकार दृश्यमान जगत का संघनित प्रतिनिधित्व एक साकार मानव-देह का दृश्यमान रूप करता है। **'चेतना'** इस संघनन एवं प्रतिनिधित्व से मानव को **'आनन्द'** की अनुभूति कराती है, कि **'है सब कुछ'** (**चेतना**) और **'है कुछ नहीं'** (**आनन्द**)। जहाँ **'सब कुछ'** स्वयं में **'कुछ नहीं'** है, वह आत्म-स्वरूप है; जो **'अभावमय'** है। **'अभावमयता'** के बिना जो सब कुछ दृश्यमान है, वह **'अभाव में'** ही रहता है। साथ ही वहाँ कर्ता भाव एवं अहंकार भी पैदा हो जाता है। दृश्यमान मानव-देह स्वयं में **'सद्'** है। साकार मानव-देह की जो अदृश्य शक्ति ईश्वर की अदृश्यता की अनुभूति करती है, वह **'चेतना'** है और वह अनुभव स्वयं में **'आनन्द'** है, दूसरे शब्दों में जो उसके अदृश्य की अनुभूति करवाती है, वह चेतन सत्ता है और वह अनुभूति स्वयं में आनन्द है।

'तू' (परमात्मा) है, तो **'मैं'** (जीवात्मा) हूँ। तेरे होने से **'मैं'** हूँ; तू है ही, अतः **'मैं'** भी हूँ ही। देह सहित जगत का होना '**मेरे होने**' से है और '**मेरा**

होना' तेरे होने से है। मेरे लिए जगत कैसा है? जैसा **'मैं'** हूँ। प्रश्न उठता है, कि जगत नित्य बदलता क्यों है? जगत इसलिए बदलता है, क्योंकि तेरा **'होना'** बदलता है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत समस्त साकार एवं निराकार दृश्यमान जगत का होना, तेरे होने से है। तेरा प्रत्येक (प्रति+एक) होना '**एक**' प्रभु के होने से होता है। तू जैसा भी होता है उसका **'हेतु'** मात्र परमात्मा ही होता है। तुझे इसका ज्ञान होना आवश्यक है, कि यदि तू रौरव नरक का अधिकारी भी है, तो वहाँ भी प्रभु के होने से है और यदि स्वर्ग, अपवर्ग अथवा कैवल्य पद का अधिकारी है, तो भी प्रभु के होने से है। तेरे हर होने में प्रभु ही तेरे हितकारी निमित्त होते हैं। अतः तेरे हर होने में प्रभु का तेरे प्रति हित ही सन्निहित है। इसीलिए इस हित का कारण, प्रभु स्वयं में **'हेतु'** हैं।

माता-पिता भी हित-चिन्तक होते हैं, लेकिन कभी-कभी जीव भाव में अपनी सोच के अनुसार अहित के कारण भी बन जाते हैं। इसलिए उन्हें **'हेतु'** नहीं माना जा सकता। **सद्गुरु स्वयं में परमात्मा का प्रतिनिधि होता है,** अतः उसने हित ही करना है। अतः '**हेतुत्व**' हितयुक्त कारण है। मात्र हित के हेतु को शास्त्र में **'होता'** कहा गया है। **'होता'** ही सुफल और फल का निर्णय लेता है। **'होता'** सद्गुरु अथवा परमात्मा ही होता है। जिसके लिए सर्वोपरि **'परहित'** ही हो, वह महापुरोहित मात्र **'एक'** प्रभु ही हैं।

इष्ट व सद्गुरु में पूर्ण विश्वास एवं उसे अपना हेतु मानने का लक्षण यह है, कि **'मैं'** चाहे जिस भी स्थिति, अवस्था, परिस्थिति अथवा होने की जिस भी विधा में हूँ, मुझे मेरे इष्ट व सद्गुरु की समीपता की अनुभूति का पूर्ण आभास है। उस एक **'हेतु'** की जान्यता और मान्यता कठिन से कठिन और सरल से सरल प्रत्येक '**होने**' में मुझे आनन्दित ही रखती है। यदि मैं इष्ट व सद्गुरु को किसी भी प्रकार और सब प्रकार से अपना **'हेतु'** नहीं जानता व मानता, तो कभी स्वयं अपने को अथवा कभी किसी अन्य को **'कारण'** मानता हुआ सुखी-दुःखी ही रहता हूँ। कोई-कोई कारण हमेशा मुझे घेरे रहता है। मैं सफलता में कारण खुद बन जाता हूँ और तथाकथित असफलता में दूसरों पर दोषारोपण करके आधि, व्याधि, उपाधि, मल, विक्षेप,

आवरण, रोग, दोष आदि से ही घिरा रहता हूँ। परमात्मा एक ही है और युगों-युगान्तरों से मेरे **'होने**' का **'हेतु'** है। यद्यपि मेरा **'होना'** वर्तमान में है, लेकिन भूत के शोक एवं भविष्य की चिन्ताओं से बोझिल है। **'होना'** एक भाव या मानस है। अतः मेरा होना स्वयं में अदृश्य है। जब वह एक चलचित्र रूप में प्रकट होता है, तो दृश्यमान होता है। चलचित्र में कृत्य, अकृत्य, करना, पाना, खोना, होना, बनना, बनाना, प्रेम, शत्रुता, क्रोध आदि बहुत कुछ होता है। प्रकाट्य में जो होना होता है, वह होता ही है क्योंकि वह **'होता'** (परमात्मा) द्वारा होता है।

सन्देह में होने के कारण जन्मजात विकारों में जीव विकृतियों से ग्रसित है। उसकी समस्त विभूतियाँ **'मैं देह हूँ'** के सन्देह में विकृतियों से आच्छादित हो जाती हैं। सद् में सन्देह उसे ही हो सकता है जो स्वयं सन्देह में है। न उसे सन्देह का ज्ञान है तथा न ही वह यह ज्ञान चाहता है। जिनकी देह, जगत सहित प्रतिरोधी हो चुकी है अर्थात् **'सद्'** की ओर उन्मुख होने में बाधा बनी हुई है, उन्हें आत्म-विश्लेषण करने में अपनी विकृतियाँ ही सुकृतियाँ प्रतीत होने लगती हैं एवं अपने दुर्भाव ही सद् भाव लगने लगते हैं। वे केवल विकृत ही नहीं अभिशप्त भी हैं। **'सद्'** की ओर उन्मुख होने के लिए अपनी विकृतियों, सुकृतियों, मिलावट, बनावट सबका सद् जानना आवश्यक है। इसके लिए पूरी ईमानदारी से स्वाध्याय अनिवार्य है। जब व्यक्ति खुद से खुद को छिपाता है तो स्वयं को वही समझने व मानने लगता है जो लोग उसे कहते है अथवा वह स्वयं चाहता है।

भौतिक क्षेत्र में व्यवहार, विशिष्ट व्यापार, पद, पढ़ाई-लिखाई, रहने के स्थान, धन, पारिवारिक समस्याओं और देह की अन्य विभिन्न अवस्थाओं (जो हमने अपनी देखी हैं) के बारे में हम अक्सर बुजुर्गों और अनुभवी लोगों की सलाह लेते हैं; उनसे विचार-विमर्श एवं परामर्श करके आशीर्वाद लेते हुए ही कोई कार्य करना चाहते हैं। जो भी परामर्श कोई देता है; वह अपने देखे-सुने अनुभवों एवं अपनी नीयत के अनुसार देता है। विभिन्न लोगों की एक ही विषय अथवा स्थिति के विषय में राय व विचार पृथक्-पृथक् होते हैं।

उनका फल या परिणाम भी पृथक्-पृथक् होता है। **'मैं'** को देह और अमुक-अमुक मानकर यह परामर्श सन्देह में ही दिए व लिए जाते हैं। सबकी सोच और यह सब करना-करवाना **'अवचेतना'** में ही होता है। जो कुछ अवचेतना में देखा व सुना है, उसी आधार पर परामर्श लिए व दिए जाते हैं। हम किसी को गलत तभी समझते है और गलत निर्देशित करते हैं जब हम स्वयं को ईमानदारी से नहीं समझते। यहाँ अवचेतना-दर-अवचेतना हो जाती है। स्वयं के साथ बैठना, स्वयं को पढ़ना 'स्वाध्याय' है। सद्पुरुषों ने वह देखा और अनुभव किया होता है, जो किसी ने नहीं देखा होता। **'सद्योगी'** ही **'सहयोगी'** होता है और **'सद्गामी'** ही **'सहगामी'** हो सकता है।

मैं अमुक-अमुक देह हूँ, हमें यह देह धारणा है ही, लेकिन संत महापुरुष लीला में देह को तद्नुसार अस्थाई रूप से धारण करते हैं। देह तो देह है और मूलतः नश्वर है, क्योंकि पल-पल सतत् परिवर्तनशीलता तथा अन्त में शव एवं अन्ततः अन्तान्त में **'भस्मी'** बनना इसका शाश्वत् सद् है। देह नश्वर है, लेकिन शाश्वतत्व की जागृति एवं अनुभूति के लिए देह ही साधन है। मैं देह हूँ और मैं देह नहीं हूँ, दोनों भावों में देह होगी; क्योंकि बिना जीवित एवं जाग्रत मानव-देह के, **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होगा। लेकिन दोनों देहों के मानस में अन्तर होगा। 'मैं देह हूँ' में **'मैं'** देहमयी है, यह सन्देह है। 'मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ' इस कथन के लिए भी देह चाहिए। आत्म-तत्त्व की अनुभूतिमयी देह 'मैंमयी' है तथा **सन्देह मुक्त** है और **'मैं'** ईश्वर के प्रतिनिधि जीवात्मा का शब्द रूप में प्राकट्य है। यही आत्मामयी देह, यथार्थ है, अन्यथा देह अन्यार्थ है।

पूर्ण जड़ता से पूर्ण चेतना तक अवचेतना के विभिन्न स्तरों में तेरा हर होना प्रभु के होने से ही था, है और होगा। इसलिए तेरा प्रति एक (प्रत्येक) होना एक ही प्रभु की 'प्रति' है। इष्ट कृपा से जब यह **'सद्'** तेरी रूह में अन्तर्निहित हो जाएगा, तो तेरा हर होना 'एक' होता हुआ उसकी लीला का हेतु होगा। यह इस प्रकार का होगा, जिस प्रकार एक कलाकार को एक

नाटक या फिल्म में अपनी सृष्टि सहित हीरो की भूमिका मिली, दूसरे में किसी सेवक की। उसमें तुझे ज्ञान होगा, कि हर भूमिका का निर्वाह प्रभु की इच्छा और निर्देशन से हो रहा है। समस्त प्रबन्धन प्रभु का ही होगा। तू उसका रसास्वादन करेगा। तब तेरा देखना मात्र पंच ज्ञानेन्द्रियों का देखना नहीं होगा, बल्कि तेरे प्रत्येक होने और बनने-बनाने में पूर्ण दृष्टा भाव ही होगा। वहाँ न तू कर्ता बनेगा और न तेरी कोई लिप्तता होगी। अतः तू कर्म बन्धन से मुक्त हो जाएगा। तुझे **'कर्म का मर्म'** हृदयंगम हो जाएगा। कृपया एकाग्र करिए :—

पंच महाभूतों से निर्मित जगत में दर्शित मानव-देह स्वयं में 'प्रपंच' अथवा जादू है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के प्रदर्शन तथा उस प्रदर्शन में प्रदर्शित समस्त ईश्वरीय कलाओं के दर्शन का प्रतिनिधित्व मात्र 'यथार्थ' मानव-देह ही करती है। यह यथार्थ देह परमात्मामयी एवं आत्मामयी ही होती है। अतः **एक यथार्थ मानव-देह चार ईश्वरीय विधाओं का प्रतिनिधित्व करती है।** युगों-युगान्तरों से जो समस्त सृष्टि प्रदर्शित है, वह किसी अदृश्य कलाकार (ईश्वर) की स्वयं में अदृश्य बहुआयामी कलाओं के दर्शन को समेटे हुए है। असंख्य मानव-देहें, जलचर, थलचर, नभचर, प्राणी जगत, विभिन्न जलाशय, सागर, प्रपात, नदियाँ, झरने, कूप, तड़ाग, वनस्पतियाँ, पृथ्वी के सातों तल, नभ मण्डल तथा विभिन्न रूपों व आकारों में सब कुछ अति विशिष्ट और कलात्मक है। समस्त **'रूप'** ईश्वर निर्मित और ईश्वर प्रदत्त हैं। एकमात्र मानव ही युगों-युगान्तरों में विस्तृत सृष्टि के समस्त प्रदर्शन का रसास्वादन करते हुए प्रशंसा, आलोचना या प्रत्यालोचना कर सकता है, लेकिन इस प्रदर्शन के किसी अंश का भी निर्माण, पालन एवं संहार मानव नहीं कर सकता।

मानव को ईश्वर ने अपनी अतिविशिष्ट चेतना युक्त बुद्धि प्रदान की है ताकि वह जान सके, कि इस प्रदर्शन में सब कुछ मात्र ईश्वरीय ही है और वह समर्पित होते हुए मात्र प्रशंसा करे। मानव-देह यथार्थ (यथा अर्थ) हो अथवा अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ) हो, जगत सहित इसके रोम-रोम एवं

एक-एक पल का निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाएँ सम्पूर्णतः ईश्वर के हाथ में ही हैं। सृष्टि में सब कुछ ईश्वरीय ही जानने और मानने से हम मानव, इस प्रदर्शन का रसास्वादन कर सकते हैं। प्रभु ने समस्त '**रूप**' एक दूसरे से भिन्न बनाए हैं। मानव ने विभिन्न रूपों के भिन्न-भिन्न नाम रख दिए। मानव-देह को **'मानव'** नाम, किसी मानव ने दिया और फिर विभिन्न मानव-देहों के भिन्न-भिन्न नाम मानव ने रखे। इसी प्रकार विभिन्न प्राणियों, वनस्पतियों, फलों एवं साकार-निराकार जगत की असंख्य व अगणित विधाओं के '**नाम**' मानव ने ही रखे। आम को आम (Mango) नाम देने वाला मानव ही है। सूर्य को सूर्य, सूरज, (Sun), आफताब नाम मानव ने ही दिया। अतः प्रभु ने मात्र रूप दिया, नाम नहीं दिया। **'नाम'** मान्यता है और मानने (मान्यता) एवं मात्र पहचानने के लिए है। दुर्भाग्यवश एवं अज्ञानवश मानव ने जीव कोटि में मानव-देह के रूप को, नाम से निर्धारित किया और निर्धारित नाम वाले रूप को मान कर असंख्य निराधार मान्यताओं में जकड़ा गया।

सृष्टि में सभी रूप पल-पल परिवर्तनशील हैं और नित नूतन हैं। प्रत्येक दिन नया है इसीलिए सभी रूप भी हर रोज़ नए हैं। जीव की मानव-देह के रूप के साथ **'तद्‌रूपता'** सी में तद्‌नामता मानव ने अज्ञानवश (मैं देह हूँ) सन्देह की अनभिज्ञता में की। मानव शिशु जगत में जब जन्म लेता है, तो उसका एक रूप होता है और वह रोते हुए प्रथम श्वास **'मैं'** '**मैं'** शब्द के घोष के साथ लेता है। उसका नामकरण हम मानव, सन्देह में करते हैं, कि यह मेरा पुत्र, पुत्री, नाती आदि है, इसका नाम अमुक-अमुक होगा। रूप का नामकरण होने पर जब 'नाम-रूप का तादात्म्य हो गया, तो **'रूप'** के साथ सन्देह में हुई तद्‌रूपता नाम-रूप की तद्‌रूपता में रूपान्तरित हो गई। इस प्रकार सन्देह की पुष्टि-दर-पुष्टि होती रही। देह ईश्वर की सुकृति है, मानव ने देह की पहचान के लिए नाम दिया। धीरे-धीरे **'नाम'** ने सम्पूर्ण देह और उसके समस्त विशेषों का अधिग्रहण कर लिया। देह जब भी थी, जगत सहित थी। इस सन्देह में आत्म-तत्त्व (**मैं**) मात्र देह नहीं, बल्कि अमुक-अमुक नाम व रूप की देह का द्योतक एवं प्रतिनिधि '**जीव**' बन गया।

'मैं' चेतन जीवात्मा का द्योतक एवं प्रतिनिधि शब्द **'ब्रह्म'** होते हुए भी, देह की अवचेतना में नाम-रूप से कुण्ठित व गुण्ठित शब्द **'भ्रम'** होते हुए स्वयं में सन्देह एवं एक जटिल्य (Complex) हो गया। ईश्वर प्रदत्त रूप पल-पल बदलता रहा लेकिन **'नाम'** एक ही रहा, इसलिए हर **'बदलन' बदली की तरह इसे पुनः पुनः आच्छादित करती रही**।

किसी जन्म में विशिष्ट ईश्वर कृपा से इसके जीवन में किसी सन्त महापुरुष का पदार्पण हुआ। उसने इसे इसकी भूल से अवगत कराया और कहा, कि तू नाम-रूप में संसार में फँसा है, इससे बाहर निकलने के लिए 'कर्म के मर्म' को हृदयंगम कर, तू जीव-सृष्टि की तुच्छता से छूट जाएगा। अध्यात्म विज्ञान के परम रहस्यमय एवं मात्र श्रुतिगम्य विषय को मैं अति सद्गुरु-कृपा एवं आप समस्त अति श्रद्धालु जिज्ञासुओं की जिज्ञासावश सरल, सहज ग्राह्य एवं सुबोध शैली में अनावृत कर रहा हूँ। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

परमात्मा और जीवात्मा एक ही अदृश्य ब्रह्मात्मा की दो अभिन्न एवं अदृश्य विधाएँ हैं। जीवात्मा दृष्टा है और 'स्रष्टा' परमात्मा दृष्टा का भी दृष्टा है। मानव-देह के जगत सहित क्रियान्वयन एवं प्रदर्शन की घोषणा व प्रमाण के लिए जीवात्मा का प्रतिनिधि एवं द्योतक **'मैं'** शब्द चाहिए। मानव-देह एक जीवन्त उपकरण है। पृथ्वी के समस्त जीव-जन्तुओं, जलचर, थलचर, नभचर एवं मानवों का अपना-अपना चेतना का स्तर है। एक व्यष्टि मानव देह (व्यक्ति) समस्त समष्टि (जगत) सहित व्यष्टि का संघनित स्वरूप एवं प्रतिनिधि है। अर्थात् **व्यष्टि देह का विस्तार ही समस्त समष्टि है**। व्यष्टि सहित समष्टि का रसास्वादन करने के लिए दृष्टा जीवात्मा के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द का प्राकाटय आवश्यक है, जिसके लिए एक नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित मानव-देह का तनिक अवलम्बन मात्र पर्याप्त है। रसास्वादन के लिए केवल सम+एक=सम्यक् दृष्टि ही नहीं, सम्यक् दृष्टा भी होना चाहिए। यदि दृष्टा दृश्यमान नाम-रूप की देह में तद्रूप होकर देखेगा, तो विषम दृष्टि होगी और रसास्वादन नहीं फंसास्वादन हो जाएगा।

सम्यक् दृष्टा की दृष्टि ही समान्तर होगी अर्थात् प्रत्येक अन्तर में भी **'सम'** होगी। एक विशिष्ट अन्तर होगा, जो सदा सर्वदा वही और सम होगा। व्यष्टि के साथ जो भी होगा, हे जीवात्मा ! तेरी **'मैं'** लगने से होगा। अन्यथा होते हुए भी तेरे लिए कुछ नहीं होगा। निद्रावस्था में देखा गया स्वप्न तेरे **'स्व'** का पन अथवा स्वयं का ही विस्तार है। तू स्पष्ट देख सकता है, कि उसमें तुझसे पृथक् कोई नहीं है। स्वप्न में तू स्व नहीं **'सर्व'** होता है लेकिन उसमें भी तूने सन्देहवश एक देह को अपनी **'मैं'** माना है। इसी प्रकार जो जगत तेरे होने से है उसमें तू अपने से ही, अपने को छोटा-बड़ा एवं भिन्न मान रहा है। यहाँ तेरी '**मैं**' भी संकुचित हो जाती है और आत्मतत्व की प्रतिनिधि न रहकर एक तुच्छ जीव की द्योतक हो जाती है तथा तेरी देह का यथार्थ भी आच्छादित हो जाता है।

समय, काल, अकाल, स्थितियाँ, अवस्थाएँ, परिस्थितियाँ, अलग-अलग स्थान, पद आदि हमें अलग-अलग कर देते हैं। हमारा व्यवहार भिन्न-भिन्न लोगों के साथ समय, स्थान व स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। भिन्नता दैवीय है। यदि भिन्नता न हो, तो प्रदर्शन का रसास्वादन ही नहीं होगा। दृश्यमान देह सहित जगत में हर स्थिति सतत् परिवर्तनशील है। हम संसारी लोगों की अस्थिर स्थितियाँ गति से और गति में होती हैं। इनमें स्थित होना असम्भव है, जो स्थित्यातीत स्थिति है वह काल और अकाल दोनों से परे है और वह सामान्य है।

दृश्य, दृष्टि द्वारा देखा जाता है और समय-समय पर दृष्टिकोण द्वारा उसका जैसा भी '**लगना**' घोषित किया जाता है। दृष्टिकोण मानसिकता है। **'दृश्य'** दृश्यमान होता है लेकिन दृष्टिकोण अदृश्य रहता है। जिसका दृष्टिकोण है, वह दृष्टा (मन) भी अदृश्य होता है। दृश्यमान में देखना, सुनना, चखना, स्पर्श करना और सूँघना सब विधाएँ समाहित हैं। नेत्र, कान, जिह्वा, त्वचा और नाक दृश्यमान हैं लेकिन जिसे देख, सुन, चख, सूँघ और स्पर्श करके कैसा लगा, वह दृष्टा एवं दृष्टिकोण स्वयं में अदृश्य है। इसलिए अदृश्य ही निर्णय करेगा, कि कोई दृश्य कैसा लगा। क्योंकि दृश्य का

निर्माता, पालनकर्ता व संहारकर्ता अदृश्य है। यदि दृष्टिकोण अदृश्य दृष्टा जीवात्मा का है, तो दृश्य जैसा भी है, वह उसकी वाह-वाह ही करेगा। यदि दृष्टा नाम-रूप की देह में साकार व्यक्ति है, तो दृष्टिकोण व्यक्तिगत होगा और उसके लिए दृश्य कभी सुखी, कभी दुःखी करने वाला होगा अर्थात् व्यक्ति (Person) की सहज मुदिता एवं आनन्दमयता आच्छादित हो जाएगी। वह **'परसन न'** ही रहेगा।

शाश्वतता की ओर अग्रसर होने से पूर्व नश्वरता की अनुभूति एवं आश्वस्तता आवश्यक है। देह की नश्वरता और परिवर्तनीयता को देखते हुए उसका पुनः पुनः नित्याध्यासन अनिवार्य है। पुनः पुनः देह की नश्वरता और सतत् परिवर्तनशीलता को देखने से शाश्वत् एवं अपरिवर्तनीय आत्मतत्त्व जाग्रत होना आरम्भ हो जाता है। नश्वरता का 'तत्त्व' एवं शाश्वतता का **'तत्त्व'** एक ही है। देह की नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता को देखने वाला स्वयं में शाश्वत् एवं अपरिवर्तनीय होगा। **'मैं'** अपने हर होने में, प्रत्येक वर्तमान में देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, माया के तीनों (सम, रज, तम) गुणों आदि में बंधा रहता हूँ। इसीलिए जीवात्मा होते हुए भी युगों-युगान्तरों से जीव सृष्टि में जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या व आधारहीन काल-चक्र में भटक रहा हूँ। युगों-युगान्तरों से मोह व अज्ञान (मैं देह हूँ) की निद्रा में सुषुप्त **'मैं'** (जीव) दृश्यमान जगत में देह व देहों से सम्बन्धित विविध विधाओं की प्राप्तियों को भ्रमवश अपना विकास माने हुए आसक्त, असंतुष्ट व अतृप्त जीते जी मरता रहता हूँ।

जीवन रूपी चलते चलचित्र में सद्गुरु द्वारा निर्देशित यज्ञादि कर्म दैवीय हस्तक्षेप और रुकावट बनकर, प्रारब्धानुसार चलते चलचित्र के पीछे छिपे आनन्दमय मानस रूपी अदृश्य व अचल पर्दे की उपस्थिति के प्रति जाग्रत कर देते हैं। हम मानव सन्देहवश और इस अज्ञान की अनभिज्ञता में चलते चलचित्र में प्रारब्धवश ओतप्रोत हो चुके हैं; इसमें हस्तक्षेप करना सद्गुरु का स्वभाव है। जन्मों-जन्मान्तरों से प्रयत्न करते-करते हम ईश्वरीय **'यत्न'** को देख नहीं पाते। सद्गुरु **'यत्न'** करता-करवाता है और यत्न से

जन्मों-जन्मान्तरों से चली आ रही प्रयत्नों की धाराएँ तोड़ देता है। उसके द्वारा किया गया हस्तक्षेप बहुत सुमधुर एवं आकर्षक होता है। सद्गुरु द्वारा किए-करवाए प्रकरणों जप, तप, तीर्थ-यात्रा, भजन-कीर्तन और कुछ भी का संघनित रूप **'यजन'** है।

यजन ईश्वर का **'यत्न'** है और हम मानव प्रारब्धवशता में **'प्रयत्न'** करते हैं। माँ के गर्भ में देह का निर्माण प्रभु का **'यत्न'** है। उसमें किसी मानवीय बुद्धि का कोई भी प्रयत्न असम्भव ही है। जन्म से होश आने तक पालन-पोषण किसी के भी द्वारा प्रभु ही करते-करवाते हैं। निद्रा में देह की सुरक्षा प्रभु स्वयं करते हैं। लेकिन होश में आते ही हम सब कुछ जानते एवं मानते हुए भी प्रयत्नों में इतना लिप्त हो जाते हैं, कि हम प्रभु के **'यत्न'** को देखना और उसकी अनुभूति करना नहीं चाहते। सद्गुरु यज्ञों द्वारा प्रभु के यत्नों की अनुभूति करवाता है। सद्गुरु द्वारा किए-करवाए गए प्रकरणों द्वारा सर्व प्रथम हमारे प्रयत्नों का निरोध होता है, फिर वह ईश्वर के यत्न का दिग्दर्शन करवाता है। इस प्रकार चलचित्र के पीछे छिपे पर्दे अर्थात् आत्मस्वरूप का आभास कराता है। फिर प्रारब्ध की केस फाइल के अन्तर्गत चलते चलचित्र की निरन्तरता समाप्त हो जाती है। हाथ की रेखाएँ, जन्मपत्रियाँ परे हो जाती हैं और ग्रह-नक्षत्र अपनी चाल बदल देते हैं। इसके बाद चलने वाला चलचित्र **'विचित्र'** एवं आनन्दमय ही होता है।

अपने दृष्टा स्वरूप के साथ आत्मसात् होने पर हम चलचित्र (सब कुछ) देखते समय उसके पीछे छिपे अचल पर्दे (कुछ नहीं) की उपस्थिति के प्रति इतने सजग हो जाते हैं, कि हमें चलचित्र की प्रत्येक विधा आनन्दमयी लगती है। हमारा अभावमय आनन्द जाग्रत हो जाता है तथा चेतना बढ़ने लगती है। सद्गुरु द्वारा किया-कराया गया प्रत्येक कृत्य, अकृत्य, प्रकरण विरक्ति में ले जाता है। सुखों की चरम सीमा से वह परम सुख और आनन्द में ले जाता है। अपनी देह की गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था के विषय में चिन्तन वस्तुतः प्रभु के यत्न का दर्शन है।

मृत्यु और भस्मी ऐसा भविष्य है, जो कभी भी तेरे सम्मुख आ सकता है, लेकिन तुझमें **'आसक्ति'** है इसीलिए तू उसको टालना चाहता है। **'आसक्ति'** तुझे उसका सामना नहीं करने देती। **'विरक्ति'** तुझे सामना करा देगी और मृत्यु व भस्मी को मानसिक रूप में आत्मसात् करने से तेरी **'विरक्ति'** जाग्रत हो जाएगी। **'आसक्ति'** तेरी मृत्यु व भस्मी के सामने न होने देने की **'शक्ति'** है और विरक्ति सामने होने देने की **'शक्ति'** है। एक युद्ध में **'वीरतापूर्वक'** आगे बढ़ रहा है दूसरा **'भीरुतापूर्वक'** पीछे हट रहा है। दोनों शक्तियाँ अपनी-अपनी जगह हैं। आसक्ति-विरक्ति दोनों शक्तियाँ ईश्वरीय हैं। पहले तू अपनी **'आसक्ति'** शक्ति की अनुभूति कर। देह व देहों के लिए विभिन्न सुख-साधनों एवं पदार्थों की **'आसक्ति'** जब ईश्वर की ओर लग जाएगी तो उसी की दिशा बदल जायगी। वही **'विरक्ति'** में रूपान्तरित हो जाएगी। विरक्ति **'शक्ति'** तुझे मानव-देह व जीवन के **'अर्थ'** (भस्म) के लिए **'स्थिर'** कर देगी। सब कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ से अपनी समस्त शक्तियों को तू अपने **'कुछ नहीं'** की ओर मोड़ दे। जब तुझे तेरा **'कुछ नहीं'** लब्ध हो जाएगा, तो तुझे अनुभूति हो जाएगी, कि **'सब कुछ'** तो तेरे लिए है ही। उसके लिए तुझे प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं है।

प्रयत्न करके तू ईश्वरीय यत्न की अवज्ञा करते हुए **'लब्ध'** को ही उपलब्ध कर रहा है। **'यत्न'** काल से बँधा नहीं है। तेरे प्रयत्न काल, कर्म एवं प्रारब्ध से बँधे हैं। प्रभु ने कुछ भी तुझे व्यर्थ नहीं दिया। जीवन में जो कुछ तू पाना चाहता है **'कल्पना'** कर, कि तुझे मिल गया। कल्पना शक्ति द्वारा उसकी चरम सीमा को पा ले। दौड़-भाग कर जो-जो तू चाहता है, उसकी इतनी कल्पना कर, कि उसके आगे तेरा दिल-दिमाग जा ही न सके। भौतिक जगत के लिए स्वाध्याय करते समय अपनी चाहतों के चरम सीमा तक प्राप्त होने की स्थिति की इतनी कल्पना कर लें, कि दिल-दिमाग निरुत्तर हो जाए कि नहीं, इससे अधिक मैं नहीं चाहता। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की निधियों की प्राप्ति की कल्पना करके अनुभूति कर, कि तेरे पास वह सब

कुछ है। उस मानस का दर्शन कर। इसके बाद अपने निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'मृत्यु'** और अपने **'शव'** की भस्मी बनने की **'अवधारणा'** कर। यह कल्पना नहीं है। यही तेरा अन्ततः होना है, जो **'तय'** है। तुझे इसकी चिन्तनमय चिन्ता होनी चाहिए।

तू अवचेतना में जो देख रहा है, वह तो बना-बनाया (Recorded) चलचित्र है और तेरे प्रारब्धानुसार चल रहा है। यह सब भ्रम है। तू इसमें व्यर्थ अपने नाम के लिए भाग-दौड़ कर रहा है। पैदायशी तो तेरा नाम भी नहीं था। जब तूने नाम को स्वीकार किया अर्थात् जब तेरी **'मैं'** लगी, तो वह तेरी अवचेतना में चेतना का अति न्यून स्तर था। तब तू तुतलाता था, अब तेरी डिग्रियाँ, जन बल, धन बल, सम्बन्ध, पद-प्रतिष्ठा आदि बहुत बढ़ गए, लेकिन तेरी चेतना का स्तर नहीं बढ़ा, बल्कि उसका ह्रास हो गया। यदि तेरी चेतना का स्तर बढ़ा होता, तो तू अनुभूति कर लेता, कि तू नाम-रूप की देह नहीं है। लेकिन अवचेतना में तू अपने नाम तक इतना सीमित होता चला गया, कि तू वह नाम ही बन गया। इस प्रकार तेरी मानव चेतना का ह्रास हुआ। मानव चेतना को बढ़ाने के लिए तेरी ही देह की ये पाँच अवस्थाएँ गुफाओं के सदृश हैं। यदि तू इन अवस्थाओं का दर्शन कर ले, तो तेरी चेतना का विकास होगा। अन्यथा तेरी चेतना पशुवत् ही होगी। मानव होने के नाते यही तेरा कर्म है, जिसके लिए तुझे स्थिर होना पड़ेगा।

'मैं', एक और अनेक में **'एक'** है और **'भस्मी',** एक और अनेक में **'एक'** है। देह भाव (मैं देह हूँ) सबमें **'एक'** है। जो **'एक'** है वह सर्वोत्तम है। **'अवधारणा'** उस अवस्था की है, जो '**होगी**' ही अथवा **'थी'** ही। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था की **'कल्पना'** नहीं **'अवधारणा'** करनी है। ये अवस्थाएँ मैंने अपनी स्वयं की नहीं देखीं और ना ही देखूंगा। मैं जो, जब, जहाँ, जैसा भी होता हूँ, मेरे लिए मेरी गर्भावस्था एवं शैशवावस्था अतीत **की** होती है और अतीत **ही** होती है तथा मेरी मृतकावस्था एवं भस्मावस्था भविष्य **की** होती है और भविष्य **ही** होती है। मध्य में एक निद्रावस्था है, जो अतीत **भी** होती है और भविष्य **भी** होती है। ये पाँचों

अवस्थाएँ मेरे लिए तब होती हैं, जब **'मैं'** होता हूँ। जीवन में होश सम्भालने से लेकर होश जाने तक **'मैं'** होता हूँ और उपर्युक्त पाँचों अवस्थाओं में होते हुए भी अपना होना अनुभव नहीं कर पाता। अर्थात् मैं अपने होने की पुष्टि, प्रमाणिकता एवं सत्यापन नहीं कर सकता। यहाँ मेरा **'मैं'** जटिल्य (Complex) लुप्त हो जाता है। मेरा होना अवचेतना में है, क्योंकि होश सम्भालने से लेकर होश जाने तक मैं नाम-रूप में देह के साथ तद्रूप सा रहता हूँ।

मुझे हमेशा सतर्क रहना होगा, कि मेरा **'होना'** क्या व कैसा है? समर्थ सद्गुरु मुझे मेरी भस्मी से आत्मसात् करवा सकता है यदि मुझमें उसके प्रति अगाध श्रद्धा हो। सद् को धारण करने की शक्ति के बिना विरक्ति नहीं हो सकती। जन्मों-जन्मान्तरों से मृत्यु और भस्मी मेरा भविष्य बनी हुई है। जो मृत्यु का वरण कर चुका है और अपनी भस्मी से आत्मसात् **सा** भी हो गया है, वही विरक्त है और वही वीर आत्म-चिन्तन का अधिकारी है। आत्मतत्त्व मानव-देह के साथ तद्रूप सा ही रहेगा लेकिन **'मैं'** तत्त्व **'भस्मी'** तत्त्व के साथ आत्मसात् हो सकता है, क्योंकि दोनों अनाम व अरूप हैं। कृपया एकाग्र करिए:—

मेरे होने में तथाकथित मेरी देह की पाँच अवस्थाएँ—गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था व भस्मावस्था नहीं होतीं। इन्हीं अवस्थाओं में काल, अकाल, महाकाल, सम्पूर्ण देह, ईश्वरत्व, आत्मतत्त्व एवं सम्पूर्ण यथार्थ व अन्यार्थ दृश्यमान प्रदर्शन का रहस्य छिपा हुआ है। इन पाँचों अवस्थाओं को सब मानव जानते हैं और मानते हैं। मैंने कभी इन अवस्थाओं का दर्शन नहीं किया, लेकिन ये अवस्थाएँ हैं, हैं और हैं। जिसमें **'मैं'** कहता हूँ 'मैं देह हूँ' वह अवचेतना में चेतना की अति न्यून स्थिति है और ये पाँचों अवस्थाएँ स्वयं में जड़ हैं। इन अवस्थाओं का होना और इनकी जड़ता, **'मैं'** अवचेतना में भी जानता हूँ और मानता हूँ, लेकिन दर्शन नहीं कर सकता। जड़ता के दर्शन के लिए मेरा चेतना में होना आवश्यक है। इनके दर्शन से ही देह सद्, यथार्थ और चेतनामयी होगी।

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में 'मैं देह हूँ' यह सन्देह भी नहीं था, क्योंकि जड़ता में सन्देह भी लुप्त हो गया। मेरे होने में सन्देह उठ गया, कि मैं (अमुक-अमुक) उठ गया। इसे पिछले दिन का अपना थकना और थक कर सोने जा रहा स्वरूप याद है, लेकिन सोया हुआ इसे याद नहीं है। देह और जगत की विभिन्न घटनाऐं यहाँ तक कि रात्रि (निद्रावस्था) में देखा हुआ स्वप्न भी याद है, परन्तु जिस स्थिति (सुषुप्तावस्था) में देह और जगत लुप्त हो जाते हैं, वह स्थिति इसे याद नहीं है। जब तक सन्देह उठा हुआ है, तब तक की याद है। जितनी यादें हैं, वे सन्देह वाली देह की हैं, इस देह के साथ कोई न कोई जगत होता ही है।

देह की जो अवस्थाएँ दर्शित हैं, वे तो पशुओं को भी दर्शित हैं। निद्रावस्था में स्वप्न आता है लेकिन स्वप्न देखते हुए स्वप्न की स्वप्नवत् प्रतीति नहीं होती। निद्रा से उठ कर तू कहता है, वह स्वप्न था। स्वप्न में तो तूने नहीं कहा यह स्वप्न है। जो तुझे दर्शित था, वह तो स्वप्न नहीं था, जो हो के चला गया उसके लिए तू कह रहा है, कि वह स्वप्न था। तू अपनी सुषुप्ति का दर्शन कर। तुझे मालूम चल जाएगा, कि अब जो तू देख रहा है, वह भी स्वप्न है। तू दूसरे स्वप्न में पहले स्वप्न को स्वप्न घोषित कर रहा है। तू अपने को देह ही मान। तूने अपनी गर्भावस्था व शैशवावस्था नहीं देखी, जिसमें तेरी देह के एक-एक रोम का निर्माण और पालन हुआ। अब तू इन अवस्थाओं की धारणा करके देख। इस अवधारणा में तेरी अवचेतनामयी **'मैं'** लुप्त हो जाएगी और जटिल्य (Complex) हट जाएगा तथा तेरा होना चेतना का होना होगा। तुझे ज्ञान हो जाएगा, कि तेरा पालनहार मात्र परमात्मा ही है। वह न जाने किस-किस के द्वारा तेरे लिए क्या-क्या करवा रहा है।

गर्भावस्था, शैशवावस्था तेरी थीं, क्योंकि तेरी **हैं।** निद्रावस्था तेरी थी और तेरी होगी, क्योंकि वह तेरी **है।** मृतकावस्था और भस्मावस्था तेरी होंगी, क्योंकि वे तेरी **हैं।** तूने देखी नहीं, लेकिन अपने होने में ही तू इन अवस्थाओं का **'दर्शन'** कर सकता है। तू अपनी ये अवस्थाएँ देखने का प्रयास भी

करेगा, तो वह स्वयं में **'दर्शन'** है। इन्हें देखने के लिए तुझे समाधिस्थ होना पड़ेगा और इनके दर्शन के बाद तू देहातीत हो जाएगा। इन अवस्थाओं के दर्शन के लिए अत्यन्त सूक्ष्म एकाग्रता अपेक्षित है। अपनी सुषुप्त, मृतक एवं भस्मित देह को देखने वाली देह नहीं, बल्कि एक **'मानस'** होता है। उस स्थिति में तुझे विभिन्न अनुभूतियाँ होती हैं—जिनमें तू समस्त दैहिक विकारों से विमुक्त होता है। मानस में इस प्रकार के भावों का प्रादुर्भाव होने से परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। पहले इसकी भूमिका बनती है फिर उसका प्रभाव होता है। शनैः शनैः मानस जाग्रत, अमरत्वमय एवं शिवत्वमय होने लगता है। इसके बाद तेरी देह व जगत तेरे आनन्दमय मानस द्वारा निर्देशित व संचालित होगा।

'होने' के तत्त्व को **'हैत्व'** कहते हैं। **'हैत्व'** अर्थात् अस्तित्व, **अस्ति** अर्थात् **है** और अस्ति का तत्त्व हुआ **'हैत्व'**। अस्तित्व और हैत्व पयार्यावाची शब्द हैं। जब देह और जगत के होने का मुझे कोई ज्ञान नहीं है और यह ज्ञान एवं आभास भी नहीं है, कि मुझे देह और जगत का ज्ञान नहीं है; वह **'जड़ता'** में मेरा होना है। जब **'मैं'** देह और जगत को स्वयं से पृथक् देख रहा हूँ और उसमें मेरी कोई लिप्तता नहीं है, वह **'चेतना'** में मेरा होना है। वहाँ मेरा होना **'हैत्व'** में है। वहाँ **'मैं'** शब्द लुप्त हो जाता है। वह आनन्द की अभावमय स्थिति है। शब्द **'मैं'** तभी होता है, जब देह के साथ जुड़ जाता है। समाधि से उतरते हुए अथवा उठते हुए चेतना का स्पर्श पाकर उस अवस्था में देह का अवलम्बन लेते हुए जब **'मैं'** शब्द प्रकट होता है, तो वह देह यथार्थ होती है और वह **'मैं'** जटिल्य (Complex) न होकर विशुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द ब्रह्म होता है। वहाँ मेरे दृष्टव्य का परिदृश्य बहुत विस्तृत हो जाता है। वहाँ मेरा व्यवहार पंच ज्ञानेन्द्रियों तक सीमित नहीं रहता। वह यथार्थ देह इस योग्य होती है, कि मेरी स्वयं की गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था और यहाँ तक कि भस्मावस्था तक दिखाने में सक्षम होती है। जो अवस्थाएँ पहले मुझे मात्र अन्य में दृष्टिगत होती थीं, अब स्वयं अपनी भी अनुभूतिगम्य होने लगती हैं।

'मैं' ने किसी को गर्भ में, शैशवावस्था में, निद्रा में, मृतकावस्था में और भस्मी बने हुए तब देखा, जब **'मैं'** उठा हुआ था। **'मैं'** का होना न जड़ता में था और न चेतना में था; बल्कि जड़-चेतन की ग्रन्थि **'अवचेतना'** में था। अवचेतना में ही समस्त भिन्नताएँ, ऊँच-नीच, अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, मान-अपमान, उन्नति-अवनति, लाभ-हानि आदि हैं। वहीं हेतु से विमुखता सी हो जाती है। देह की गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था जो सब की **एक सी** हैं, ये अवस्थाएँ मानव देह का **'सद्'** हैं और भस्मावस्था जो सब की एक सी नहीं, बल्कि **एक ही** है, वह सभी मानव देहों का एकमात्र **'सद्'** है। कर्म का सुमर्म है, कि किसी मानव का कोई भी **'कर्म'** व्यक्तिगत नहीं है। छोटे से छोटे कर्म के लिए ईश्वर को विशेष सृष्टि एवं स्थिति का न केवल अनुमोदन, बल्कि प्रकाट्य भी करना होता है।

प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक पूरी सृष्टि एवं स्थिति होती है। जीव की अपनी स्वयं की शक्ति भी है। उसे जीव-सृष्टि कहा गया है। **'जीव-सृष्टि'** स्वयं में ईश-सृष्टि की प्रतिरोधी है और **'ईश-सृष्टि'** किसी भी प्रकार से तथा सब प्रकार से **'जीव-सृष्टि'** की सहयोगी ही है। प्रभु ने जीव को पूरा अवसर दिया है, कि तू जितना चाहे चल, कभी न कभी, कहीं न कहीं तो थकेगा ही। यद्यपि जीव स्वयं में असमर्थ है, लेकिन फिर भी तुच्छ व संकुचित जीव-सृष्टि महा ईश-सृष्टि का प्रतिरोध ही करती है। जीव की अपनी स्वकल्पित और रचित सृष्टि-स्थिति एवं उत्पत्ति-स्थिति का हेतु भी परमात्मा है। इसलिए कभी न कभी जब जीव थककर, चूर होकर असमर्थ, असहाय होता हुआ शरणागत हो जाता है, तो परमात्मा जीव-सृष्टि की सृष्टि-स्थिति एवं उत्पत्ति-स्थिति दोनों का विनाश कर देता है।

जीव-सृष्टि में संसारी जीव का होना स्वयं में होना न होकर रोना, धोना, खोना और ढोना है। ईश-सृष्टि में उसका होना ही वास्तव में होना है। यद्यपि दोनों **'होनों'** का हेतु व होता वही है, लेकिन जब तक जीव अपने होने की अधोगति एवं पतन को स्वयं नहीं जानता और मानता, तब तक प्रभु उसे उसी स्थिति में ही खिलाते रहते हैं। वह ईश-सृष्टि एवं प्रभु के यत्न को

पहचान नहीं पाता। जीव जब स्वयं आर्तनाद एवं अश्रुपूरित प्रार्थनाओं से प्रभु के सम्मुख होता हुआ अपनी अधोगति को स्वीकार करता है, तो प्रभु अवश्य कृपा करते हैं। **स्वयं के अज्ञान से अवगत होना 'ज्ञान' का प्रथम सोपान है** और अपने **पतन का अनुमान ऊर्ध्वगति की ओर उन्मुखता है**। जिस प्रकार जल का बहाव ढलान की ओर होता है, उसी प्रकार कृपा का बहाव श्रद्धा के होने पर होता है। जहाँ ऊँचाई होती है, वहाँ जल रुक जाता है। समतल भूमि में जल रिसता हुआ बहता है। जहाँ तेज़ सीधी ढलान होती है, वहाँ जल बहुत तेजी से बहता है। मात्र श्रद्धा ही कृपा का हेतु है, जिसके **'होता'** प्रभु ही होते हैं। अति श्रद्धा में कृपा पात्रता और पात्र नहीं देखा जाता, क्योंकि हर **'होने'** का हेतु मात्र परमात्मा ही है।

तू अपनी असमर्थता और पतन को स्वीकार कर ले और आर्तनाद कर, कि 'हे प्रभु ! आप जानते हैं, मैं अपना सब कुछ खो चुका हूँ। अब आपकी कृपा से मैं भी जान गया हूँ, कि अपने स्वरूप की पहचान खोकर भटक रहा हूँ। अपनी देह का यथार्थ एवं आपके चरणों के दर्शन का अधिकार भी खो चुका हूँ। आपकी कृपा से मैं स्वयं में आश्वस्त हो गया हूँ, कि मैं अज्ञानी हूँ। मैं देह नहीं हूँ, लेकिन मैं इस सन्देह से बाहर नहीं आ पा रहा। इस अज्ञान के ज्ञान के कारण मुझे अपने पतन एवं अधोगति की चरम सीमा का अनुमान होने लगा है। यह देह आपकी है और जगत भी आपका है तथा मैं भी आपका हूँ। मैं आपके होने से हूँ। देह है, जगत है लेकिन मैं न देह हूँ न जगत हूँ, फिर भी नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित देह के साथ मैं तद्रूप सा हो चुका हूँ। यह कैसे हुआ, क्यों हुआ मैं नहीं जानता। लेकिन आपकी कृपा से मैं जान गया हूँ, कि मेरे हर होने का हेतु आप ही हैं। मैंने सुना है, कि समस्त कारणों के कारण आप ही हैं। इसलिए मैं आपके सम्मुख प्रार्थना कर रहा हूँ आप कृपा कीजिए।

जो मैंने अपनी मान ली, वह देह यथार्थ नहीं है। **'मैं'** अपना स्वरूप खो चुका हूँ, इसीलिए मैंने अन्यार्थ (निरर्थ, अनर्थ व व्यर्थ) देह को अपना मान लिया है। आपकी कृपा से मैं यह भी जान गया हूँ, कि वह अन्यार्थ देह

आपकी **'कृति'** नहीं है, मेरी सृष्टि है। जिसने इस अन्यार्थ देह पर अधिपत्य किया है वह **'मैं सा'** हूँ और वह **'देह सी'** है। इसी जीव-सृष्टि में मैं जन्मों-जन्मान्तरों से **'मैं' 'मैं'** करता हुआ रोना, धोना, खोना में जीवन-दर-जीवन सा ढोता जा रहा हूँ। क्या अभी तक मेरी सज़ाओं की पराकाष्ठा नहीं हुई? मैं मानव होते हुए पशुओं की भाँति ढोना ढो रहा हूँ। मैं स्वयं में **'अभावमय'** होते हुए निरन्तर **'अभाव में'** असीम अधोगति में चर रहा हूँ।

मैं स्वयं में छलनी-छलनी हो चुका हूँ। मैं तुम्हारी समस्त कृपाओं का पात्र व पात्रता भी खो चुका हूँ। जो मेरे पास **'पात्र'** हैं, वह **'छलनी'** हैं। तू बार-बार कृपा डालता है, लेकिन मेरे लिए कृपा ठहरती नहीं। मैं अन्धा हो चुका हूँ। छल-छिद्रों से भरी देह रूपी छलनी के अतिरिक्त मेरे पास पात्र नहीं है। छलनी बड़ी होती जाती है, लेकिन मैं अति रिक्त ही रहता हूँ। मैं अपने अन्धान्ध रोग को आपकी कृपा से जान गया हूँ। अब मैं **'अभाव में'** अति रिक्त अर्थात् छलनी-छलनी हो चुका हूँ। मेरे इस **'होने'** का कारण भी तू है, यह मैं जान गया हूँ। युगों-युगान्तरों से तुम देख रहे हो, कि तुम मुझे कृपाओं के लिए बुलाते हो और मैं छल-छिद्रों से भरी, पूर्णतयाः आसक्त हुई अन्यार्थ देह रूपी छलनी लिए पहुँचता हूँ।

प्रभु वह अन्यार्थ देह रूपी पात्र भस्म करके विदेह देह दे देते हैं। अनाथ और सब ओर से असहाय को परमानन्द प्रदान करते हैं। समस्त कृपाओं का स्वामी बनाकर कृपा बाँटने का अधिकार भी दे देते हैं। कैवल्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य, सालोक्य किसी भी मोक्ष में प्रभु ले जाते हैं। महापुरुष **'विचरते'** हैं और तुच्छ जीव पशुओं की भाँति **'चरता'** है। जब मानव बुद्धि पूर्णतः समर्पित हो जाती है, वहाँ से **'परा बुद्धि'** का प्रादुर्भाव होता है। जब पराबुद्धि का ईश-सृष्टि द्वारा अनुमोदन हो जाता है और **'पराबुद्धि'** जब हृष्ट, पुष्ट और तुष्ट हो जाती है, वहाँ से आत्मानुभूति निःसृत होती है। जहाँ **आत्मानुभूति** स्वान्तः सुखाय शान्त हो जाती है, वहाँ से ब्रह्मानुभूति का प्रादुर्भाव होता है। ब्रह्मानुभूति कैवल्य पद है, जो स्वयं में परमानन्द है। सुख से परम सुख और आनन्द से परमानन्द,

मात्र कृपा साध्य है। परमानन्द, आनन्द को आनन्द देता है।

कभी-कभी दूर की वस्तु देखने के लिए हम टेलिस्कोप लेते हैं, तो हम उस यन्त्र का मात्र सहारा लेते हैं। इसी प्रकार दृश्य देखने एवं शब्द 'मैं' के प्रकट होने के लिए मानव देह का तनिक अवलम्बन आवश्यक है। दृश्य कैसा लगा यह मैं बताऊँगा, न कि देह रूपी टेलीस्कोप। आत्मतत्त्व का द्योतक शब्द **'मैं'** स्वयं में अदृश्य है। **'आत्मतत्त्व'** का अनावरण एवं समस्त भ्रमों के निवारण का प्रमाण यथार्थ मानव-देह स्वयं में **'सुकृति'** है। अन्यथा (अन्य अथाह) देह व देहें **'विकृति'** हैं। विकृत देह में जीव विकृतियों के वश में होता है। जीवात्मा को लब्ध मानव-देह **'सुकृति'** है और स्वयं में **'विरक्ति'** है। विरक्ति वीरता है और सौन्दर्य, ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, ख्याति पाँचों विभूतियों का मूल है। आत्मतत्त्व जाग्रत होने से **निवृत्ति** मिलती है। **'नि'** **'वृत्ति'** अर्थात् जहाँ कोई **'वृत्ति'** न हो; वही **'सुवृत्ति'** है। आत्मतत्त्व स्वयं में **सुवृत्ति** है। अपनी देह को भस्मी बनते देखना निवृत्ति है। आप देह के समस्त कार्यक्रमों से ही नहीं क्रियाकर्म से भी निवृत्त हो गए। निवृत्ति अर्पण के बाद सुवृत्ति का पदार्पण होता है, वही जीवात्मा के पद का अर्थ है। इस अर्थ का अर्थ विरक्ति है। जीवन्त भस्मी विरक्ति है। भस्मी और अग्नि की स्थिति मेरे **'कुछ नहीं'** की प्राप्ति है। इस निवृत्ति के बाद उस निवृत्ति का भी समर्पण अपेक्षित है।

मैं **'होते हुए'** अपनी देह का जो अन्ततः होगा ही, उसे ध्यान में **'होते हुए'** देखता हूँ। जब 'होते हुए' को होने के बाद 'हुआ हुआ' देख लेता हूँ, तो मैं मानस से उसे इष्ट के चरणों में समर्पित करता हूँ। मेरा स्वरूप वही होता है। मैं प्रार्थना करता हूँ, कि 'हे मेरे इष्ट ! मेरे सद्गुरु ! ये मेरा अग्नि व भस्मी स्वरूप अस्थाई है। मैं इसकी सुरक्षा नहीं कर सकता। ये घनघोर बादल छाए हुए हैं, ये वर्षा मेरी अग्नि को बुझा देगी और भस्मी को बहा कर ले जाएगी। जगत जननी माँ ! तुझे मैं अपनी समस्त अग्नि समर्पित करता हूँ। हे मेरे परमपिता देवाधिदेव महादेव ! मैं

तुम्हें अपनी सारी भस्मी समर्पित करता हूँ। तुम भस्मी ओढ़ते हो, आज मेरी भस्मी ओढ़ कर इसकी रक्षा करो। नहीं तो ये आँधी-तूफान मेरी सारी भस्मी को उड़ा कर ले जाएँगे।' तो शिव की कृपा से मुझे मेरा शाश्वत स्वरूप अदृश्य टिमटिमाती लौ (पंच-प्राण) और चुटकी भर भस्मी विरक्ति रूप में मिल जाती है। यह जीवन्त, चेतन विरक्ति मेरी **'सुवृत्ति'** अथवा जीवात्मा का स्वरूप है। उसके साथ ही **'मैं'** और **'भस्मी'** का लोप हो जाता है और आत्मतत्त्व की जागृति होती है। वहाँ मात्र आनन्द की अनुभूति रहती है। इस प्रकार निवृत्ति से भी निवृत्त होकर सुवृत्ति जाग्रत होगी। यही मानव का निजी कर्म है, जो मात्र कृपा साध्य है। यही कर्म का मर्म है।

इसके पीछे जो 'अर्थ' है वह पुरुषार्थ का प्रथम सोपान **'अर्थ'** है। यहाँ जीवात्मा-तत्त्व जाग्रत होना शुरू हो जाता है। दिव्य यथार्थ देह प्रकट होती है। जिस अर्थ से निवृत्ति (भस्मी) का समर्पण होता है, वह **'भस्मी'** जीवन-काल में देह व जगत के दृश्यमान रहते विरक्ति है; यह विरक्ति ही **धर्म** है। आत्मबोध विरक्ति है, वहाँ से **'काम'** अर्थात् भक्ति का प्रादुर्भाव होगा और जब ईश्वर का अनुराग मिलेगा, वह **'मोक्ष'** या अनुरक्ति है।

''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''

**(10 सितम्बर 2010 से 21 मार्च 2011 एवं
16 अक्टूबर से 21 दिसम्बर 2011)**

माया (एकानेक)

(भाग - १)

मानव-देह 'अदृश्य' स्रष्टा परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट एवं परम रहस्यमयी सुकृति है। एक यथार्थ मानव-देह अदृश्य दृष्टा जीवात्मा तथा स्रष्टा परमात्मा का प्रतिनिधित्व करती है और उसकी सम्पूर्ण अदृश्य कलाओं के दर्शन एवं **'दृश्यमान'** सृष्टि के प्रदर्शन को समेटे हुए है। संक्षेप में कहें तो '**मानव-देह'** स्वयं में '**दर्शन'** है। इसका दर्शनीय आयाम वह नहीं है, जो दृश्यमान है। अपनी मानव-देह की जो अवस्था उस देहधारी को दृश्यमान नहीं होती, उसकी अनुभूति स्वयं में दर्शन है। इस देह-दर्शन के लिए मानव को देह के **'सद्'** पूरी निष्ठा, ईमानदारी, श्रद्धा तथा विश्वास से ओत-प्रोत होकर जानने-मानने एवं अनुभूतिगम्य करने होंगे।

समस्त चराचर दृश्यमान जगत उस अदृश्य महाशक्ति की माया है। माया स्वयं में असद् अथवा मिथ्या नहीं है। इसका सद् है, कि यह **'सब कुछ है'** और **'है कुछ नहीं'**। मिथ्या एवं संदेहात्मक बुद्धि ने माया को मिथ्या, ठगनी, नटनी, असद्, नरक की ओर ले जाने वाली आदि विशेषण दिए हैं। **'मैं अमुक-अमुक देह हूँ'** यह सन्देह है और महादुर्भाग्यवश मुझे इस अज्ञान का भी ज्ञान नहीं है। जब **'मैं'** स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचानता हूँ, तो जीव-सृष्टि में फँस जाता हूँ और माया द्वारा घेर लिया जाता हूँ। सम्पूर्ण चराचर निराकार व साकार सृष्टि का एक स्रष्टा (परमात्मा) तथा एक दृष्टा (जीवात्मा) है। दोनों अदृश्य हैं। जहाँ तक स्रष्टा और दृष्टा का कार्यक्षेत्र है, दोनों में अदृश्य में ही द्वैत है, अन्यथा अद्वैत है। ईश्वरीय सत्ता ठोस-घन-शिला है। सच्चिदानंद परमात्मा की **छः 'विभूतियाँ'** और **पाँच 'धरोहर'** हैं।

सौन्दर्य, ज्ञान, ख्याति, शक्ति, ऐश्वर्य विभूतियाँ हैं और विभूत्यातीत विभूति **'विरक्ति'** भाव रूप में इनका मूल है। ईश्वरत्व का प्रकाट्य अपनी समस्त विभूतियों के साथ होता है। जहाँ विरक्ति होगी, वहाँ सौन्दर्य, ज्ञान, ख्याति, शक्ति, ऐश्वर्य पाँचों विभूतियों का स्वतः प्रकाट्य होगा ही। ईश्वर की पाँच '**धरोहर**' हैं—**स्वर्ण, चाँदी, बहुमूल्य रत्न, अन्न** (खाद्य पदार्थ) और **दिव्य ग्रन्थ।** युग बदलने पर कालान्तर में परमात्मा इन पाँचों को स्वयं आगे लेकर चलते हैं।

दिव्य **'बुद्धि'** उस परमात्मा ने मात्र मानव को ही दी है। चाहे कोई अनपढ़ और नितान्त निर्बुद्धि हो; वह जो, जब, जहाँ, जैसा है, जिस समय प्रभु को पूर्णतः समर्पित हो जाता है, तो उसका समस्त कार्यभार ईश्वर स्वयं वहन करते हैं। ईश्वर समर्पित होने के लिए अति तीव्र बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। जो, जब, जहाँ, जैसा भी है, ईश्वर के चरणों में समर्पित हो सकता है। एक **'खुदा'** हुआ कुआँ, स्वयं **'खुदा'** बनकर अहंकारवश स्वयं को सबसे पृथक् मानते हुए ऐंठा रहे और एक खाली गिलास समुद्र में कूद जाए, तो गिलास स्वयं में गिलास रहते हुए भी समुद्र जितने जल का अधिकारी हो जाता है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की दृश्यमान सृष्टि ईश्वर द्वारा निर्मित, पालित एवं संहारित खेल है। यह समस्त दृश्यमान प्रपंच स्वयं में निर्लिप्त, अचल व अदृश्य 'मानस' रूपी पर्दे पर ही चलता है।

'मैं देह हूँ', मेरा यह 'होना' सन्देह में है, क्योंकि **'मैं'** देह नहीं हो सकता। अज्ञान की अनभिज्ञता में **'मैं'** (जीव) ने देह को अपना **सा** मान लिया है और आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि **'मैं'** स्वयं परमपिता परमात्मा का एकमात्र मानस-पुत्र होते हुए भी, युगों-युगान्तरों से चौरासी लाख योनियों में, कोटि-कोटि जीवों की जीव-सृष्टि में भटक रहा है। इस अज्ञान में मेरी देह सहित जगत मेरा प्रतिरोधी एवं तद्‌विपरीत ही रहता है। इस असद् मान्यता से मानव-देह के यथार्थ (यथा+अर्थ) **'देहत्व', 'आत्मतत्त्व'** एवं **'ईश्वरत्व'** तीनों पर एक साथ पर्दा (आवरण) पड़ गया। मैं देह रूप में हूँ, देह का होना

ही जगत का होना है अर्थात् 'मैं स देह नहीं हूँ'। इस ज्ञान में जीव की देह व जगत इसके स्वरूप के सदान्वेषण एवं सदानुसंधान में सहयोगी होने लगता है। सद्‌गुरु का सान्निध्य मिलता है और अवचेतना में चेतना का स्तर बढ़ने लगता है। यहीं से जीव को **'संतृप्ति'** मिलने लगती है और इष्ट व सद्‌गुरु में '**संलग्नता**' हो जाती है।

'मैं' शब्द के प्रकाट्य के लिए आत्मतत्त्व को एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन चाहिए। प्रकाट्य में देह, जगत सहित होती है और **'मैं'** शब्द रूप में जो, जब, जहाँ, जैसी देह के जगत सहित होने को प्रमाणित करता है। एक ही **'मैं'** सबकी है और सबकी **'मैं'** एक है, लेकिन दृश्यमान जगत में सब पृथक्-पृथक् हैं। आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** द्वारा स्वयं आत्मतत्त्व को पकड़ना है, ताकि मुझे अपने सर्वव्यापी समष्टिगत स्वरूप की अनुभूति हो जाए। शब्द **'मैं'** के प्रकट होते ही समस्त चराचर प्राणी जगत किसी भी मानव के लिए दृश्यमान हो जाता है। उसकी एक मानव-देह उस चराचर सृष्टि का एक अंग मात्र है। **'मैं'** शब्दातीत शब्द है। **'मैं'** के विराट स्वरूप में एक देह रूप में **'मैं'** भी है, अर्थात् समष्टि में व्यष्टि भी है। सम्पूर्ण स्वरूप **'मैं'** का है और मेरे साथ प्रकट होता है। इसलिए सभी देहें एक ही **'मैं'** लगाती हैं। वह देह व्यष्टि है और उस देह (व्यष्टि) सहित समस्त जगत समष्टि है।

मानव-देह के सभी अंगों के पृथक्-पृथक् नाम और कार्य हैं, लेकिन वे सभी एक देह के हैं। देह में, देह का प्रतिनिधित्व रूप, चेहरा या मुख करता है। मानव-देह के सभी अंग यदि **'मैं'** लगाएँ और अपना-अपना परिचय दें, कि मैं नाक हूँ, मैं बायाँ कान हूँ, मैं पैर हूँ, मैं हाथ हूँ, मैं आँख हूँ, मैं जीभ हूँ आदि-आदि, तो सब मिलकर 'मैं देह हूँ' कहेंगे। एक की **'मैं'**, सबकी है, सबकी **'मैं'** एक है और सब एक देह के अंग हैं। जो सम्पूर्ण देह की है, वही **'मैं'** नाक, कान, जीभ, हाथ, पैर, बाल आदि सबकी एक है। **'मैं'** सबकी एक इसलिए है, क्योंकि सब एक ही हैं और **'सब'** एक देह के हैं। **'एक'** मस्तिष्क को चुनना है, कि किसका प्रयोग कहाँ करें। यदि आँख कहे, कि मैं जीभ को

खाद्य पदार्थ क्यों दिखाऊँ, स्वाद तो ये लेती है। पैर कहें कि मैं क्यों चलूँ, मुझे क्या मिलना है। इस प्रकार सब अस्त-व्यस्त हो जाएगा। एक जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेने पर **'मैं'** शब्द के प्रकट होते ही देह, जगत सहित प्रकट हुई। यहाँ **'मैं'** एक देह के साथ तद्‌रूपता सी में नाम-रूप में उलझ गई क्योंकि वह देह पहले ही एक नाम से तद्‌नाम हो चुकी थी। फिर भी सबने वही **'मैं'** लगाई, लेकिन देह के साथ प्रकट जगत **'नाम'** के कारण पृथक् हो गया। **'रूप'** नाम से कुण्ठित व गुण्ठित होने के कारण वह **'नाम'** देह का स्वामी बन गया। **'नाम'** स्वयं में अरूप था, अरूप ने **'रूप'** को आच्छादित कर दिया। **'नाम'** अतिरिक्त होते हुए भी, वह देह उस नाम से ही जानी जाने लगी और अपनी ही समष्टि से कट कर, स्वयं से ही वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा में उलझ कर अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) भटकने लगी।

'एक' के साथ ही **'अनेक'** होते हैं और एकान्त स्वयं में अनेकान्त भी है। **'एक'** और **'अनेक'** (अन्य+एक) में **'एक'** समान तत्त्व है। इसमें जितने भी अन्य हैं, उन्हें अनेक अर्थात् अन्य+एक ही कहा है। **'एक'** का जो अन्य है, वह **'अनेक'** है। अनेक में जो अन्य है, उन्हें अन्य अथवा पृथक् समझना एवं मानना बहुत बड़ी भ्रान्ति है। मुझसे अतिरिक्त जो अन्य हैं, वे **'मैं'** ही हूँ। जब मानव ने एक **व्यक्ति** अथवा **व्यक्ति रूप** में अपना होना घोषित किया, तो उसके साथ अनेक होते ही हैं। न केवल मानव बल्कि जलचर, थलचर, नभचर, फल, फूल, वनस्पतियाँ, ग्रह, नक्षत्र, भूत, भविष्य, वर्तमान तथा निराकार व साकार जगत की प्रकट व अप्रकट असंख्य विधाएँ उस **'एक'** के **होने से** होती हैं। हमारी संस्कृति का मूल **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** है। सब सुखी होंगे, तो मैं सुखी हूँगा। क्योंकि सब मेरे होने में एवं होने से होते हैं। यह आध्यात्मिक सद् है, जिसे आत्मसात् करना आध्यात्मिक जगत में प्रविष्टि के लिए अत्यावश्यक है।

इस बहुत महत्त्वपूर्ण दैवीय **सद्** को अज्ञानवश जाने-अनजाने उपेक्षित करके हम मानव अकेले व्यर्थ धक्के खा रहे हैं। ईश्वर ने मुझ **'एक'** को

अपनी समस्त संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट मानव-देह दी है। रहने के लिए कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि आदि असंख्य विधाएँ दी हैं। लेकिन यहाँ रहना बहुत अस्थाई और बहुत थोड़े समय के लिए है। जिसे हम तथाकथित परिवार कहते हैं, वह भी अस्थाई है। समय-समय पर परिवार बदलते रहते हैं। देह की अवस्थाएँ एवं स्वरूप बदलते रहते हैं और देह रूप में जीव भी बदलता रहता है। होश सम्भालने से होश जाने तक हर क्षण बदलता रहता है। अक्सर बदलाव कुछ समय बाद भूल जाते हैं तथा कुछ बदलाव याद भी रहते हैं। अन्ततः हम मर जाते हैं। मानव देह रूप में जितने भी समय मेरा यहाँ रहना है, उसका दैवीय **'अर्थ'** नितान्त पृथक् है। लेकिन होश सम्भालते ही हमने अपने-अपने अर्थ लगाने प्रारम्भ कर दिए। परमात्मा ने अपने जिस **'अर्थ'** के लिए यह मानव-देह हमें दी है, यदि उस अर्थ का सद्गुरु कृपा से ज्ञान हो जाए और हम उसके लिए लालायित हो जाएँ, तो हमारा यहाँ रहना चाहे जितने भी लम्बे समय के लिए हो, वह कम ही है। महादुर्भाग्यवश, अज्ञानवश जीव उस **'अर्थ'** को जानते-बूझते हुए भी उपेक्षित करता रहता है। मानव-देह जो प्रारब्धवश मिली है, वह प्रारब्ध भुगतने के लिए नहीं, प्रारब्ध काटने के लिए मिली है। प्रारब्ध एक प्रकार से हमारी केस फाइल है। जिसमें विशिष्ट माता-पिता के अंश से, विशिष्ट ग्रह-नक्षत्र में, विशिष्ट धर्म, विशिष्ट देश, काल और मायिक योनियों के अनुसार हमारा गर्भाधान व जन्म होने से लेकर मृत्योपरान्त भस्मी बनने तक का सम्पूर्ण कार्यक्रम समय-समय पर होने वाली लब्धियों, करने, पाने, खोने एवं होने सहित अंकित रहता है। तद्नुसार सबके सम्मुख विभिन्न दृश्य आते रहते हैं।

आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द का **'अमुक नाम'** से कुण्ठित एवं गुण्ठित रूप (मानव देह) के साथ तद्रूप हुई स्थिति जटिल्य (Complex) का होना ही मेरा होना है। जिसमें **'मैं'** प्रारब्ध, काल एवं कर्म तीनों **'वशों'** से वशीभूत हुआ जन्मता-मरता रहता हूँ। देह की जिन अवस्थाओं में यह जटिल्य (Complex) नहीं होता, वे अवस्थाएँ मेरी धारणा (Concept) हैं।

इसलिए ये (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) अवस्थाएँ मेरे लिए भूत अथवा भविष्य की ही रहती हैं। साथ ही मेरे होने में ही यह अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें मैं अपनी देह के साथ प्रकट अनेक (जगत) में प्रत्यक्ष देख सकता हूँ। यदि अपनी इन अवस्थाओं का **'मैं'** ध्यान में ध्यान (जो मात्र सद्‌गुरु कृपा एवं ईश्वर भक्ति से ही सम्भव है) द्वारा अवलोकन एवं दर्शन (जो दर्शित नहीं है) करूँ, तो मुझे ईश्वर के महास्रष्टा होने का (गर्भावस्था -दर्शन द्वारा), प्रभु के महापालन कर्ता होने का (शैशवावस्था-दर्शन द्वारा), मेरे एक आत्मतत्त्व का **'मैं'** शब्द रूप में एक व अनेक में व्याप्त होने का (स्वप्न-दर्शन द्वारा), ईश्वर ही सब कुछ करने-करवाने वाला है (निद्रा-दर्शन द्वारा), मेरे न एक और न अनेक होने का (मृत्यु-दर्शन द्वारा) तथा अन्ततः सब में, सब कुछ होने का (भस्मी-दर्शन द्वारा) ज्ञान हो जाएगा। साथ ही इन विभिन्न दर्शनों में मुझे अपनी विशुद्ध आत्मामयी **'मैं'** का ज्ञान व अनुभूति हो जाएगी। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

जब तू सोया हुआ होता है, तो **'एक'** भी नहीं होता, इसलिए तेरे लिए अनेक नहीं होते। इस स्थिति का तुझे ज्ञान व अनुभूति नहीं होती, अतः तू जड़ता में होता है और **'मैं'** शब्द लुप्त होता है। तेरे **एक** के होने से ही **अनेक** हैं, अनेक के होने से तू एक नहीं है। जब **'मैं'** शब्द प्रकट होता है, उसी समय तेरे लिए, तेरे साथ जगत होता है। समय-समय पर जैसा तू होता है, तेरा जगत भी समय-समय पर वैसा होता है। हर दिन नित नूतन है। कोई दो दिन एक जैसे नहीं होते और किन्हीं दो दिनों में तेरी दो देह एक जैसी नहीं होतीं। एक ही दिन प्रत्येक (प्रति+एक) के लिए पृथक्-पृथक् होता है और प्रत्येक दिन प्रत्येक के लिए पृथक्-पृथक् होता है तथा तेरे होने से होता है। अतः समय-समय पर जैसा तू होता है, तेरे लिए तेरी देह सहित जगत वैसा ही होता है अथवा तुझे वैसा ही लगता है। एक ही व्यक्ति एक दिन तुझे बहुत अच्छा लगता है, दूसरे दिन तू उसके सामने आना नहीं चाहता। एक ही फल, फूल, स्वाद, रंग, संगीत, नृत्य, गायन अथवा कोई भी विधा

भिन्न-भिन्न समय, स्थान व स्थिति में तुझे भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित अथवा विक्षिप्त करती है। क्योंकि तेरी देह समय-समय पर भिन्न होती है और तूने अज्ञानवश स्वयं को देह के साथ तद्‌रूप सा मान लिया है।

'मैं' तो एक ही है और स्वयं आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द ब्रह्म है। जिस प्रकार तू (परमात्मा) सच्चिदानंद, परम स्थिर और अपरिवर्तनीय तत्त्व है, उसी प्रकार **'मैं'** (जीवात्मा) भी स्थिर, अपरिवर्तनीय, चेतनानन्दमय सहज सुखराशि है। प्रश्न उठता है, कि मेरा होना समय-समय पर भिन्न क्यों होता है? क्योंकि मेरा होना **'मैं'** जटिल्य में प्रतिबद्ध होना है। अज्ञानवश जीवकोटि में **'अलग से'** एवं **'अलग द्वारा'** रखे गए एक **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित पल-पल परिवर्तनशील मानव-देह के साथ **'मैं'** स्वयं में **'एक'** स्थित, स्थिर व अपरिवर्तनीय होते हुए भी तद्‌रूप **सा** हो गया हूँ। हर व्यक्ति अनाम पैदा होता है और नाम बाद में रखा जाता है। यद्यपि **'मैं'** तत्त्व स्वयं में अनाम व अरूप है तदपि मुझ **एक** का **'अनेकों'** में से किसी **'एक'** ने अनेकानेक नामों में से एक नाम रख दिया। शैशवावस्था में जब मुझे अपने नाम का ज्ञान नहीं था और स्वयं अपने होने का आभास भी नहीं था, उस वक्त **'मैं'** अनेक के होने से **'एक'** था। लेकिन **'मैं'** अपना होना घोषित नहीं कर सकता था। अब बुद्धि की परिपक्व अवस्था में अपनी बुद्धि से ही **'मैं'** जान जाता हूँ, कि गर्भ में मेरी पूर्ण देह का निर्माण और शैशवावस्था में पालन मेरी बुद्धि से नहीं हुआ। सब कुछ ईश्वर द्वारा किया-करवाया गया। मेरा रूप (देह) जो स्वयं में अनाम था, शनैः शनैः उस नाम के साथ कुण्ठित एवं गुण्ठित हो गया। दैहिक विकास की अवस्था में रूप (देह) ने **'नाम'** को स्वीकार कर लिया और उस स्वीकृति की प्रामाणिकता, पुष्टि एवं सत्यापन **'मैं'** द्वारा हुआ। जो अतिरिक्त नाम, किसी अतिरिक्त द्वारा मात्र पहचान एवं सम्बोधन के लिए रखा गया था, देह पर हावी हो गया और **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि न रह कर, स्वयं में एक जटिल्य (Complex) बन गया। इस जटिल्य (Complex) में **'मैं',** मानव-देह, नाम और होना चारों अंग परस्पर गुथ-मुथ गए।

दृष्टा जीवात्मा के प्रतिनिधि का द्योतक **'मैं'** तत्त्व तो अनादि से अनन्त तक, एक ही **नित्य, शाश्वत्, स्थिर एवं अपरिवर्तनीय** है और मानव देह नित नूतन एवं सतत् परिवर्तनशील है। यह देह उपहार नहीं है, प्रभु ने कृपावश मुझे अपनी समस्त संरचनाओं में उत्कृष्टतम सुकृति दी है। मैंने जब नाम की स्वीकृति दी, तो **'मैं'** नित्य व चेतन तत्त्व न रहकर नाम रूप की अवचेतना में पल-पल परिवर्तनशील जीव का प्रतिनिधि एवं द्योतक, एक जटिल्य (Complex) बन गया। देह के जन्म,शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में **'मैं'** शब्द लुप्त होता है, इसलिए मेरे लिए जगत नहीं होता। जैसा **'मैं'** हूँ मेरे लिए समय-समय पर मेरा अनेक (जगत) वैसा ही होता है। जब **'मैं'** देह अथवा देह रूप में अपना होना प्रमाणित करता हूँ, तो अवचेतना में होता हूँ। जब **'मैं'** अपने साथ प्रकट, अनेक में प्रत्यक्ष दर्शित परन्तु अपनी देह की अदृश्य अवस्थाओं का, अपने होने में दर्शन करता हूँ, तो मेरे लिए तथाकथित जड़ ये अवस्थाएँ ही **समाधि स्थिति** में ले जाते हुए मेरी चेतना की जागृति का हेतु बनती हैं। निद्रा-दर्शन जागृति, मृत्यु-दर्शन अमरत्व एवं भस्मी-दर्शन स्वयं में शिवत्व है। कृपया एकाग्र करिए :—

किसी भी समय का कोई अतीत और किसी का कोई भी सम्भावित भविष्य मेरे होने से होता है। जैसा मेरा होना है, वैसा ही अतीत में मेरे लिए हुआ होता है। इसलिए अतीत की एक ही घटना का अलग-अलग लोगों का, अलग-अलग समय पर विश्लेषण पृथक्-पृथक् होता है। यह सब भी मेरे एक के 'होने' में होता है। जिसे हम अतीत या भविष्य कहते हैं, वह सब कुछ मेरे होने से है। अगले क्षण जैसा मेरा **'होना'** होगा, मेरा अतीत व भविष्य तद्नुसार होगा। यह मेरा **'होना'** नाम द्वारा कुण्ठित व गुण्ठित रूप का **'मैं'** जटिल्य (Complex) में होना है। इस जटिल्य (Complex) में ही मेरी गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था मेरी धारणा (Concepts) है।

अपने होने में ही तुझे ज्ञान होता है, कि गर्भावस्था, जन्म, शैशव, मूर्च्छा,

निद्रा, मृत्यु, भस्मी जगत में अन्य में तुझे दर्शित हुईं, लेकिन स्वयं की नहीं हुईं। अपने **'होने'** में तुझे ज्ञान होता है, कि तेरा जन्म हुआ था, लेकिन तूने स्वयं का नहीं देखा। तेरी मृत्यु होगी, लेकिन तू नहीं देख पाएगा। तू सोता है, लेकिन अपनी स्वयं की निद्रा नहीं देख पाता। स्वयं में ये पाँचों अवस्थाएँ जड़ हैं। लेकिन जब तू इन अवस्थाओं का चिन्तन-मनन करते हुए अपनी स्वयं की इन अवस्थाओं की अनुभूति करेगा, तो ये जड़ अवस्थाएँ ही तेरी चेतना की जागृति का हेतु बन जाएँगी। यह दर्शन का दर्शन है। इनमें **'भस्मावस्था'** महादर्शन है और सद्‌गुरु की असीम व अविरल कृपा एवं उसके प्रति अगाध व अटूट श्रद्धा भक्ति के बिना असम्भव है।

एक ही दृश्य को एक ही समय पर कुछ लोग देखते हैं, तो उस दृश्य के विषय में सबकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। भिन्न-भिन्न लोगों को एक ही दृश्य भिन्न-भिन्न **लगा**। इसका स्पष्ट अर्थ है, सबके भीतर कोई ऐसी कार्य प्रणाली है, जो किसी दृश्य को भिन्न-भिन्न रूप से नकारात्मक, सकारात्मक, आदि-आदि विभिन्न रूपों से प्रभावित करती है। यह दृष्टि नहीं, सबका भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण है। कोई दृश्य हमारे हाथ में नहीं है, प्रभु जिस समय जो भी दिखा दें। हर दृश्य ईश्वर का **'सद्'** है अर्थात् ईश्वर के तीनों (सद्, चेतन और आनन्द) अंगों में से एक है। जिस दृश्य में हमारा कोई अहं नहीं है और स्वतः भाव से प्रकट हुआ है, वह हर दृश्य **'सद्'** है। दृश्य के अवलोकन में सभी ज्ञानेन्द्रियाँ सम्मिलित रहती हैं। मात्र नेत्रों से देखना ही नहीं, कानों से सुनना, त्वचा से छूना, नाक से सूँघना और जिह्वा से चखना आदि भी सम्मिलित है। आम बोल-चाल में हम सब एक दूसरे से कहते-सुनते देखे जाते हैं, कि ज़रा सुन कर तो देखो फिर बताना कैसा लगा। इसी प्रकार छू कर देखना, चख कर देखना और सूँघ कर देखना और तत्पश्चात् कैसा लगा के रूप में दृष्टा प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

'मैं' जो कुछ भी अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगृहीत करता हूँ, वह दृश्य है। एक गीत, एक चित्र, एक सुगन्ध, एक पदार्थ, एक व्यंजन किसी समय मन को बहुत भाता है, किसी समय बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। कान,

आँख, नाक, त्वचा एवं जिह्वा वही है और गीत, चित्र, सुगन्ध, पदार्थ, व्यंजन भी वही हैं, तो यह अलग-अलग लगने का कारण क्या है? इसका कारण तेरी अपनी मानसिकता है जो समय समय पर तुझे भिन्न कर देती है। इसलिए दृश्य अलग-अलग **लगता** है और तुझे **लगता** (चुभता) है। जो तेरे लगते हैं, वे तुझसे लगते हैं। जो जो नहीं लगते, वे भी कभी न कभी अवश्य लगेंगे। जो तुझे जैसा लगता है वह अलग-अलग तरीके से लगता है। यह लगता इसलिए है, क्योंकि तेरा लगता है। **तेरी देह व जगत में लिप्तता है।** इसलिए तेरी अपनी देह तुझे कष्ट देने लगती है, ऐसा क्यों है ? इस विषय में तुझे जिज्ञासा होनी चाहिए। तुझे मानव देह मिली है, तुझे जीवन के नग्न सत्यों से आँखें मूँद कर जीवन यापन करने का अधिकार नहीं है। तुझे सद्‌गुरु का शरणागत होना होगा। मेरा अध्यात्म साधारण जीवन की साधारण स्थितियों से लिया गया है। अध्यात्म के अति रहस्यात्मक एवं परम गोपनीय, चमत्कारिक विषय को मैं सिनेमागृह में चलते चलचित्र एवं श्वेत, अचल पर्दे के दृष्टान्त द्वारा सरलीकृत करते हुए आप समस्त अति जिज्ञासुओं के सम्मुख वर्णन कर चुका हूँ।

सद्‌गुरु मध्यान्तर की तरह मेरे जीवन रूपी चलचित्र को हठपूर्वक रोक देता है और मुझे मेरे आनन्दमय एवं अभावमय अदृश्य मानस रूपी पर्दे का दर्शन करा देता है। वह मेरी उन समस्त अवस्थाओं के विषय में सजग करता है, जिनमें से मैं गुज़र चुका हूँ, लेकिन उनकी अनुभूति मैं जड़तावश नहीं कर पाया। सफेद पर्दा मेरा अभावमय, आनन्दमय मानस है, जिस पर मेरा सर्व रूप (एक के साथ अनेक) चलचित्र चलता है। इस मानस दर्शन के बाद मुझे जीवन रूपी चलचित्र से विरक्ति हो जाती है और जो चलचित्र मेरे लिए चलता है, वह विचित्र एवं आनन्दमय ही होता है। सभी अक्षुण्ण क्षणों का मैं रसास्वादन ही करता हूँ। युगों-युगान्तरों में विस्तृत समस्त मायिक प्रदर्शन एक नर (जीवात्मा) के लिए नारायण (परमात्मा) द्वारा रचित है।

तू दृष्टा होते हुए भी दृष्टा नहीं रहा। तू मात्र देखता नहीं है, बल्कि पूरी तरह से चलचित्र में लिप्त एवं आसक्त है। हे जीवात्मा ! तू भटका हुआ जीव

है। अर्जुन को भी महाभारत के युद्ध में यही भ्रम हो गया था, कि मेरे अपने सम्बन्धी विपक्ष में खड़े हैं ,मैं उन्हें नहीं मारूँगा, इसलिए मैं युद्ध नहीं करूँगा। भगवान श्री कृष्ण ने वहीं रणभूमि में गीतोपदेश के दौरान अपने विराट स्वरूप के दर्शन द्वारा अर्जुन का भ्रम दूर किया, कि तू न मारने वाला है, न मरने वाला है। युद्ध का पूरा परिदृश्य पहले से बना-बनाया (Recorded) है। तू मारने का निमित्त है, तो वे सब मरने के निमित्त हैं। भगवान **'श्रीकृष्ण',** नर अर्जुन (**'मैं'** जीवात्मा) और नारायण कृष्ण (**'तू'** परमात्मा) का संगम है। अर्जुन मात्र **'नर'** है। श्रीकृष्ण का **'नर'** रूप में प्रकाट्य **'अर्जुन'** सन्देह में है। गीतोपदेश द्वारा प्रभु ने उसका सन्देह दूर कर दिया। इसीलिए अर्जुन ने अन्ततः आविर्भूत होते हुए कहा—**'गत सन्देह', 'स्मृतिर्लब्ध', 'नष्टो मोहः', 'स्थितोऽस्मि'।**

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मूर्च्छावस्था एवं मृतकावस्था प्रपंच में ही हैं। अपनी स्वयं की इन अवस्थाओं का ध्यान चिन्तन करने में मानस में बहुत से रूपान्तरण होंगे, लेकिन आप स्वयं में प्रपंच से परे नहीं होंगे क्योंकि ये अवस्थाएँ पंच महाभूतों में ही हैं। आपकी देह की मात्र एक भस्मावस्था ही ऐसी है, जो सबकी एक **सी** ही नहीं बल्कि **एक ही** है और प्रपंच (पंच-महाभूतों) से रहित है। भस्मी तब प्रकट होती है, जब आपकी देह पंच-महाभूतों में पूर्णतया विलय हो चुकी होती है। **'भसम'** देह का वह पदार्थ है, जो सबका एक ही था, एक ही है और एक ही रहेगा। यही **'भसम'** अन्ततः आपके रहने व होने का **'सद्'** है। भस्मी दर्शन के लिए अपनी देह को मानस में ध्यान एवं एकाग्रता द्वारा आपको पंच महाभूतों में पूर्णतः विलय होते देखना होगा। विशुद्ध अध्यात्म एवं आत्म ज्ञान स्वयं में इस प्रपंच रहित स्थिति से ही प्रकट होता है। वहाँ मानस जन्म, मृत्यु के समस्त प्रपंच से उपराम हो जाता है क्योंकि मृत्योपरान्त भस्मी प्रकट होती है और भस्मोपरान्त कुछ नहीं है। यह मानस स्वयं में प्रपंच रहित होगा।

'भस्मी-दर्शन' यदि चिता-दर्शन के बाद होता है, तो वहाँ देह नहीं

होगी। चिता में देह होगी, लेकिन देखते-देखते विलय हो जाएगी। भस्मी, बिना चिता के प्रकट नहीं होती और किसी की चिता उसकी मृत्यु हुए बिना नहीं बनाई जाती। चिता मृतक (शव) के लिए बनाई जाती है और मृतक देह के पंच-महाभूतों में पूर्णतः विलय होकर अदृश्य हो जाने पर पूर्ण भस्मी का प्राकट्य होता है। तब मात्र अग्नि और भस्मी रह जाती है। उस भस्मी स्थिति की अनुभूति में देह नहीं रहती। जहाँ देह नहीं रहती, वहाँ कोई धर्म, कर्म, कर्तव्य, लिंग, सम्बन्ध आदि भी नहीं रहते। पंच-महाभूत और पंच-महाभूतों से सम्बन्धित कुछ भी वहाँ नहीं रहता। निद्रा और मृत्यु में देह व जगत साथ रहता है, लेकिन **'भस्मी दर्शन'** में देह व जगत का नितान्त अभाव हो जाता है। तब तुझे ज्ञान होगा, कि तू पंच-तत्त्वों से पृथक् अदृश्य दृष्टा जीवात्मा है। स्वयं प्रपंच से मुक्त होकर ही तू प्रपंच का रसास्वादन कर सकता है।

अपने अज्ञान 'मैं देह हूँ' (सन्देह) का ज्ञान होने पर जीव आर्तनाद करता है, कि 'हे प्रभु ! आपने अपनी वैविध्यपूर्ण बहुआयामी कलाओं का यह असंख्यामी खेल क्या मुझ एक को फँसाने के लिए रचा है? यह सम्पूर्ण मायिक सृष्टि आपका भृकुटि विलास मात्र है। निर्माण, पालन व संहार सब कुछ आपकी इच्छा से होता है। सृष्टि का एक अणु, कण, पत्ता भी आपकी इच्छा के बिना हिल नहीं सकता। नित नूतन ये करोड़ों महाब्रह्माण्ड क्या तूने मुझ 'एक' को फँसाने के लिए रचे हैं?'

हे जीव ! तू पदार्थों में फँस गया है। इसलिए परमात्मा तेरे सम्मुख विविध अनेकानेक पदार्थ रखता है, कि तू कभी तो अपना पदार्थ चुन ले। वस्तुतः वास्तविक वस्तु इस समस्त प्रदर्शन में तेरे लिए एक ही है। वह है–**'तेरी देह की भस्मी'।** तू अपनी देह के उस पदार्थ से आत्मसात् होने का लक्ष्य रख। तुझे अपनी देह का अर्थ एवं अपने विशुद्ध पद का अर्थ लब्ध हो जाएगा।

'महत्त्व' का अर्थ महातत्त्व है। महातत्व, **'मैं'** तत्त्व है। देह के नाम-रूप से जुड़कर **'मैं'** भी संकुचित, कुण्ठित, गुण्ठित हो गया।

मानव-देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूपता सी में देह का अर्थ और मेरा ('मैं' का) महत्त्व दोनों आच्छादित हो गए। इस तत्त्व का महत्त्व **'मैं'** को देह की **'भस्मी'** से आत्मसात् करने के बाद पता चलेगा। **'मैं'** और **'भस्मी'** दोनों मेरे हैं। **'मैं'** सर्वव्यापी महातत्त्व है। इसी प्रकार **'भस्मी'** सर्वव्यापी तत्त्व है और मेरी देह का निश्चित, दर्शित, परिलक्षित भविष्य है। **'भस्मी'** सबकी एक ही है और भस्मी नाम-रूप से परे है। जब जीते जी तू अपनी 'मैं' को अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् करेगा, तो तेरी दृष्टि सम्राट-भिखारी, ऊँचे-नीचे, मान-अपमान में समान हो जाएगी। अतः तेरे मानस का विस्तार असीम हो जाएगा, यही वास्तविक विकास है। तेरा सब कुछ सबके लिए और सबका सब कुछ तेरे लिए होगा अर्थात् तेरा अधिकार क्षेत्र अति विस्तृत हो जाएगा। तुझे अपने सर्वव्यापी **एकानेक** स्वरूप की अनुभूति हो जाएगी।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(8 नवम्बर से 20 नवम्बर 2011 तथा
1 जनवरी से 5 जनवरी 2012)

माया (चिन्तन)

(भाग – 10)

चिन्तन-मनन, आत्मानुभूति एवं आत्मज्ञान का शुभारम्भ है और वस्तुतः आत्म-चिन्तन एवं आत्म-मनन के लिए ही होता है। **'चिन्तन'** दैवीय ही होता है। जब जीव की चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं, तभी चिन्तन का शुभारम्भ होता है। जीव के फँसने का भी रहस्य है और जन्मों-जन्मान्तरों की इस फँसावट से निकलना भी स्वयं में परम रहस्यात्मक व चमत्कारिक है। अध्यात्म देहातीत विषय है, इसकी पकड़ के लिए अति सूक्ष्म मेधा शक्ति अपेक्षित है। तीव्रतम बुद्धि (Finest intellect) भी देह से, देह में, देह तक है। तीव्रतम (Finest) से भी आगे (Fine Next) से अध्यात्म-चिन्तन में प्रविष्टि मिलती है और सारे जुर्मानें (Fine) समाप्त हो जाते हैं (When you go beyond finest intellect, then you go in fine next and that is fine free zone.) जहाँ प्रारब्ध, काल और कर्म के बन्धन छूटने शुरू हो जाते हैं, वहाँ से चिन्तन एवं मनन का शुभारम्भ होता है।

आध्यात्मिक जीवन के लिए अति सकारात्मकता अपेक्षित है। चिन्ता व चिन्तन एक साथ एक मंच पर नहीं रह सकते। चिन्ताएँ प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश भौतिक जगत की होती हैं। **'चिन्ता'** जीवित मानव को जलाती है और **'चिता'** मृतक को जलाती है। **'चिता'** और **'चिन्ता'** का उन्मूलन होते ही स्वतः **'चिन्तन'** शुरू हो जाता है। जहाँ चिन्तन-मनन नहीं होगा, वहाँ चिन्ता होगी ही। चाहत व चिन्ता का दामन-चोली का साथ है। चिन्ता अक्सर भविष्य की होती है। भविष्य के लिए हम जहाँ स्वयं कोई योजना

बनाने लगते हैं, वहाँ फँस जाते हैं। हमारी अपनी सम्भावनाओं में आने वाली काल्पनिक रुकावटें हमारी चिन्ताओं का कारण होती हैं। चिन्ता में भविष्य के भय के साथ अतीत का शोक जुड़ा हुआ होता है। शोक एवं चिन्ताग्रस्त व्यक्ति आध्यात्मिक जगत में प्रविष्टि नहीं पा सकता। **जब हम शोक व चिन्ता का विश्लेषण करते हैं, तब वही चिन्तन बन जाता है।**

भविष्य किसी ने देखा नहीं, वह तेरी कल्पना ही है, जब तू देखेगा वह भविष्य नहीं, वर्तमान होगा। तेरा वह भविष्य वर्तमान होकर अतीत हो जाएगा। चिन्ता का कारण दूर हो जाएगा, लेकिन **'चिन्ता'** बनी रहेगी और दूसरे आगे आने वाले भविष्य के लिए कोई न कोई चिन्ता का कारण उत्पन्न कर देगी। **चिन्ता स्वयं में मानस की एक वृत्ति है, जो अदृश्य है और कारण दृश्यमान होता है।** चिन्ता का दृश्यमान कारण दूर हो गया, लेकिन तेरे अदृश्य मानस से चिन्ता का उन्मूलन कैसे होगा? नेपथ्य में छिपी चिन्ता दूसरा कारण खोज लेगी। कारण दूर होने पर अस्थायी रूप से तुझे चिन्ता मिटी हुई नज़र आती है, लेकिन चिन्ता का कारण भी भ्रम था और चिन्ता का दूर होना भी भ्रम है। **शोक और चिन्ता स्वयं में दूर होंगे, तो उनके कारण होंगे ही नहीं।** चिन्ता और शोक के कारण इसलिए बदलते रहते हैं, क्योंकि तू कारणों में उलझा हुआ चिन्ता और शोक को देख नहीं पाता। तुझे चिन्तन करना होगा। तुझे चिन्तन द्वारा अदृश्य मानस में अदृश्य रूप से छिपी **'चिन्ता'** का समूल विनाश करना होगा। फिर कोई भी **'कारण'** चिन्ता का कारण नहीं बनेगा। हर कारण चिन्तन का **हेतु** बनेगा, जो तुझे तेरे **'होता'** (परमात्मा) से जोड़े रखेगा।

परमात्मा (स्रष्टा) **'विधाता'** है, उसकी अपनी **'विधि'** है, जिसके तहत वह सम्पूर्ण सृष्टि तीन विधाओं (निर्माण, पालन एवं संहार) में समय-समय पर प्रकट करता है। उसके विधानों एवं नियमों को अज्ञान व मोहवश तोड़ना आध्यात्मिक दृष्टि से भ्रष्टाचार (भ्रष्ट आचरण) है। मानव-देह लेकर विधि के विधाता के संविधान को तोड़ने की सज़ाएँ मिलती हैं। ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना यज्ञ से की है। यजन वस्तुतः ईश्वरीय **'यत्न'** है। यह यजन ही

जशन है। मानव जीवन स्वयं में **'यजन'** है, जिसका **'होता'** मात्र परमात्मा है। यज्ञ द्वारा प्रारब्ध के लेखे-जोखे एक ओर हो जाते हैं और यज्ञ फल रूप में वे विधाएँ भी लब्ध हो जाती हैं, जो प्रारब्ध में नहीं होतीं। यज्ञ का एक **'फल'** होता है, एक **'सुफल'** होता है। **'फल'** का प्रकाट्य पदार्थों में दृश्यमान होता है और **'सुफल'** मानस का आनन्द है। दैवीय संविधान के अन्तर्गत आत्मतत्त्व **'मैं'** (स्रष्टा परमात्मा का दृष्टा प्रतिनिधि) **नित्य** है और **मानव-देह**, जगत सहित '**नित नूतन**' है। देह सहित जगत में **'निर्माण'** और **'पालन'** **'नित नूतन'** है और **'संहार'** **'सुनिश्चित'** **एवं** **'नित्य'** है।

मानव देह का एक-एक रोम, हृदय की एक-एक धड़कन एवं समस्त भीतरी कार्य प्रणालियों का संचालन एवं सुसम्बद्ध क्रियान्वयन किसी के हाथ में नहीं है। यह तुझे कब, क्यों मिली और कब तक तेरे लिए रहेगी, तू कुछ नहीं जानता। इसका अगला क्षण तेरे हाथ में नहीं है। इसी देह के द्वारा तुझे समस्त महाब्रह्माण्ड का रसास्वादन करते हुए प्रभु की मात्र प्रशंसा करनी है। तू पशु-पक्षी, प्राणी जगत को देख। उनका माँ प्रकृति पालन-पोषण कर रही है। तू अपनी बुद्धि से जान ले तथा मान ले, ईश्वर ने सबके अनुकूलन एवं खाने-पीने की चमत्कारिक एवं रहस्यमयी व्यवस्था की हुई है। तू उसके ईश्वरत्व की प्रशंसा कर। **'सद्'** बुद्धि से **'सद्'** निर्माण, पालन एवं संहार में दृश्यमान ईश्वरीय **'सद्'** का रसास्वादन कर। **'सद्'** की प्रशंसा एवं गुणगान से चेतन और आनन्द की अनुभूति होगी। **'अनुभूति'** अदृश्य है। उस अनुभूति से ओत-प्रोत होकर ही तू दृश्यमान के **'सद्'** का रसास्वादन एवं प्रशंसा कर पाएगा। इसके लिए किसी **'सद्'** पुरुष की शरणागति आवश्यक है।

मानव को प्रभु ने कल्पना की अद्भुत् शक्ति दी है। साथ ही भविष्य को धारण करने की शक्ति भी प्रदान की है। मृत्यु और भस्मी कल्पना नहीं हैं, यह ऐसा भविष्य है, जो अवश्य होगा और कभी भी होगा। जीवन में अन्य भविष्य हमारी कल्पनाएँ हैं, वे हो भी सकते हैं, नहीं भी। उनके होने

को हम देख सकते हैं, उन अवस्थाओं से हम रूबरू हो सकते हैं। लेकिन मृत्यु एक ऐसा भविष्य है, जो निश्चित है, लेकिन हमने अपनी मृत्यु न कभी देखी है, न देख सकते हैं। अतः यह भविष्य कल्पना नहीं अवधारणा है। प्रभु ने हम सब मानवों से हमारी अपनी पाँच अवस्थाएँ छिपा कर रखी हैं। लेकिन प्रत्येक के साथ जो अन्य जगत दिया है, उसमें वे स्पष्ट दर्शित कराईं हैं। मेरे स्वयं के होने से जगत का होना होता है। **'मैं'** चिन्तन करूँ, कि ऐसा क्यों है? मैं दूसरों को गर्भ में एवं पैदा होते, सोते, मरते एवं भस्मी बनते देख सकता हूँ, लेकिन मैंने अपनी ये स्थितियाँ कभी नहीं देखीं।

यदि तूने अपनी गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था देख ली, तो तू जीवात्मा, परमात्मा, अपनी यथार्थ देह एवं समस्त सृष्टि में दृश्यमान मायिक प्रदर्शन के रहस्यों से अवगत हो जाएगा। **'मैं'** ने स्वयं को माँ के गर्भ में अथवा जन्म लेते हुए नहीं देखा, अन्य को देखा है। इसी प्रकार हज़ारों को सोते हुए, मृतकावस्था में शव बनते हुए और शव की भस्मी बनते हुए देखा है। इन अवस्थाओं में **'मैं'** स्वयं नहीं होता और मेरे लिए न मेरी देह होती है, न कोई जगत होता है और अपने देह व जगत रहित होने का मुझे ज्ञान नहीं होता। अतः मैं जड़ता में होता हूँ। मैंने जब भी देखा है **'मैं'** स्वयं उठा हुआ अवचेतना में होता हूँ। जैसा मेरा होना होगा, वैसा ही मेरे सामने जगत होगा। मेरा होना यदि मेरी वजह से है, तो यह जगत मेरे अनुकूल क्यों नहीं हैऔर यदि प्रभु की इच्छा से है, तो मेरे कष्ट आदि क्यों है?

वास्तव में जड़ता से महाचेतना तक तेरे हर होने का हेतु परमात्मा ही है, तुझे कुछ नहीं करना, केवल अपना होना बदलना है। यदि तू उसे अपनी किसी अवस्था अथवा स्थिति में होने का हेतु नहीं जानेगा और मानेगा, तो कोई न कोई चिन्ता अथवा शोक का कारण तुझे घेरे रहेगा। क्योंकि शोक और चिन्ता की वृत्ति तेरे मानस में समाहित रहती है। अतः किसी भी प्रकार और सब प्रकार से तुझे अपने हेतु (परमात्मा) से सम्पर्क करना है, कि मेरा होना सार्थक (अर्थ सहित) कर दो। प्रभु तेरा होना बदल देंगे। तेरा होना

अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) अर्थात् मानव देह व जीवन की अर्थरहितता से रूपान्तरित होते हुए स+अर्थ =सार्थक हो जाएगा। तेरा होना बदलने से तेरी हर होनी-अनहोनी सुहानी और मनमोहनी ही होगी।

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में तुझे तेरे होने का कोई ज्ञान नहीं होता। ये अवस्थाएँ जड़ अवस्थाएँ हैं, जड़ता में ईश्वर से विमुखता होती है। किसी को जब स्वयं अपना नहीं पता, तो ईश्वर का कैसे ज्ञान होगा। ईश्वर से पूर्ण विमुखता की जड़ अवस्थाओं में भी न्यूनतम चेतना तो रहती ही है, लेकिन वह नाम मात्र की ही चेतना होती है। उस किंचित अति न्यून चेतना का भी ज्ञान नहीं होता। पशु-पक्षी, प्राणी जगत, वनस्पतियाँ और पेड़-पौधों में भी चेतना होती है, लेकिन इन्हें ईश्वर की धारणा न होती है, न हो सकती है। जड़ता में प्रारब्ध, कर्म एवं काल-बन्धन नहीं होता और चेतना भी स्वयं में इन बन्धनों से मुक्त है। ये बन्धन मात्र अवचेतना में हैं। जड़-चेतन की ग्रन्थि अवचेतना है और इसी में तुझे अपने होने का ज्ञान होता है और ईश्वर विमुखता सी होने के कारण न पूर्ण जड़ता होती है और न पूर्ण चेतना।

जड़-चेतन की ग्रन्थि अर्थात् अवचेतना में, चेतना के अनुपात के अनुसार तेरा **'होना'** होता है। तेरा **'होना'** स्वयं में अदृश्य है एवं वही तेरा अदृश्य **'दृष्टा स्वरूप'** (Body Conciousness) है। तेरे अदृश्य दृष्टा स्वरूप की दृश्यमान प्रस्तुति ही देह सहित जगत की सृष्टि है। दृष्टा सहित जगत में तू स्वयं को ही देख रहा है। तू देह नहीं है। यदि तू देह है, तो जगत भी तू ही है। इसीलिए न तू देह है, न जगत है, तू विशुद्ध आत्मतत्त्व है।

देह का दिशा निर्देशक (Guiding Factor) मानस है। **'मन'** भावों की पिटारी है, उसमें असंख्य भाव उठते रहते हैं। कुछ भाव विशिष्ट मानसिकता में परिपक्व हो जाते हैं, वे स्वभाव बन जाते हैं। स्वभावतः कुछ लोग सतोगुणी होते हैं, कुछ रजोगुणी और कुछ तमोगुणी होते हैं। तीनों माया के गुण हैं। जीव-सृष्टि में जब आनन्द का आच्छादन हो जाता है, तो माया के गुण ही अवगुण बन जाते हैं। दृष्टा का जब आनन्द आच्छादित हो जाता है, तो इसे

'दृष्टा दोष' कहा गया है। उसका आनन्दमय मानस जीवीय सुख-दुःखपूर्ण मानसिकता बन जाता है। जब अदृश्य दृष्टा साकार देह रूप में दृष्टा बन जाता है, तो उसकी दृष्टि दोषयुक्त हो जाती है। वस्तुतः दृष्टा अदृश्य है और वह देह सहित जगत का दृष्टा है। वह जो भी देखता है, वह माया का सद् है। आनन्द उसका स्वभाव है, वह स्वयं में सहज सुख राशि है। सारा खेल मानस का है। मानसिकता व्यक्ति को व्यक्तिगत बना देती है, उसमें जगत स्वयं से पृथक् नज़र आता है। जैसा मानस होगा, वैसे ही लोग मिलेंगे अथवा वैसे ही लगेंगे। अन्यथा लोगों से जीव का व्यवहार अपने मानस के अनुसार ही होता है।

मानव में स्वभाविक चेतना अन्य सभी प्राणियों से अधिक है। अतः मानव बड़े-बड़े शक्तिशाली जानवरों से भी काम लेता है। दिव्य **'चेतना'** दिव्य बुद्धि है, जो जानवरों में न होती है, न हो सकती है। जप-तप, सद्गुरु-सेवा, सत्संग, सौहार्द्रता, प्राणायाम, संयम, यज्ञ-हवन आदि से **'दिव्य'** चेतना का विकास होता है। देह सहित जगत भी तद्नुसार दिव्य हो जाता है। तेरी देह तेरे मानस में बनी है। वह मानस बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें तेरे भाव, स्वभाव, संस्कार अदृश्य रूप से समाहित रहते हैं। जब, जिस समय, जिस श्वास और हृदय की जिस धड़कन में तू अपने नाम को स्वीकार कर लेता है, तेरे लिए तेरी देह, जगत सहित प्रकट होती है।

मानव-जीवन आध्यात्मिक निरन्तरता है, भौतिक नहीं। कल के जगत और आज के जगत में कोई निरन्तरता (Continuity) नहीं है, लेकिन कल का **'सद्'** और आज का **'सद्'** एक ही है। युगों-युगान्तरों तक **'सद्'** एक ही रहता है। कल के जगत और आज के जगत में निरन्तरता (Continuity) समझना और मानना '**सन्देह**' है। दुर्भाग्यवश मुझे सन्देह का भी ज्ञान नहीं है। कोई मानव पैदा होते अपने साथ अपना नाम लेकर नहीं आता। नाम कालान्तर में रखा जाता है, जो स्वयं में देह से **'अतिरिक्त'** है। जब यह **'अतिरिक्त नाम'** रूप को कुण्ठित कर देता है, तो **'नाम रोग'** बन जाता है। अपने जो, जब, जहाँ, जैसा भी होने में तू अपनी दिव्य चेतना का

विस्तार कर। चेतना का स्तर बढ़ने से तेरा '**होना**' बदल जाएगा। तद्नुसार तेरा जगत भी परिवर्तित हो जाएगा।

दैहिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में जिसका जन्म हुआ है, उसकी एक दिन मृत्यु हो जाती है और शव के दहन के बाद पंच महाभूतों की देह पंच महाभूतों में विलय हो जाती है। तत्पश्चात् देह का एक पदार्थ **'भसम'** प्रकट होता हुआ दृश्यमान होता है, जो पंच महाभूतों से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। यहाँ वह **'रूप'** नहीं रहता, जिसका नाम रखा गया था। 'मैं देह हूँ' इस जटिल्य की जटिलता और जकड़न में तू कल्पों से कलप रहा है। भिन्न-भिन्न जन्मों में तेरे भिन्न-भिन्न **'नाम'** हुए, **'मैं'** वही रही। **'मैं'** लगने से तू देह से नाम-रूप में अत्युक्त हो गया। **'नाम', 'रूप', 'होना'** और **'मैं'** चारों अंग स्वयं में पूर्ण एवं सद् हैं, लेकिन इनका परस्पर गुंथना जटिल्य (Complex) बन गया। यही तुझे बार-बार जन्म-मृत्यु की श्रृंखला में बाँधे हुए है। तुझे जीते जी देह का ध्यानाग्नि में दहन करना होगा और अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होना होगा, जो स्वयं में अनाम व अरूप है। जो देह व जगत तेरे होने से है, वह तेरे लिए है। तू देह के मोह से परे हो, तो तुझे ज्ञान व अनुभूति हो जाएगी, कि सब कुछ तेरे लिए है। तू स्वयं प्रारब्ध, काल व कर्म वश है, तू इस वशीकरण से परे हो। इसके लिए तू अपनी देह का **'अर्थ'** जान। देह का अर्थ तुझे तेरी **'अर्थी'** और तेरी **'भसम'** बताएगी। अर्थ+अर्थी= **'अर्थार्थी'** ही आत्मज्ञान का अधिकारी है। कृपया एकाग्र करिए :–

सम्पूर्ण मानव-जीवन में **'मृत्यु'** एक भविष्य ऐसा है, जो हमेशा भविष्य ही रहता है, क्योंकि इस भविष्य को मानव जानते-बूझते और मानते हुए भी देखना नहीं चाहता। इसलिए इससे भयभीत रहते हुए इससे बचने के विविध उपाय करता है। हर जन्म में मृत्यु भविष्य ही रहती है, इसलिए पुनः पुनः जन्मता-मरता रहता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति जीते जी मरता है और जीते जी जन्म लेता है। मृत्यु-रहस्य यह है, कि यह मानव देह की ऐसी अवस्था है, जो एक बार होकर दुबारा नहीं होती और स्वयं की वह अवस्था

किसी ने नहीं देखी। अपनी इस अवस्था का साक्षी भी आजतक किसी को कोई नहीं मिला। यह अवस्था स्वयं में **'दर्शन'** है। **'निद्रा', 'मृत्यु', 'चिता'** और **'भस्मी'** आत्म दर्शन के सोपान हैं। सुषुप्तावस्था, देह की एक अवस्था है, जिसमें देह जीवित होती है। मृत्यु, देह की अवस्था है, जब देह होती है लेकिन देह जीवित नहीं, मृतक होती है। **'भस्मी'** देह की एक अवस्था है, जिसमें देह ही नहीं होती। 'निद्रा-दर्शन' में देह रहती है। देह के साथ परिवार तथा अन्य समस्त पदार्थ आदि भी होते हैं। जिस मानस अवस्था में मैं निद्रा में हूँ, उसके दर्शन से मानस प्रभावित होता है। मैं हूँ, लेकिन मेरा देह व जगत से कुछ लेना-देना नहीं है। **'मृत्यु दर्शन'** में भी देह रहती है। देह के शव के साथ समस्त सम्बन्धी आदि भी रहते हैं। **'मृत्यु'** स्थिति को जीते जी आत्मसात् करने पर अहंकार पूर्णतः निःशेष हो जाता है। **'मृत्यु'** के बाद सब कुछ छूट जाएगा और शीघ्र ही देह का शव भी पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगा।

अध्यात्म अदृश्य से अदृश्य का खेल है। तूने मानसिक रूप से माना हुआ है, कि तू मरेगा। यह तेरी मान्यता स्वयं में अदृश्य है। इसे अमान्य करने के लिए तू इसकी अनुभूति कर। जब तू ऐसा करेगा, तो तेरा मानस अमरत्व वाला होगा। अपनी मृत्यु को जीते जी देखने के लिए तुझे मृत्यु से पृथक् होना पड़ा और तेरी मान्यता से मृत्यु लुप्त हो जाएगी। **मृत्यु का स्वरूप देखने से मृत्यु का रूप समाप्त हो जाएगा।** भय (Apprehension) और सहर्ष सहमति (Appriciation) दो शब्द हैं। सहर्ष सहमति (Appriciation) वस्तुतः हर भय (Apprehension) को निर्मूल कर देती है। भय (Apprehension) किसी भी स्थिति अथवा विधा की सहर्ष सहमति (Appriciate) में बाधा है। तुझे मृत्यु का भय (Apprehension) है, लेकिन सहर्ष सहमति (Appriciation) नहीं है। जब सहर्ष सहमति (Appriciation) हो जाएगी, तो भय (Apprehension) समाप्त हो जाएगा। अतः मृत्यु की सहर्ष सहमति (Appriciation) से इस स्थिति का भय (Apprehension) नहीं रहेगा। जैसे कि निद्रा का कोई भय नहीं होता और हर कोई सोना चाहता

है। जब जीते जी मृतकावस्था की स्थिति को तू आत्मसात् करेगा, तो तेरे मानस से मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा।

मानव-देह का अवलम्बन लेकर तू अपने अमरत्व को जाग्रत कर। इसके साथ नाम-रूप में तद्रूप सा होने के कारण तू मरण धर्मा बन गया। इस मानसिकता में तू सद्, चेतन व आनन्द की झलक नहीं पा सकता। तेरा अपना **'कुछ नहीं'** है क्योंकि तू संसार में **'कुछ नहीं'** लेकर आया था और संसार से जाते हुए **'कुछ नहीं'** ही लेकर जाएगा। उस **'कुछ नहीं'** को गँवा कर तू जीव-सृष्टि में कभी कुछ, कभी कुछ, कुछ न कुछ के लिए जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा है। उस **'कुछ नहीं'** के दर्शन के लिए तेरे पास तेरा अपना **'कुछ नहीं'** होना आवश्यक है। **'कुछ नहीं'** तेरी पहचान (Identity) है। अपने इस पहचान पत्र (I.D) के बिना तू **'कुछ नहीं'** के दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता। पैदा होते तेरा नाम नहीं था। अतः **'कुछ नहीं'** तेरा था, स्वयं को नाम से पहचानते ही तू अपनी वास्तविक पहचान खो बैठा है। तेरा **'कुछ नहीं'** अनाम व अरूप है तथा **'सब कुछ'** तेरे नाम से है। **'सब कुछ'** तेरा था नहीं, रहेगा नहीं, इसीलिए जो **'सब कुछ'** तेरे लिए **'है,** वह होते हुए भी **'नहीं है'।** सब कुछ तेरे नाम से है और तेरा **'कुछ नहीं'** तेरे नाम से नहीं है। तेरा **'कुछ नहीं'** है, लेकिन तेरे नाम से नहीं है। इसलिए अपने **'कुछ नहीं'** (भस्मी) द्वारा, **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) को सुरक्षित कर ले। **'भसम'** ही तेरा निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित **'भविष्य'** है। **'भसम'** से अपनी पहचान के बिना तेरा संसार में रहना अवैध है। यह **'कुछ नहीं'** भी वस्तुतः प्रभु का ही है, लेकिन यही तेरी वास्तविक पहचान है। जिस परमात्मा का **'सब कुछ'** है, तेरा **'कुछ नहीं'** भी उसी का है, लेकिन **'कुछ नहीं'** तुझे देकर भेजा गया है, ताकि तू प्रभु के **'सब कुछ'** का रसास्वादन कर सके।

हम जीवन भर **'कुछ नहीं'** से डरते हैं और **'सब कुछ'** के पीछे भागते हैं। व्यापार करते हुए 'व्यय अपार' का डर इसलिए रहता है, कि ऐसे खर्चा होता रहा, तो मेरे पास तो कुछ नहीं रहेगा। मेरी मेहनत व्यर्थ जाएगी। जब तू पैदा हुआ था, तो तेरे लिए तेरा अपना कुछ नहीं था। अपनी मृत्यु से तू

डरता है, लेकिन रोज़ सोना चाहता है। अपना सोना तूने कभी नहीं देखा। वस्तुतः तेरा **'होना'** ही तू है। तेरे सोने में तेरा होना नहीं है इसलिए तेरे लिए तू नहीं है। तू जिसे निद्रा कहता है, तेरी मृत्यु भी बिल्कुल ऐसी ही होगी। लेकिन उसके बाद तू उठेगा नहीं। निद्रा में तेरे लिए तू नहीं था, लेकिन तुझे मालूम नहीं था, कि तू नहीं है। तू देह को अपना स्वरूप मानकर कह रहा है, कि निद्रा में तू नहीं था। निद्रा में तू देह नहीं था, तद्नुसार तेरे लिए जगत भी नहीं था। वस्तुतः तू देह व जगत नहीं है। देह और जगत है, लेकिन तू न देह है न जगत है। यदि तू अपना स्वरूप देख ले, कि न तू देह है और न तेरे लिए कोई जगत है, लेकिन तू है। वही तेरा निश्चित स्वरूप है। वह जो तू है वास्तव में वही तू है। तू गर्भ में आने से पहले भी **था** और मृत्योपरान्त भस्मी बनने के उपरान्त भी **रहेगा**। यह **'गा'** और **'था'** तेरी देह की सापेक्षता में है। वस्तुतः तू **'है', 'है'** और **'है'**। यह चिन्तन, मनन एवं दर्शन ही तेरी चिन्ताओं का उन्मूलन कर सकता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16 अक्टूबर से 23 दिसम्बर 2011)

माया (स्थिति)

(भाग – 11)

मानव-जीवन दुर्लभतम है। **'दुर्'** जब **'लब्ध'** के साथ जुड़ता है, तो अपनी नकारात्मकता खो देता है। अन्यथा **'दुर'** के साथ जुड़े शब्द दुर्गम, दुराचारी, दुर्मति, दुर्बुद्धि, दुर्योधन, दुर्गति बुराई के द्योतक हैं। **'दुर्लभ'** शब्द वस्तुतः दिव्यता से जुड़ा है। किसी परम विशिष्ट, अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त विलक्षण एवं ईश्वरीय संरचना के लिए ही **'दुर्लभ'** शब्द का प्रयोग किया जाता है। असंख्य प्राणियों में मानव-देह दुर्लभतम है। एक मानव-देह दृश्यमान रूप से कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का प्रतिनिधित्व करती है। हमें यह अति दुर्लभ मानव-देह और इसके साथ सम्पूर्ण सृष्टि अपनी समस्त विधाओं सहित स्वतः **'लब्ध'** है।

ईश्वर सद्, चेतन व आनन्द का अविरल एवं अकाट्य संगम है। **'चेतन'** एवं **'आनन्द'** अदृश्य हैं तथा **'सद्'** दृश्यमान है। **'सद्'** दृश्यमान है और ईश्वर की माया है। मानव-देह का अदृश्य क्षेत्र **'चेतन'** और **'आनन्द'** का प्रतिनिधि है। जब **'मैं'** देह के साथ तद्रूप सा हुआ देह द्वारा दृश्यमान देह व जगत को देखता हूँ, तो जो कुछ दृश्यमान होता है; वह असद् होता है। **'असद'**् और **'सद'**् में **'सद्'** समान है। मानव देह में देह की कई ऐसी अवस्थाएँ हैं, जो जीव को **'स्वयं की'** दर्शित नहीं हैं, अन्य में दृश्यमान होती हैं। उनकी अनुभूति **'स्थित्यातीत स्थिति'** है और वह दर्शन ईश्वर के चेतन एवं आनन्द का दर्शन है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में सम्पूर्ण माया के रहस्य छिपे हैं।

यदि कोई अपनी इन स्थितियों का चिन्तन एवं मनन करें, तो सद्गुरु कृपा से इनमें प्रविष्टि पाते हुए इनका **'दर्शन'** कर सकता है। तब ये माया ही अनन्त चेतना व अनन्त आनन्द के समन्वय से पूर्ण अपना **'सद् स्वरूप'** दिखा देती है।

'मैं देह हूँ' यह एक अति जटिल जटिल्य है। इस जटिल्य का नाम **'सन्देह'** है। **'सन्देह'** अज्ञान है, महादुर्भाग्यवश मुझे अपने अज्ञान का भी ज्ञान नहीं है। अतः सन्देह में अतिविलक्षण एवं उत्तमोतम् होते हुए भी मेरी हर सोच **'संशयात्मक'** होती है। सन्देह अदृश्य है और सोच-विचार की संशयात्मकता भी अदृश्य रहती है। 'मैं देह हूँ' सन्देह की अनभिज्ञता में किसी भी सोच या विचार का निश्चयात्मक होना असम्भव है। इसलिए दृश्यमान कृत्य-अकृत्य **'संशयपूर्ण'** एवं हर पाना-खोना स्वयं में **'संशय'** ही रहता है। **'संशय वश'** हो जीव आजीवन **'संचय'** एवं **'संग्रह'** में रत रहता है।

जीव सृष्टि में **'मैं'** शब्द के प्रकट होने पर ही स्रष्टा परमात्मा द्वारा निर्मित, पालित एवं संहारित सृष्टि का प्रदर्शन अवलोकित होता है, अन्यथा नहीं होता। यह **'मैं'** विशुद्ध आत्मतत्व का प्रतिनिधि **'शब्द ब्रह्म'** नहीं, बल्कि स्वयं में एक जटिल्य है, जो मानव-देह के साथ **'नाम-रूप'** में अत्युक्त **'शब्द भ्रम'** है। आत्मतत्त्व स्वयं में पूर्ण एवं **'अभावमय'** है, लेकिन **'मैं'** शब्द में प्रकट होते ही **'नाम'** में कुण्ठित व गुण्ठित मानव-देह के साथ तद्रूपता सी में **'अभाव में'** हो गया। वास्तव में जो **'वंचित है'** वही **'संचित'** करता है। बहुत सा **'संग्रह'** एवं **'संचय'** भी इसके **'वंचन'** एवं अभाव की अति रिक्तता को भर नहीं पाता। जन्मों-जन्मान्तरों से जो वंचित है वही सन्देहवशता (मैं देह हूँ) में संचय करना चाहता है। इस वचंन का एक मात्र तोड़ सद्गुरु के श्रीमुख से निसृतः प्रवचन के **वचन** है। उचिततम जिज्ञासुओं के सम्मुख शब्दों द्वारा, शब्दों के रहस्य अनावृत होते हैं। इस **सन्देह** नामक जटिल्य को **'मैं'** साथ नहीं लाता, बल्कि ये जटिल्य ही मुझे पुनः पुनः जगत सहित लाता है और मुझे जगत सहित चलाता है। यह सन्देह

मुझे अपना जन्म देखे बिना पैदा करता है, बिना स्वयं की निद्रा देखे मुझे सुलाता है, बिना मृत्यु के मारता है और बिना स्वयं की भस्मी देखे मुझे भस्मित करता है।

'मैं' जटिल्य (Complex) में होने में मेरी हर **'स्थिति'** गति से एवं गति में, परिस्थिति, अवस्था एवं व्यवस्था में है। यह जटिल्य ही मेरे आने से पहले मेरे माता-पिता को संसार में लाया है। मेरे आने से पहले उस स्थान, स्थिति, समय, ग्रह-नक्षत्र, तिथि को लाया है, जिसमें मुझे पैदा होना होता है। इस प्रकार मेरे आने से पहले स्रष्टा परमात्मा मेरे आने और मेरे होने से पहले मेरे **'होने'** को संसार में लाता है। पहले मेरा **'होना'** हुआ फिर **'मैं'** हुआ। यह सब क्यों, कब, कैसे होता है, मेरी समझ से परे है। वस्तुतः संसार में समझदार वह है, जिसने अपनी समझ से समझ को समर्पित कर दिया। इस **'समझ'** के लिए **'समझ'** से यह समझना आवश्यक है, कि मैं कुछ नहीं समझ सकता।

अपनी समझ से पहले तू यह समझ, कि असंख्य जलचर, थलचर, नभचर प्राणियों के मध्य तू मानव क्यों है? असंख्य जीव-जन्तुओं से तू पृथक् है, तो क्यों है? तू कब से है और कब तक रहेगा? मानवों में असंख्य मानव हैं, उन सबमें एक तेरी हैसियत क्या है? कितने समझदार रोज़ यहाँ आ रहे हैं और कितने ही रोज़ जा रहे हैं। इनमें तू एक क्या है? तू न भी हो तो भी समस्त ब्रह्माण्ड ऐसे ही चलते रहेंगे, क्योंकि तेरे से पहले भी चल रहे थे। पंच महाभूत और इनसे निर्मित, पालित व संहारित सृष्टि चलती रही है, चल रही है और चलती रहेगी। यह समझ ले और फिर जिस परमात्मा ने तुझे मानव-देह दी है उससे पूछ, कि वह तुझसे क्या करवाना चाहता है? हर जन्म में तू एक भूल की पुनरावृत्ति करता रहता है, कि तू देह है। **'तू देह है'** यही तेरा सन्देह है और इस जटिल्य की जकड़न ने जन्मों-जन्मान्तरों नहीं, कल्पों-कल्पान्तरों से तुझे जकड़ा हुआ है। दुर्भाग्यवश इस सन्देह का भी तुझे ज्ञान नहीं है। इसके लिए तुझे सद्गुरु का शरणागत होना होगा।

जटिल्य स्वयं उन गाँठों से गुण्ठित है, जो गाँठे अदृश्य रहती हैं। **'मैं'**

का अपना कोई **'रूप'** नहीं है, जैसेकि नाम का अपना कोई **'रूप'** नहीं है। भिन्न-भिन्न जीवों के नाम भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन **'मैं'** एक ही है। नाम अतिरिक्त होते हुए भी जब **रूप** ने उसे स्वीकार कर लिया और **'मैं'** ने इस स्वीकृति की पुष्टि कर दी, कि मैं अमुक (नाम) अमुक (रूप) हूँ, तो यहाँ रूप, नाम से अत्युक्त हो गया और अत्युक्तियों एवं अतिशयोक्तियों की श्रंखला में जीव **'मैं-मैं'** करने लगा। इसी से अनर्गल प्रलाप एवं निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थ का सिलसिला शुरू हो गया। जब शिशु देह गर्भ में नहीं आती तब भी 'मैं देह हूँ' जटिल्य अदृश्य रूप से रहता है। जैसे ही यह जाग्रत होता है उसके साथ ही प्रारब्ध, काल एवं कर्म का बन्धन प्रारम्भ हो जाता है। 'मैं' जीव कोटि में नाम-रूप में मानव-देह के साथ तद्रूप सा चला आ रहा है। किसी भी तरह एवं सब तरह से नाम से कुण्ठित व गुण्ठित **'मैं'** द्वारा उस आत्म तत्त्व की प्रतिनिधि विशुद्ध **'मैं'** और स्वयं आत्मा की अनुभूति **'आत्म-विद्या'** है।

अध्यात्म देहातीत क्षेत्र का ज्ञान है। धर्म-कर्म से परे आत्मा का ज्ञान है। व्यष्टि देह में, देह द्वारा, देह के लिए, देह से बाहर (देहातीत) के क्षेत्र के स्पर्श के बाद आपका **'होना'** बदल जाता है, अतः देह सहित जगत बदल जाता है। देहातीत क्षेत्र सबका एक ही है। **'स्व'** से **'सर्व'** में जाकर जब आप देह में आते हैं, तो आप **'स्व'** नहीं **'सर्व'** होते हैं। अतः आपके साथ आपके जगत के भाव, विचार, मान्यताएँ, धारणाएँ और सम्पूर्ण परिदृश्य बदल जाता है।

मानव जीवन सतत् गतिशील, स्थितियों, परिस्थितियों, अवस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का पुंज है। जब कोई स्थिति बन जाती है, तो उसके चारों ओर परिधि की तरह एक परिस्थिति अचानक उभरती एवं विकसित होती है। उस अवस्था के तदनुसार व्यवस्था बनाई जाती है। अतः **'स्थिति'** और **'परिस्थिति'** के **'समन्वित'** होने पर जो **हालत** बनती है, उसे **'अवस्था'** कहते हैं। स्थिति+परिस्थिति=अवस्था। उस अवस्था में यथायोग्य प्राप्तियों एवं योग्यताओं के अनुसार जो उत्तमोतम प्रबन्धन किया जाता है, उसे

व्यवस्था कहते हैं। अतः परिस्थितिजन्य अवस्था के तद्‌नुसार व्यवस्था बनाई जाती है। कृपया एकाग्र करिए :—ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह की माँ से गर्भ में गर्भाधान, जन्म एवं मृत्यु तथा भस्मी बनने तक बहुत सी विभिन्न **अवस्थाएँ** है—गर्भावस्था, जन्म, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, युवावस्था, अति युवावस्था, वृद्धावस्था, प्रौढ़ावस्था, अति वृद्धावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था तथा विभिन्न भौतिक दृष्टियों से अन्य असंख्य अवस्थाएँ। इनमें गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था ऐसी स्थितियाँ हैं, जो किसी मानव ने स्वयं अपनी नहीं देखीं और न देख पाने की सम्भावना है। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था एवं मृतकावस्था सब मानवों की एक **सी** होती हैं और भस्मावस्था एक **ही** होती है। ये अवस्थाएँ सबकी एक **सी** अथवा एक **ही** थीं, हैं और होंगी। इन पाँचों अवस्थाओं की तद्‌नुसार व्यवस्था बनाई जाती है, लेकिन जो स्वयं इन अवस्थाओं में होता है, उसके स्वयं के लिए ये पाँचों ऐसी स्थितियाँ हैं, जिनमें **'स्थित' 'होना'** सम्भव है। अन्यथा अन्य असंख्य अवस्थाएँ **गति से** एवं **गति में** हैं, अतः **स्थिति सी** हैं।

मानव-देह में रूप (चेहरा) पूरी देह का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए देह में मुख्य **'मुख'** देह का मुखिया है। चेहरे से ही किसी को पहचाना एवं सम्बोधित किया जाता है। **'रूप'** का एक **'नाम'** इसी हेतु रखा जाता है। **'नाम'** देह से अलग होता है और रखने वाला भी अलग होता है। जीव कोटि में भटका हुआ जीव एक विशिष्ट समय, दैहिक विकास की विशिष्ट स्थिति में उस नाम को स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकृति की पुष्टि आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** करता है। जीवकोटि में जन्मों-जन्मान्तरों से भटका हुआ जीव इस **'मैं'** जटिल्य (Complex) को लिए चला आ रहा है। इसके चार अंग हैं—**'मैं',** नाम, मानव-देह और होना। इन चारों में वर्चस्व **'मैं'** शब्द का है। **'नाम'** जन्मों-जन्मान्तरों में बदलता रहता है और पूर्व जन्म के नाम की स्मृति भी लुप्त हो जाती है। इस जन्म के **'नाम'** की स्वीकृति होते ही **'मैं'** जटिल्य (Complex) पुनः जाग्रत हो जाता है। जब तक नाम से कुण्ठित व गुण्ठित

मानव देह का **'मैं'** जटिल्य (Complex) जाग्रत नहीं होता, तब तक जटिल्य (Complex) के चारों अंग पुनः सक्रिय नहीं होते और किसी मानव देह का जगत सहित होना प्रमाणित नहीं होता। कालान्तर में 'नाम' पूरी देह का अधिग्रहण कर लेता है। उस अलग से और अलग द्वारा रखे गए **नाम** से **रूप** **'तद्नाम'** हो जाता है।

'नाम' की स्वीकृति स्वयं में **'अवस्था'** नहीं, एक **'स्थिति'** है, जिसमें **'मैं'** जटिल्य (Complex) जाग्रत हो जाता है। यहाँ से पुनः प्रारब्ध, काल एवं कर्म की वशता शुरू हो जाती है। **'नाम'** जो स्वयं में किसी व्यक्ति का नहीं था, **'रूप'** की उस नाम के साथ प्रतिबद्धता में हर व्यक्ति, व्यक्तिगत हो गया। गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था में देह होती है, लेकिन देह को अपने होने का आभास नहीं होता। तद्नुसार जगत का भी कोई आभास नहीं होता। ये अवस्थाएँ सब मानव-देहों की समान हैं। इनमें किसी की परस्पर कोई भिन्नता नहीं होती। **'भस्मावस्था'** में कोई नाम-रूप एवं देह ही नहीं होती क्योंकि यह अवस्था स्वयं में अनाम और अरूप है और सबकी **एक ही** है।

जीव कोटि में **'मैं'** जटिल्य (Complex) शब्द रूप में मानव-देह के नाम-रूप में कुण्ठित व गुण्ठित **'होने'** का द्योतक एवं इस स्वीकृति का स्वीकार्य है। **'मैं'** **'व्यक्तिगत'** नहीं **'सर्वगत'** है, क्योंकि किसी जीव की नहीं, स्वयं में आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द है। **'मैं'** के बिना दृश्यमान सृष्टि के प्रदर्शन का शुभारम्भ नहीं होता। यह एक ईश्वरीय संयोजन है, कि स्रष्टा (परमात्मा) द्वारा रचित सृष्टि का एकमात्र दृष्टा (जीवात्मा) आत्मतत्त्व के प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के बिना दृष्टा नहीं हो सकता। यह ईश्वरीय अकाट्य नियम है, कि सृष्टि के समस्त प्रदर्शन अथवा पहले से ही बने-बनाए (Recorded) चलचित्र के चलने की घोषणा आत्म तत्त्वका प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** ही करता है। यह **'मैं'** जटिल्य (Complex) स्वयं सन्देह है और मुझे सन्देह का ज्ञान नहीं होता।

सम्पूर्ण समय, स्थान और स्थितियाँ जो थीं, हैं और होंगी, उस एक देह के प्रकाट्य में संघनित होती हैं, जो इस समय अवचेतना में **'है'।** कहने को

आज जो देह, जगत सहित प्रकट हुई वह आज के दिन के प्रारब्ध वाली प्रकट हुई, लेकिन इस प्रारब्ध में काल, अकाल को समेटे हुए **है** अथवा अकाल, काल को समेटे हुए है। इसे नित नूतन इसलिए कहा है, कि रोज़ का नवीन वर्तमान, नए अतीत और नए भविष्य को लिए हुए होता है। इस वर्तमान में अक्सर अतीत का शोक एवं भविष्य की चिन्ताएँ होती हैं। **शोक और चिन्ताओं के संगम से जो बनता है, वह मेरी वर्तमान की मानसिक स्थिति होती है,** जो प्रतिदिन, प्रति क्षण बदलती रहती है। जिसे हम **'स्थिति'** कहते हैं, वह बहुत बड़ा भ्रम है। समय-समय की क्षणिक स्थिरता को हम **स्थिति'** कह देते हैं। घड़ी की जो सुई स्थिति में अधिक स्थित है, उसे प्राथमिकता देते हैं। घड़ी की घण्टे, मिनट और सैकेण्ड की तीन सुइयों में से घण्टे की सुई स्थित सी होती है और उसी के आधार पर समय की गणना की जाती है। इसी प्रकार जीवन में हम जिस स्थिति में होते हैं अथवा होने की सम्भावना, दुर्भावना या कल्पना होती है, उसमें हमारे लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण होती है उसमें हम स्वयं को स्थित सा अनुभव करते हैं। जीवन में किसी परिदृश्य के वर्णन में हमारे लिए जो विशिष्ट स्थिति होती है उसके चारों ओर हम घूमते हैं।

एक स्थित्यातीत स्थिति है, जिसमें काल और अकाल दोनों समाहित हो जाते हैं। यहाँ लाभ, हानि, सुख, दुःख, हार, जीत एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। **'जीते'** हुए श्रीमंत के गले में **'हार'** पहनाया जाता है। हार-जीत का उल्लंघन करके जो स्थित्यातीत स्थिति में स्थित हो, वास्तव में वही **'जीता'** हुआ है। निद्रा आदि स्थिति में उसे अपनी देह व जगत का कोई ज्ञान नहीं होता, लेकिन इस स्थिति का भी उसे कोई ज्ञान नहीं होता। देह और जगत का ज्ञान न होने का ज्ञान और उस स्थिति में प्रविष्टि **'समाधि'** है। उस स्थिति में देह और जगत के होते हुए भी देह और जगत से पूर्णतः निर्लिप्तता होती है। देश, काल, धर्म, कर्म, सम्बन्ध, रोग, दोष, लाभ, हानि, मान, अपमान, सुख, दुःख, उन्नति, अवनति, पाना, खोना, करना, करवाना, बनना, बनाना, होना, खोना से निर्लिप्त मनःस्थिति में प्रविष्टि द्वारा अपनी इन

स्थितियों की अनुभूति सद्गुरु कृपा से ही हो सकती है। इन स्थितियों का दर्शन, ज्ञान एवं अनुभूति एक मानस स्थिति द्वारा की जाती है। सद्गुरु कृपा से देह द्वारा देह व जगत से निर्लिप्त मानस स्थिति की अनुभूति देह व जगत से सम्बन्धित गति से और गति में चलती हर दैहिक एवं मानसिक **'स्थिति सी'** को नष्ट कर देती है। ध्यान में **'निद्रा'** स्थिति का दर्शन **'जाग्रत'** मानस स्थिति से करने वाला मानस जाग्रत होता है, **'मृतक स्थिति'** का दर्शन मृत्योपरान्त मानस स्थिति से करने वाला मानस **'अमरत्व'** प्रधान होता है और **'भस्मी स्थिति'** का दर्शन करने वाला मानस **'शिवत्व'** है।

जब तू अपनी इन अवस्थाओं का ध्यान करेगा, तो तेरी स्वयं की स्थिति बोधमय होगी। तेरी बोधता (ज्ञान) के अन्तरंग में **'स्थिति'** हो जाएगी। गर्भावस्था में तुझे बोध नहीं होता, कि तू गर्भ में है, शैशवावस्था में तुझे बोध नहीं होता, कि तू शिशु है। निद्रा में, मृत्यु में, भस्मी में तुझे बोध नहीं होता, कि तू सुषुप्त, मृतक अथवा भस्मित है। बचपन की निद्रा, युवावस्था की निद्रा एवं वृद्धावस्था की निद्रा में कोई अन्तर नहीं है। अतः प्रत्येक की प्रत्येक अवस्था में जो निद्रा है, वही अन्य एक (अनेक) की भी किसी भी अवस्था में निद्रा है। चाहे कोई सम्राट है अथवा कोई भिखारी है, किसी भी धर्म, देश, काल, लिंग का है, निद्रा एक सी ही होती है।

'निद्रा' में जाने से पहले इस अवस्था की मैं व्यवस्था करता हूँ, कि घर बन्द हो, चौकीदार तैनात हो, क्योंकि मैं जानता हूँ, कि मैं एक ऐसी अवस्था में जा रहा हूँ, जहाँ मुझे अपनी देह व जगत के विषय में कुछ आभास नहीं होगा। इस दौरान मेरा घर-बार, बच्चे आदि सुरक्षित हों, इस अवस्था की व्यवस्था करके सोता हूँ। सोने से मुझे भय नहीं लगता, लेकिन मृत्यु से मैं डरता हूँ। मैं मर न जाऊँ इसकी व्यवस्था करता हूँ। प्रत्येक की प्रत्येक अवस्था में **'मृत्यु'** एक है। विभिन्न शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक, राजनैतिक अथवा अन्यथा किसी अवस्था में प्रत्येक (प्रति+एक) एवं अनेक की जो अवस्थाएँ एक सी और जो अवस्था एक ही होती है, वह स्वयं में '**स्थिति**' है।

सोते समय तू स्वयं सोच और विचार कर, कि जब तू सो जाएगा तेरे लिए तेरी देह व जगत से सम्बन्धित **'कुछ नहीं'** रहेगा। तू देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत और माया के तीनों गुणों से अतीत होगा और तुझे उसकी अनुभूति नहीं होगी, लेकिन यही तो तेरा **'आत्मस्वरूप'** है। क्योंकि तुझे इस स्थिति का ज्ञान व अनुभूति नहीं होती, इसलिए तेरी निद्रा और पशु की निद्रा में कोई अन्तर नहीं है। तू एक भौतिक अवस्था (निद्रा) से उठकर वही कार्य करने लगेगा, जिनसे थक कर, तंग आकर तू सोया था। तेरी मानसिकता नहीं बदलेगी। निद्रावस्था तेरे लिए जड़ता ही रहेगी। तू मानव है, तू इस स्थिति का स्वयं दर्शन कर सकता है। उस **'मानस स्थिति'** में प्रविष्टि पा सकता है, जिसमें देह व जगत होते हुए भी तेरे लिए देह व जगत का आभास न रहे। वह समाधि स्थिति है। जिसमें तू अपने गृह में स्थित हो जाएगा। तुझे उस अभावमय मानस स्थिति का आनन्द आएगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

सुषुप्ति में देह व जगत के होने का आभास नहीं रहता और यद्यपि देह व जगत के न रहने का ज्ञान नहीं होता, फिर भी विश्राम मिलता है। इसीलिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देह व जगत के होने से तंग आकर, थककर हम सोना चाहते हैं। **इस सुषुप्ति का दृष्टा कौन है?** निद्रा से उठते ही तो **'मैं'** अमुक-अमुक दृष्टा बन जाता हूँ, लेकिन जब मैं अमुक-अमुक नहीं होता, तब उस स्थिति का दृष्टा कौन है? नित्य तू किसी न किसी को सोए हुए देख सकता है। तू चिन्तन कर और उठ कर जागने के लिए सोए हुए का मानस क्या व कैसा होगा, इस पर विचार कर। स्वयं का **'सोना'** और उसकी अनुभूति तूने नहीं की। उठकर तुझे मालूम हुआ, कि तू सोया था। यद्यपि तुझे **'सोना'** क्या है, इसका कुछ ज्ञान नहीं है, फिर भी तेरे सोने का प्रमाण तेरा उठना है। तेरे उठने का प्रमाण तेरा सोना नहीं है। तेरा सोना केवल सोना है। सुषुप्ति के दौरान तुझे देह सहित जगत रहित अपना स्वरूप होते हुए भी मालूम नहीं था, लेकिन उठने के साथ अपना ही नहीं,

जगत का सोना-उठना और सब कुछ मालूम हो गया। जब तू अपना सोना देख लेगा, वह तेरा उठना नहीं होगा, तेरी जागृति होगी। तू कहता है, कि तू सोया था, क्या तूने स्वयं को सोए हुए देखा था, कि **'नहीं'।** फिर तू कैसे आश्वस्त है कि तू सोया था, कि मैं **'उसी'** बिस्तर से उठा हूँ **'जिस'** पर सोने से पूर्व था।

तेरे सोने का प्रमाण तेरा **रात्रि को सोने से पहले और इस समय उठा हुआ होना है।** यदि सोने से पहले उठा हुआ होना तेरे ख्याल में न होता, तो तू कह नहीं सकता था, कि तू सोया था। इसलिए स्वप्न में जो तू देह सहित जगत सहित था, उसे तू सपना कह रहा है, क्योंकि तुझे रात्रि में सोने से पहले उठा हुआ होना याद है। सपने में तुझे वह सपना नहीं लग रहा था। सोने से पहले उठे हुए होने को तू सपना नहीं कह रहा, कल दिन भर जो तूने किया, करवाया उसे सपना नहीं कह रहा। तू अब जो है, वह सपने वाला नहीं है और जो रात्रि में सोने जा रहा था, तू वह भी नहीं है। जैसे तू सपने में उठा हुआ प्रकट हुआ था, वैसे ही अब उठा हुआ प्रकट हुआ है। तू अभी भी सो रहा है। जैसे, सपने में उठा हुआ था, लेकिन वास्तव में सोया हुआ था। उसी तरह अब भी उठा है, लेकिन वास्तव में सोया हुआ है। **यही मोह निद्रा है।**

सपने में तुझे उसकी याद नहीं थी, जो रात्रि में सोने जाने के लिए उठा हुआ था। लेकिन अब तुझे उसकी भी याद है और सपने वाले की भी याद है। तेरे सपने में तेरे एक के साथ अनेक थे। सपने वाले की पृष्ठभूमि उसका भूत और भविष्य अब तुझे याद नहीं है और उसका क्या हुआ, यह भी तुझे नहीं पता। लेकिन अब जो उठा हुआ है, उसकी पृष्ठभूमि तू सोने से पहले वाले व्यक्ति को मान रहा है। यदि तू सोना देख ले, तो यह सापेक्षता समाप्त हो जाएगी, कि तू वह है जो रात्रि में सोने जा रहा था, जिस बिस्तर पर सोया था, उसी से उठा है। **'मैं'** अमुक-अमुक व्यक्ति हूँ' यह तू सोए हुए नहीं कह सकता, क्योंकि सुषुप्ति में तुझे देह व जगत का भास नहीं होता और इस आभास न होने का ज्ञान भी नहीं होता। यदि तुझे यह मालूम हो

जाए, कि तुझे देह व जगत का भास नहीं है और तू है अर्थात् देह व जगत के भास न होने का ज्ञान व अनुभूति हो जाए, वह तेरी **जागृति** है। इसी जागृति में देह व जगत के 'सपने' में होने की अनुभूति हो जाएगी। यही निद्रा-दर्शन है। तू स्वप्न दृष्टा हो जाएगा। यह एक मानसिक स्थिति है। तेरी बोधता में इस स्थिति का प्रकाट्य चेतना है और अबोधता में जड़ता है।

'संहार' में तेरा पहचान पत्र छिपा है। तू निर्माण, पालन में उलझा हुआ है। इस अदृश्य पहचान के साथ ही तू दृश्यमान का रसास्वादन कर पाएगा। तुझे अपना **'कुछ नहीं'** एवं अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान एवं अनुभूति आवश्यक है। इस 'पहचान' के बिना तेरा **'होना'** स्वयं में होना न होकर रोना, धोना, खोना और ढोना ही रहेगा। जो देह तेरी थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं, तू उसे अपनी पहचान मान रहा है। इसीलिए तेरा संसार में रहना अवैध है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महा ब्रह्माण्डों की लब्धि भी तुझे जन्म, मृत्यु, रोग, जरा, कर्म बन्धन, काल बन्धन एवं प्रारब्ध के बन्धन से मुक्त नहीं कर सकती। यही व्यक्तिगत कर्म है जो तूने कभी नहीं किया। तू प्रार्थना कर, उसके लिए आतर्नाद कर, कि प्रभु ! मुझे मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् करा दो। तेरी देह **'भस्मावस्था'** में किसी भी क्षण और किसी भी अवस्था में रूपान्तरित हो सकती है। यह तेरी अवस्थातीत अवस्था और भविष्यातीत भविष्य है। यह अवस्था और अपना यह भविष्य तूने कभी नहीं देखा है। यह अदृश्य ही था और अदृश्य ही रहेगा। तू उसका जीते जी दर्शन कर। यही तेरी पहचान है और यही तेरा दैवीय पहचान पत्र है, जो किसी न किसी जन्म में तुझे अवश्य प्राप्त करना होगा, अन्यथा तेरा छुटकारा नहीं होगा। मानव होने के नाते अपने इस पहचान पत्र की लब्धि तेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।

मेरे लिए नित नूतन देह सहित जगत प्रकट होता है। सद्गुरु कृपा, प्रवचन, श्रवण, ध्यान, चिन्तन-मनन, जप-तप, यज्ञ, हवन, साधना अथवा किसी भी प्रकार से यह ज्ञान एवं अनुभूति हो जाए, कि जब मैं जिस भी अवस्था में होता हूँ मेरे प्रत्येक होने का कारण वह हेतु (परमात्मा) **'एक'** ही है। मेरी दृढ़ मान्यता हो जाए, कि प्रभु जो कर रहे हैं,

मेरे हित में ही है, क्योंकि प्रभु मेरे हेतु हैं। वह **'स्थिति'** मुझे स्थित कर देती है। वास्तव में वही मेरा 'होना' होगा। देह द्वारा मैं यह देख लूँगा, कि मैं हूँ और मेरे लिए देह व जगत होते हुए भी नहीं हैं। यह स्वयं में **अवस्था** नहीं है, **स्थिति** है। जो **स्थित** है, वह **स्थिति** है। अतः **'हेतु'** स्वयं में एक **'स्थिति'** है।

जब मानव **'हेतु'** के विमुख होता है, उसमें समस्त ग्रहों की दशा विपरीत ही होती है। जीवन में समय सतत् परिवर्तित होता रहता है। कष्ट के समय यदि विवेक, प्रज्ञा से धैर्य रखा जाए, तो वे कष्ट भी जीवन में मील के पत्थर बन जाते हैं और लोगों के लिए उदाहरण स्वरूप हो जाते हैं। **'नवग्रह'** उस **'हेतु'** परमात्मा की अपनी शक्तियाँ हैं और सृष्टि में प्रशासनिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ईश्वर परम स्थिर ठोस-घन-शिला है, लेकिन उसकी समस्त शक्तियाँ गतिशील और दशानन रूपों में गतिमान हैं। कोई ग्रह, राशि, नक्षत्र किस चाल में और किस गृह (घर) में चल रहा है, उसका **'हेतु'** मात्र परमात्मा है। यदि उस हेतु से सम्मुख होते हुए इन्हें देखें, तो इनकी हर चाल तेरे लिए शुभ ही होगी। ज्योतिष में नव ग्रहों की पृथक्-पृथक् बारह घरों में विशेष अवस्थाएँ एवं दशाएँ बताई गई हैं। वस्तुतः ये विभिन्न अवस्थाएँ व दशाएँ तेरी मानसिकता की बारह स्थितियाँ हैं, जो सदा सर्वदा गति से एवं गति में रहती हैं और सतत् परिवर्तित होती रहती हैं। इनमें तेरे लिए नौ ग्रह तेरे प्रारब्धानुसार गति करते हैं। यदि तू अपने गृह में स्थित हो जाए, तो ग्रहचाल से परे हो जाएगा।

ग्रह-नक्षत्रों की हर चाल तेरे प्रारब्धानुसार प्रभु द्वारा निर्धारित है। तू जब उठता है, तो जो तेरा **'कुछ नहीं'** है, वह **'सब कुछ'** की मोह-निद्रा में खोया रहता है। वस्तुतः तेरे पास तेरा अपना **'कुछ नहीं'** नहीं है। उठकर तू एक व्यक्ति स्वयं में व्यक्तिगत हो जाता है और जगत को स्वयं से पृथक् देखता है। इसलिए तू देह व जगत में लिप्त, अनेक मानसिकताओं में भ्रमित हुआ भटक रहा है। तू उठा हुआ हो और तेरा मानस ऐसा बन जाए, जो सोए हुए का है, तो तेरी समस्त मानसिकताएँ समाप्त हो जाएँगी। जितना

ज्योतिष, भविष्य वाणियाँ आदि होती हैं, वे प्रारब्ध के लेखे-जोखे को देख कर की जाती हैं। प्रभु इनके स्वामी हैं और हर प्रकार से तेरे **'हेतु'** ही हैं। तू जिस भी ग्रहचाल में विभिन्न ग्रहों के जिस भी गृह (घर) में है, उसका हेतु परमात्मा ही है। तू यह जान ले और तहेदिल से मान ले, तो तू अपने **'गृह'** में स्थित हो जाएगा और प्रभु के हर तमाशे का रसास्वादन करेगा। हर क्षण परिवर्तनशीलता और सतत् गतिशीलता माया का **'सद'** है। यह परिवर्तन और गति सापेक्षता में है। अस्थिर और परिवर्तित होती विधा को स्थिर व अपरिवर्तनीय ही प्रमाणित करता है। उस स्थिर, अपरिवर्तनीय तथा अदृश्य का ज्ञान आत्मज्ञान अथवा अध्यात्म है। इसकी खोज भारत भूमि पर ही हुई। जो अवस्थाएँ तुझे अन्य में दर्शित हैं लेकिन तेरी स्वयं की दर्शित नहीं हैं, उनकी अनुभूति करेगा, तो वे अवस्थाएँ रहेंगी लेकिन तेरे लिए **'स्थिति'** हो जाएँगी और तुझे तेरे गृह में स्थित कर देंगी।

आद्याशक्ति माँ भवानी के मुख्यतः तीन स्वरूप (लक्ष्मी, पार्वती एवं सरस्वती) हैं। इन विभिन्न स्वरूपों के 108-108 रूप बताए गए हैं। इन्हें बारह से विभाजित करें, तो नौ में तीन सतोगुणी, तीन रजोगुणी एवं तीन तमोगुणी रूपों का उल्लेख शास्त्र में हुआ है। इसी प्रकार नौ ग्रह बारह गृहों (घरों) में गतिमान होते हुए विभिन्न गृहों में विभिन्न फल देते हैं। चौरासी लाख मानसिकताओं का संघनित रूप ये प्रमुख 12 मानसिकताएँ हैं, जिनमें तू जन्मों-जन्मान्तरों में अपने हेतु से विमुख होने के कारण भटक रहा है। इन मानसिकताओं में विभिन्न सुखदायी एवं दुःखदायी फलों का कारण ये विभिन्न ग्रह तथा उनका विभिन्न बारह ग्रहों में होना नहीं, तेरी मानसिकताएँ हैं। क्योंकि तेरी दृश्यमान देह का जगत का होना तेरे अपने होने के अनुसार होता है। इसी प्रकार कन्या, कुम्भ, मकर, कर्क आदि 12 राशियाँ हैं। **'राशि'** का अर्थ समूह होता है जैसे–धनराशि, जल राशि, पाप राशि, पुण्य राशि, जन राशि। हमारे ऋषियों, मुनियों ने ध्यान-समाधि में अनुभूत चौरासी लाख विविध मानसिकताओं के विभिन्न समूहों को विभिन्न वृत्तियों की प्राथमिकता के आधार पर मुख्य 12 राशियों में बाँटा है। उन गुप्त समूहों के विभिन्न

'नाम' रखे हैं। एक राशि तेरी तद्नुसार मुख्य मानसिकताओं का समूह है। नाप-तोल की मानसिकताओं की प्रतीक **'तुला'** राशि है। **'कन्या'** राशि चंचलता व अस्थिरता का प्रतीक है। **'सिंह'** राशि में निर्भीकता, गर्जन और स्वामित्व की मानसिकताएँ समाहित हैं। **'मकर'** यानि मछली अपार जल में भी प्यासी रहती है। अतः बहुत कुछ होने पर भी असंतुष्ट रहने की मानसिकताओं की द्योतक **'मकर'** राशि है। **'कुम्भ'** राशि संचय करने की मानसिकताओं का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार कुल मानवीय चौरासी लाख मानसिकताओं के विभिन्न समूहों को बारह राशियों में रखा गया है।

तू जान ले और मान ले, कि प्रभु हमेशा तेरे साथ ही हैं और तू उन्हें हर स्थिति में अपना हेतु मान ले। तू विभिन्न मानसिकताओं की ग्रहचाल से बाहर अपनी आनन्दमय मानसिक स्थिति में स्थित हो जाएगा। तेरी कोई भी मानसिकता तेरे हाथ में नहीं है। जिसके हाथ में सब कुछ है और जिस **'मन'** की विभिन्न मानसिकताएँ हैं, उस **'स्थिति'** में तू स्थित हो जा। ग्रहचालें व मानसिकताएँ फिर भी बदलती रहेंगी, लेकिन सब कुछ तेरे लिए हितयुक्त एवं अनुकूल ही होगा। जीवन के भयंकर तूफान भी तेरी महानता का हेतु बनेंगे, अन्यथा तथाकथित सुख और भोग भी तुझे घोर नरक में ले जाने का कारण बन जाएँगे। तू अपनी प्रत्येक मानसिकता को प्रभु को समर्पित कर दे। प्रभु की सम्मुखता और हेतुत्व में प्रत्येक मानसिकता भटकन का हेतु नहीं, विचरण का हेतु बन जाएगी। आत्म चिन्तन के लिए ग्रह-नक्षत्र-राशि रहित आनन्दमय मानस स्थिति में प्रविष्टि आवश्यक है। जिस भी राशि और ग्रहचाल की मानसिकता में तू है, उसका उल्लंघन करके आनन्दमय मानस में स्थित हो जा, तब हेतु के सम्मुख होते ही तू स्थित हो जाएगा। प्रभु की स्थिति में गति नहीं है:—

''न कित आएबो, न कित जाएबो''
''राम की दुहाई रे बाबा राम की दुहाई''

उस स्थिति में स्थित होने के लिए मुझे अपनी देह की उस स्थिति से आत्मसात् होना होगा जो **'एक ही'** थी, है और रहेगी, वह है—**देह की**

भस्मी। 'भस्मी' स्वयं में **'अवस्था'** नहीं **'स्थिति' है**; जो मुझ एक की एवं अन्य एक (जो, जब, जहाँ, जैसा भी था और होगा) की **एक ही** है, थी और होगी। **'मैं'** जब अन्य की **'भस्मी'** देखता हूँ, उसे गंगा, यमुना में प्रवाहित करता हूँ, तो वह मेरी देह की एक अवस्था और निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है। जब मैं ध्यान-समाधि में कभी भी होने वाली उस अवस्था की अवधारणा, चिन्तन व मनन करता हूँ, तो वह एक ऐसी **स्थिति** होती है, जो उस **'हेतु'** व **'होता'** (परमात्मा) की तरह स्थित होती है। उस स्थिति को **'विरक्ति'** कहते हैं। वह आनन्दमय एवं अभावमय **'स्थिति'** है। अपने हेतु से सम्पर्क एवं उसकी अनुभूति के हेतु मुझे अपनी देह की भस्मी स्थिति से आत्मसात् होना पड़ेगा। मेरे प्रत्येक होने में यह एकमात्र **'स्थिति'** ऐसी है, थी और होगी जो उस **'हेतु'** (परमात्मा) की तरह **'स्थित'** है।

''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''

(28 से 31 दिसम्बर 2011 एव 1 से 31 जनवरी 2012)

माया (नाम-रूप)

(भाग - 12)

अध्यात्म विद्या स्वयं में अनादि व अनन्त है और देह की समस्त सीमाओं से परे है। करना, पाना, खोना, होना सब सीमित हैं। इन दैहिक सीमाओं में मेरा अति विस्तृत होना भी अन्ततः सीमित ही रहता है। असंख्य प्राणी जगत में मानव-देह ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट, विलक्षण, परम रहस्यमयी एवं अति चमत्कारिक सुकृति है। प्रत्येक साधक के लिए अपने इस देह रूपी साधन को सिद्ध करना परमावश्यक है। जगत सहित जिस मानव देह का एक-एक रोम परमात्मा द्वारा ही निर्मित, पालित एवं संहारित है, वह असद् नहीं हो सकती।

परमात्मा एवं जीवात्मा **'नित्य'** हैं और मानव-देह जगत सहित **'नित नूतन'** है। नित नूतन जगत सहित देह का **'नित्यानन्द'** लेने के लिए नित्य परमात्मा के दृष्टा भाव जीवात्मा तत्त्व का स्वयं में नित्य **'मैं'** शब्द में प्रकाट्य होता है। यहाँ बहुत बड़ी समस्या यह हो गई, कि **'नित नूतन'** मानव-देह जब एक अतिरिक्त द्वारा रखे गए, अतिरिक्त नाम (जो देह के साथ नहीं आया था और दृश्यमान देह में भी प्रकट रूप से अदृश्य रहता है) से गुण्ठित व कुण्ठित हो गई, तब **'मैं'** शब्द प्रकट हुआ। नाम की स्वीकृति 'मैं' द्वारा हुई। वह **'नाम'** **'नित नूतन'** नहीं था, वही पुराना था, जो देह के जन्म के बाद रखा गया था। आत्म तत्त्व का शब्द रूप प्रतिनिधि **'मैं',** जो स्वयं में सर्व रूप है उस अस्थिर और परिवर्तनशील रूप के साथ तद्रूप सा हुआ, जो तद्नाम हो चुका था। इसलिए यह तद्रूपता धीरे-धीरे **'नाम-रूप'** की तद्रूपता में रूपान्तरित हो गई और मानव-देह अपना नित नवीन

व नवनीत यथार्थ स्वरूप खो बैठी। यद्यपि **'मैं'** का न कोई रूप है न नाम है, फिर भी समस्त नाम-रूपों का क्रियान्वयन एवं दृश्यमान सृष्टि के प्रदर्शन का प्रारम्भ **'मैं'** शब्द के बिना नहीं होता। इसलिए **मैं,** एक मानव-देह सहित जगत की असंख्य भिन्न-भिन्न विधाओं एवं अवस्थाओं में कुण्ठित व गुण्ठित हो गया। अतः **'मैं'** शब्द भी आत्मत्त्व खो कर अमुक नामक मानव-देह के साथ तद्रूपता सी में **'अत्युक्ति सन्देह'** नामक जटिल्य (Complex) बन गया।

'मैं स देह हूँ' भाव **'मैं देह हूँ'** सन्देह में रूपान्तरित हो गया। **'मैं देह हूँ'** यह भाव स्वयं में सन्देह है और **'मैं अमुक-अमुक देह हूँ'** यह मात्र सन्देह नहीं **अत्युक्त सन्देह** है। अर्थात् यहाँ देह नाम की हो गई। यहाँ अज्ञान की इतनी पराकष्ठा हो गई, अज्ञान (संदेह) ही मानव का तथाकथित ज्ञान एवं स्वभाव बन गया। यहाँ सन्देह जटिल से जटिलतम हो गया और स्वयं में यह जटिल्य **'अत्युक्ति सन्देह'** बन गया। भ्रम जटिल दर जटिल होने से हर मानव देह एक अतिरिक्त नाम से अत्युक्त हो गई। जीव नाम से **'अत्युक्त'** हो गया और **'मैं देह हूँ'** कहना अत्युक्ति बन गया। नाम का यह गुण्ठन स्वयं में अदृश्य रहता है। इस **'अत्युक्ति जटिल्य'** (Complex) का क्रियान्वयन **'मैं'** शब्द करता है।

'मैं' स्वयं में आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द ब्रह्म है, इसलिए सबकी **'मैं'** एक ही है और एक ही **'मैं'** सबकी है। मानव-देह स्वयं में समष्टि है और **'मुख'** व्यष्टि है। व्यष्टि, समष्टि में है और सम्पूर्ण समष्टि का प्रतिनिधित्व करती है। देह में, देह का मुखिया अथवा प्रतिनिधि **'मुख'** है। किसी भी मानव को उसके **'मुख'** से ही पहचाना जाता है। मुख, देह से पृथक् नहीं है। मुख, देह में है और मुख है, तो देह है। यह तथ्य देह के किसी अन्य अंग के लिए कहने में नहीं आ सकता। हाथ-पैर अथवा किसी अन्य अंग के बिना देह हो सकती है, लेकिन **'मुख'** के बिना देह का होना सम्भव नहीं है। यही मुख की मुख्यता, प्रमुखता और प्रतिनिधित्व है।

'मैं देह हूँ' यह अदृश्य मानसिक भाव है और जीव-सृष्टि में देह सहित

जगत के अनेकों नामरूपों में इसका प्राकट्य एक **'जीव'** है लेकिन हर व्यक्ति अपने नाम-रूप में व्यक्तिगत है। अपने छोटे से परिवार, मकान, सम्पत्ति, धन, पद-प्रतिष्ठा, धर्म, कर्म, सम्बन्धों में सीमित हुआ हुआ है। किसी भी दृश्यमान रूप से यह सीमितता दिखाई नहीं देती, कि वह कितना कुण्ठित व गुण्ठित है। **'नाम'** की **'रूप'** से साथ पड़ी गाँठ अदृश्य रहती है। **'नाम'** दिखाई नहीं देता, मात्र सुनाई देता है और चेहरा या **'रूप'** दिखाई देता है। कोई व्यक्ति कहाँ-कहाँ अपना **'नाम'** चाहता है, यह उसे स्वयं भी ज्ञान नहीं होता। लेकिन **'नाम'** की कुण्ठा एवं गुंठाओं से हर व्यक्ति पीड़ित है। जीव स्वयं को उस नाम से जनवाना चाहता है, जो **'नाम'** उसके साथ आया नहीं और मृत्योपरान्त देह के दहन होने पर भी यहीं अवशेष रूप में रह जाता है। **'मैं'** दृष्टा **'नित्य'** है, **'तू'** (स्रष्टा) **'नित्य'** है और अनादि काल से एक ही है तथा मानव-देह **'नित नूतन'** है। प्रश्न उठता है, कि एक नाम से **'कुण्ठित व गुण्ठित'** होने के कारण मिलावट, बनावट, सजावट, दिखावट, थकावट, रुकावट एवं गिरावट; इन सात **'वटों'** से **'गुण्ठित'** मानव-देह नित नूतन कैसे हो सकती है? **'मैं देह हूँ'** जटिल्य में इन सात वटों से कुण्ठित व गुण्ठित दृश्यमान मानव-देह की गुण्ठा एवं कुण्ठा भी अदृश्य है। पल-पल बदलती नित नूतन मानव-देह में **'नाम'** के कारण एक निरन्तरता भासती है। अपनी पचास वर्ष पुरानी फोटो दिखाते हुए **'मैं'** कहता है, ये **'मैं'** हूँ। जब **'मैं यह था'** तब ऐसा हुआ था। इस प्रकार नित्य शाश्वत् सर्वव्यापी **'मैं'** भी कुण्ठित व गुण्ठित हो गई। **'नित नूतन'** रूप **'नाम'** एक होने के कारण नित नूतन नहीं रहा।

प्रत्येक मानव-देह की आन्तरिक प्रणालियाँ, अवयव एवं क्रियाएँ लगभग एक सी हैं। इसमें अदृश्य रूप से स्वतः अगणित क्रियाएँ परस्पर सुसम्बद्ध एवं दशानन (अविरल, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, परम विशिष्ट, अति सारगर्भित, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) रूपों में आजीवन होती रहती हैं। हे मानव! इसका सर्वाधिकार प्रभु के पास ही है। तुझे सोचना होगा, कि इतनी रहस्यमयी और अद्भुत मानव-देह तुझे क्यों दी

गई है? यह उपहार नहीं है, तुझसे कभी भी छीन ली जाएगी। तूने स्वयं को जीवित नहीं रखा हुआ, तुझे किसी ने जीवित रखा हुआ है तो तू जीवत है। तू उससे पूछ, कि तुझे जीवित क्यों रखा हुआ है। ऐसा कौन सा कार्य है, जो तेरे बिना नहीं हो सकता। तू क्यों है? मानव-देह, तुझे एक सुवर्ण अवसर मिला है, इसे व्यर्थ करने की सज़ाएँ मिलेंगी।

दैहिक व बौद्धिक विकास की एक विशिष्ट अवस्था में किसी समय मानव शिशु को अपने नाम का बोध हो जाता है और वह उस नाम को स्वीकार कर लेता है। तभी वह अपने माता-पिता तथा अपनी देह सहित जगत की विभिन्न विधाओं को स्वीकार करता है। इस स्वीकृति को **'मैं'** शब्द प्रमाणित करता है। यह **'मैं'** जन्मों-जन्मान्तरों से चला हुआ **'मैं'** जटिल्य (Complex) है, भ्रम है। एक नाम की स्वीकृति के साथ असंख्य स्वीकृतियों का सिलसिला शुरू हो जाता है, जो आज तक नहीं थीं और पंच महाभूतों की सृष्टि की विभिन्न सांसारिक स्वीकृतियों का माया जाल घेर लेता है। यहीं से **नामरोग** का ग्रास जीव को ग्रसने लगता है। **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित होने के कारण पल-पल बदलता हुआ हर रूप अपना ही लगता है। **'मैं'** बदलती नहीं है और एक जन्म में जगत व्यवहार की दृष्टि से नाम भी एक ही रहता है। जब भी किसी ने कहा, कि **'देह मेरी है'** (देहाधिपत्य) अथवा **'मैं देह हूँ'** (देहाध्यास) तो इसका अर्थ है, कि उसका अमुक-अमुक नाम है। **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य इस तथ्य का द्योतक है, कि कोई रूप या देह एक **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित हो चुकी है।

तेरा नाम, देह के नाम से है। देह नश्वर है, तो नश्वर का नाम तूने अपना लिया है। नाम बाद में ऊपर से रखा गया था, इसलिए **'ऊपरा'** था, लेकिन वह ऊपरा नहीं रहा। न केवल तेरा हो गया, बल्कि तू वह नाम ही हो गया। साथ ही जो कुछ तेरे लिए था, वह तेरे **नाम का** होकर रह गया। धन, प्रौपर्टी, पत्नी, सन्तान, भूमि, अन्य चल-अचल सम्पति, बैंकों के खाते जो-जो तेरे नाम से होते हैं, तुझे ही खाते रहते हैं। देह की आयु, देह की कोई भी अवस्था, धर्म, कर्म, देश, काल, बाहरी देह, भीतरी देह सब कुछ तेरे नाम से

होता है। इसके बाद हर सोच, हर पाना, हर खोना, हर सम्बन्ध, हर लेना, हर देना, हर मिलना, हर बिछुड़ना, हर हालत, हर हालात यानि कि हर, हर, हर में जितने भी हर (मित्र, शत्रु, सुख, दुःख, लाभ, हानि, जन्म, मृत्यु, उन्नति, अवनति, खाना, पीना, ऊँचाई, निचाई आदि-आदि) हैं, थे और होंगे; तेरे लिए उलझन, जाल और अनेकानेक प्रश्नों की श्रंखला बनते रहे। यह हर-हर तेरी **'हार'** बना और तू एक चक्रव्यूह में फँसता चला गया। हर व्यक्ति **'नाम-रोग'** में फँसा है। इसे मैंने फँसास्वादन कहा है। जितना परिश्रम और भाग-दौड़ तूने अपने तथाकथित नश्वर नाम के प्रचार-पसार के लिए की है, उतनी यदि अपने नाम को प्रभु के नाम करने के लिए की होती, तो तुझे नाम-रोग से छुटकारा मिल जाता।

आत्मज्ञान का प्रथम अत्यावश्यक सोपान **'अनात्म ज्ञान'** है। **'मैं देह हूँ' यह 'अत्युक्ति जटिल्य' है, यह ज्ञान स्वयं में अनात्म ज्ञान है।** जीव **'मैं देह हूँ'** कहने की स्थिति में जब नहीं होता, तो वह अवचेतना में भी नहीं होता, अर्थात् **'जड़ता'** में होता है। इस जड़ता में देह की पाँच अवस्थाओं में से कोई भी हो सकती है—गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था। इनमें किसी को अपने होने का बोध नहीं होता। मानव-देह की इन पाँच अवस्थाओं में यह **'अत्युक्ति जटिल्य'** होते हुए भी अप्रकट रहता है, क्योंकि **'मैं'** शब्द प्रकट नहीं होता। **'मानव-देह'** स्वयं में युगों-युगान्तरों के भूत, भविष्य सहित समस्त दृश्यमान सृष्टि की प्रतिनिधि है। **'मैं'** देह पर अथवा देह, **'मैं'** पर थोपी नहीं गई, लेकिन **'नाम'** देह पर थोपा गया। वह नाम जो अतिरिक्त था **मानव-देह** पर इतना हावी हो गया, कि सम्पूर्ण महा ब्रह्माण्ड की प्रतिनिधि देह अपनी ही समष्टि से कट गई। **'मैं'** शब्द जो सर्व रूपों का एक ही है, **नाम** के कारण एक रूप से तद्‌रूपता सी में नामक देह के साथ प्रतिबद्धता में कुण्ठित व गुण्ठित हो गया। समस्त जगत इसके लिए पृथक् हो गया। न **'नाम'** का अपना कोई **'रूप'** है और न **'मैं'** का अपना कोई रूप अथवा नाम है।

आत्मतत्त्व दृष्टा है। मानव-देह की **जीवन्तता** को **'मैं'** शब्द में प्रकट

होकर जब प्रमाणित करता है, तभी समस्त सृष्टि सहित मानव-देह जीवित कहलाती है और क्रियान्वित होती है। भ्रमवश, अज्ञानवश मैं (जीव) ने स्वयं को उस देह के साथ तद्‌रूप सा, अस्थिर सा एवं बदलता सा मान लिया, अतः **'मैं'** का **'होना'** मानव-देह व जगत के समान क्षण-क्षण बदलता रहा। यहाँ मानव-देह का यथार्थ, **'मैं'** (दृष्टा) की विशुद्धता और स्रष्टा (परमात्मा) का ईश्वरत्व आवृत हो जाता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

एक मानव-देह का जगत सहित क्रियान्वयन, निर्देशन एवं संचालन देहातीत क्षेत्र से होता है। देहातीत हम सबका एक ही **था,** एक ही **है** और एक ही **होगा। 'था', 'है' और 'गा'** भी देह के सन्दर्भ व सापेक्षता में कहा जाता है अन्यथा देहातीत है, है, है। मृत्यु का कोई समय किसी भी मानव के लिए सुनिश्चित नहीं है, लेकिन मृत्यु होगी यह निश्चित है। मृत्योपरान्त देह के चिता में **'दहन'** होने पर देह जल जाती है और भस्मी बन जाती है। लेकिन **'नाम'** नहीं जलता और **'मैं'** जटिल्य (Complex) भी ज्यूं का त्यूं बना रहता है। इस जटिल्य (Complex) में उसके संस्कार, भाव, स्वभाव, मर्यादाएँ, अमर्यादाएँ, प्रतिभाएँ, पसन्द, नापसन्द, नीतियाँ, रीतियाँ, प्रेम, घृणा, धर्म, सम्बन्ध, धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा आदि मुख्य तत्त्व अदृश्य रूप से समाहित रहते हैं। जीवन-काल में रूप पल-पल जैसा भी बदलता रहा **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित ही रहा। अतः रूप के बदलने पर भी जीवन-काल में जितने विभिन्न **'रूप'** उसी नाम ने बदले थे, सबके साथ **'मैं'** की तद्‌रूपता बनी रहती है।

अगले जन्म में दैहिक, बौद्धिक विकास की प्रक्रिया में जैसे ही कोई भी एक रूप पुनः किसी भी एक नाम को स्वीकार करता है, तो यह **'मैं'** जटिल्य (Complex) पुनः ज्यूं का त्यूं प्रकट हो जाता है और पल-पल बदलते रूपों में **'नाम'** की अत्युक्तता में पुष्ट दर पुष्ट होता रहता है। यह **'मैं'** जटिल्य युगों-युगान्तरों एवं कल्पों-कल्पान्तरों से किसी भी रूप और किसी नाम की अत्युक्तता में वैसे का वैसा बना हुआ है। प्रभु ने इस **'मृत्यु'** रूपी महा ऑपरेशन के द्वारा **'रूप'** समाप्त कर दिया। किसी भी बड़े ऑपरेशन के

बाद कुछ समय विश्राम आवश्यक होता है। देह के समस्त कार्यक्रमों को रोक दिया जाता है। **'मैं'** तद्‌नाम **'रूप'** की समस्त विधाओं से कुण्ठित व गुण्ठित **'तद्‌रूप सी'** सुषुप्त अवस्था (जड़ता) में पड़ी रहती है। जीव के अदृश्य मानस में एक रूप और एक नाम की **'ग्रंथि'** अदृश्य रूप से बनी रहती है और यह **'मैं'** जटिल्य अप्रकट हो जाता है। यही अगले जन्म का **'शैशव'** है, जिसमें पुराने रूप व तद्‌नुसार नाम की स्मृति समाप्त कर दी जाती है। किसी भी **'नाम'** से कुण्ठित व गुण्ठित किसी भी मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेने में प्रकट होते ही **'मैं'** जटिल्य अपनी समस्त अदृश्य विधाओं के साथ जाग्रत हो जाता है। दैहिक, बौद्धिक विकास का जन्मों-जन्मान्तरों में क्रम सा बना रहता है, लेकिन चेतना का विकास नहीं हो पाता। इष्ट कृपा, सद्‌गुरु कृपा से चेतना का विकास तब होना शुरू होता है, जब जीव को किसी जन्म में अपने अज्ञान (मैं देह हूँ) का ज्ञान हो जाता है।

प्रभु ने यह मृत्यु रूपी महा सर्जरी इसलिए रखी है, कि मानव होने के नाते **'मैं'** जान सकता है और मान सकता है, कि **'मैं'** कोई देह नहीं है। देह के साथ स्वयं की पहचान सबसे बड़ा अज्ञान है। मानव होने के नाते तुझे अपने अज्ञान का ज्ञान हो सकता है। तुझे जिज्ञासा होनी चाहिए, कि तुझे ऐसी मानव-देह दी गई है, जिसे देने वाला कभी भी वापिस ले सकता है। तू अपने साथ प्रकट जगत में लोगों को मरते व भस्मी बनते देख सकता है। तू स्वयं में शाश्वत्, अजर व अमर है और परम पिता परमात्मा का एकमात्र मानसपुत्र जीवात्मा है। **'मैं'** शब्द-रूप में तेरा प्रतिनिधि शब्द है, तू स्वयं नहीं है। लेकिन **'मैं'** के होने पर ही तेरे लिए युगों-युगान्तरों की दृश्यमान सृष्टि का प्रदर्शन होगा। तू मात्र दृष्टा है और इस समस्त सृष्टि में निर्माण, पालन और संहार परमात्मा के ही अधीन है इनमें संहार सर्वोपरि है, क्योंकि कभी भी, कहीं भी और निर्माण व पालन की किसी भी अवस्था व स्थिति में हो सकता है। देह द्वारा देह का सदुपयोग करते हुए **'मैं'** जटिल्य (Complex) से तू अपनी विशुद्ध **'मैं'** (आत्मतत्त्व) को निथार ले। इसके लिए तुझे नित्य ध्यान-समाधि में

अपनी मृत्यु और भस्मी की अवधारणा करते हुए मानस में इनसे गुज़रना होगा। धीरे-धीरे तुझे आभास होने लगेगा, कि तेरा जन्म एवं मृत्यु तेरी मिथ्या धारणायें हैं।

तेरी देह की पाँच अवस्थाओं (गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था) में यह **'मैं'** जटिल्य (Complex) सुषुप्त रहता है अर्थात् होते हुए भी प्रकट नहीं होता। जहाँ तेरा जटिल्य (Complex) लुप्त हो जाता है, वह तेरी जड़ता है और जहाँ प्रकट होता है और तू उठ जाता है, वह तेरी अवचेतना है। इस अवचेतना में चेतना के अनुपात के अनुसार तेरा होना होता है तद्नुसार समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों एवं स्थितियों में तेरे लिए तेरी देह सहित जगत प्रकट होता है। तेरे होने का आकलन तेरी भौतिक प्राप्तियों, पद, प्रतिष्ठा एवं बाह्य चमक-दमक से नहीं, चेतना के स्तर की वृद्धि से होगा। चेतना का स्तर आयु की वृद्धि और भौतिक लब्धियों की वृद्धि से नहीं बढ़ता। किसी भी प्राणी से मानव की स्वाभाविक चेतना अधिक होती है, लेकिन आध्यात्मिक चेतना विवेक, मेधा, प्रज्ञा एवं ऋतम्भरा युक्त होती है। इसका विकास सद्गुरु कृपा से हुए पुरुषार्थपरक प्रकरणों द्वारा होता है। चेतना का विकास एक बार होकर कम नहीं होता और जन्मों- जन्मान्तरों में विकसित होता रहता है। चेतना के साथ आनन्द भी समान अनुपात में बढ़ता रहता है। संत महापुरुष चेतना से परिपूरित होते हैं और आनन्द में देह धारण करते हैं। उन्हें देह धारित नहीं होती। अपनी इच्छा से खेलने के लिए वे कोई भी देह अस्थाई रूप से धारण कर लेते हैं। एक ही देह में कोई भी रूप धारण कर लेते हैं। उन्हें सभी देहों पर अधिकार होता है। देह धारण करने के लिए उन्हें भी किंचित अवचेतना (माया) का स्पर्श लेना पड़ता है।

सम्पूर्ण साकार एवं निराकार दृश्यमान सृष्टि स्वयं ईश्वर के **'चेतन'** एवं **'आनन्द'** के समन्वय का बाह्य प्रकाट्य है, इसलिए यह दृश्यमान माया भी स्वयं में **'सद्'** है। माया की दो विधाएँ साथ-साथ हैं। **'चेतन'** का प्रकाट्य **'सब कुछ'** है और **'आनन्द'** का प्रकाट्य **'कुछ नहीं'** है। आनन्द

'कुछ नहीं' में है, इसलिए शास्त्र में आनन्द को **'अभावमय'** कहा है। निर्माण, पालन और संहार तीनों माया में हैं, लेकिन अभावमयता **'संहार'** में है। दृश्यमान सृष्टि में अभावमयता का प्रतीक एक पदार्थ है, जिसे **'भसम'** कहते हैं। यह **'भसम'** स्वयं में **'कुछ नहीं'** है और आत्मतत्त्व की जागृति का हेतु है। एक ओर स्रष्टा ईश्वर एवं दृष्टा जीवात्मा अदृश्य है और दूसरी ओर माया में **'संहार'** अदृश्य है। सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि में समस्त निर्माण एवं पालन स्वयं में सहज जड़ पंच महाभूतों द्वारा होता है और **संहार** इन्हीं पंच महाभूतों में विलय होते हुए होता है। पूर्णतः विलय होने के साथ ही **भसम** नामक तत्वातीत तत्त्व प्रकट होता है। यह **भसम** पारब्रह्म परमेश्वर की विरक्ति शक्ति का द्योतक पदार्थ है, जो समस्त निर्माण एवं पालन के दौरान अदृश्य रहता है। जिसका निर्माण और पालन दृश्यमान होता है, उसका अवश्यम्भावी **संहार** अदृश्य रहता है। **'निर्माण** और **'पालन'** **'चेतना'** के हैं और **'संहार'** **'आनन्द'** है। अतः यह **'सब कुछ'** स्वयं में **'कुछ नहीं'** है। परमात्मा एवं जीवात्मा की भाँति **'संहार'** भी नित्य है।

'संहार' में **'हार'** शब्द छिपा है। जीतने वाले को जीत का अभिमान न हो इसलिए जीते हुए के गले में, हारे हुओं के द्वारा हार पहनाया जाता है। इस **हार** का अर्थ जीता हुआ यदि नहीं समझता, तो **जीत** का नशा उसे अहंकार की गर्त में ले जाता है। अनेकों के हारने के बाद कोई एक जीतता है, बिना किसी के हारे कोई जीत नहीं सकता। **'संहार'** में **'हार'** के साथ **'सं'** जुड़ा है। **'संदेह', 'संधि'** और **'संहार'** तीनों शास्त्रीय शब्द हैं। मानव-देह एवं जीव के लिए यह तीनों बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जीते जी संहार में प्रविष्टि **'संक्रान्ति'** है और एक प्रकार से देह व दृश्यमान जगत का **'संक्रमण'** है। यह संक्रमण नित्य होना चाहिए। जीते जी आपके **'सब कुछ'** की **'कुछ नहीं'** में प्रविष्टि होनी आवश्यक है। **यह संक्रमण, आक्रमण नहीं है**। आक्रमण में उग्रता होती है और संक्रमण में समर्पण है। अपने स्वरूप की ओर उन्मुख होते हुए उसमें प्रविष्टि, मानव होने के नाते मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मुझे संक्रमण करना है, कि प्रभु ! सब कुछ तेरा है, मेरा **'कुछ**

नहीं' मेरे होने में दिखा दे।

''ॐकार 'बिन्दु' संयुक्तं नित्यं ध्यायन्तियोगिनः,
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः।''

संदेह, संशयात्मक, संशयपूर्ण, संशय, संचय, संग्रह, संधि, संहार, संक्रान्ति, संक्रमण सब बिन्दु युक्त हैं। 'मैं देह हूँ' यह '**सन्देह**' है और 'मैं भस्मी हूँ' यह '**संहार**' है। **'भस्मी'** सम्पूर्ण जीवन के समस्त अनेकानेक प्रश्नों का एकमात्र **'अर्थ'** है। किसी भी प्रश्न का अर्थ प्रश्न से निकाला जाता है। अर्थ निकालने के बाद प्रश्न से बाहर आ जाता है। जीवन प्रश्नों से भरा हुआ है, लेकिन सबका उत्तर एक ही है—संहार। अन्त (मृत्यु) के अन्त में **'कुछ नहीं'** (भस्मी) का प्रकाट्य होता है। संसार में जितनी भी मानव-देहें हुईं और अनन्त तक होंगी उनमें यह पदार्थ (भस्मी) एक ही है। यह **'भसम'** ही मानव जीवन का **'अर्थ'** है। यह **'अर्थ'** मानव होने के नाते मैं जानता हूँ और मानता हूँ, लेकिन फिर भी आजीवन असंख्य प्रश्नों में उलझा रहता हूँ। विभिन्न प्रश्नों को हल करने की प्रक्रिया में अस्त-व्यस्त ही रहता हूँ। मुझे इस **'अर्थ'** का अधिग्रहण करके एवं **'संहार'** से आत्मसात् होकर जीवन में प्रविष्ट होना है। अपनी **'भस्मी'** से अवगत होते हुए आत्मसात् होने पर जीवन **'प्रश्न'** नहीं रहता, मेरे इष्ट का मेरे लिए **'प्रदर्शन'** होता है।

'भस्मी' मेरा अपना **'कुछ नहीं'** है। मेरी अपनी पहचान (I.D.) है। किसी देश के वैध वीज़ा के बिना उस देश में रहना किसी भी व्यक्ति को हर समय भयभीत, विक्षिप्त और त्रसित रखता है। वह वहाँ कुछ भी कर-करवा कर सुखी, शान्त व संतुष्ट नहीं रह सकता। यदि पकड़ा जाए, तो सज़ाएँ भुगतता है और उसे देश से अपमानित करके निकाल दिया जाता है। साथ ही पुनः उस देश में प्रविष्टि से वर्जित कर दिया जाता है। इसी प्रकार कोई मानव, प्रभु से योग युक्त होकर इस संसार में ससम्मान, सुखपूर्ण, समस्त भोगों को भोगते हुए रहना चाहता है, तो उसके पास एक दैवीय पहचान पत्र (I.D) का होना आवश्यक है। दैवीय पहचान पत्र बिना नाम, बिना रूप, बिना किसी पते के होता है और एक बार मिल जाने पर कभी नष्ट नहीं होता।

अतः यह **अकाल, अरूप एवं अनाम है।** देह की एक ही अवस्था ऐसी है, जो इस पहचान पत्र की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वह है तेरी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य—डेढ़ दो किलो **भसम।** तू अपनी देह के उस निश्चित भविष्य को सुनिश्चित कर ले और परिलक्षित को लक्ष्य बना कर उस दर्शित का दर्शन कर ले। यही तेरा निजी व्यक्तिगत कर्म है। **'भसम'** ऐसा पदार्थ है, जो जीवात्मा के पद का अर्थ है। ध्याग्नि में देह के **'दहन'** के बिना मानव-देह और नाम का **'नवीनीकरण'** नहीं हो सकता और मानव-देह की नित नूतनता दर्शित एवं प्रमाणित नहीं हो सकती। तुझे मानस प्रकरण में **'रूप'** का दहन व भस्मीकरण करते हुए नित्य **'मैं'** को उस देह की भस्मी से आत्मसात् एवं अत्युक्त करना होगा, कि मैं भस्मी हूँ। नित्य यह नित्याध्यासन करने में नामक देह के साथ अन्य सात वटों की गाँठों का गुण्ठन भी जल जाएगा। कृपया एकाग्र करिए।

पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि के क्रमशः **'थर-थर', 'कल-कल', 'सर-सर', 'घर-घर' एवं 'हर-हर'** नाद हैं। पाँचों तत्त्वों में अग्नि विशुद्धतम है, जिसे कभी भी प्रदूषित नहीं किया जा सकता। **'अग्नि'** तत्त्व को भगवान ने यह अधिकार दिया है, कि पंच महाभूतों की मानव-देह को अग्नि सहित पंच महाभूतों में विलय करे। **'अग्नि'** पंच तत्त्वों में प्रमुख एवं सर्वोपरि है। एक अग्नि के अष्टादश प्रकार हैं। कहीं अग्नि प्रकट है, कहीं अप्रकट है। इनमें ज्ञानाग्नि सर्वोपरि है, जो स्वयं में अप्रकट है। **'हर-हर'** भगवान शंकर का अपना नाद है; **'हर'** शब्द का स्रोत **हर्ष** है और **'हर'** हर्ष, ऊर्जा व शक्ति का द्योतक है। आनन्दमय, हर्षित एवं उल्लसित मानस ईश्वरीय ही होता है। हर्ष-उल्लास खुशी-गमी अथवा दुःख-सुख में समान रहता है। उल्लास, उत्साह, उत्सव पयार्यवाची शब्द हैं। हर्ष के साथ उल्लास होता ही है। उल्लास के साथ अभय और अभय के साथ आरोग्यता होगी। जहाँ हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता होगी, वहाँ **'सर्व सम्पन्नता'** होगी। भगवान शंकर की इन पाँच विभूतियों के अधिग्रहण के लिए **अग्नि तत्त्व** महत्त्वपूर्ण है।

मानव जीवन स्वयं में **'यजन'** है। सद्गुरु के सद् निर्देशन में यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र द्वारा ज्ञान व भक्ति की सिद्धि का हेतु यज्ञ है। यज्ञ में हम नारियल के गोले, श्रीफल, समिधा, सामग्री आदि विभिन्न पदार्थ अर्पित करते हैं, तो उनमें अदृश्य रूप से समाहित अग्नि, अग्नि द्वारा प्रज्ज्वलित होती है। अग्नि द्वारा ही पदार्थों में समाहित अग्नि प्रकट होती है; अन्य तत्त्वों में वायु एवं आकाश सहायक हैं और पृथ्वी एवं जल प्रतिरोधी हैं। **'जिस अग्नि'** द्वारा ज्वलनशील पदार्थों की अग्नि प्रकट होती है, वह लुप्त हो जाती है अथवा कर दी जाती है तथा ज्वलनशील पदार्थों में समाहित अग्नि देदीप्यमान हो उठती है। इस ज्वलनशीलता में अद्भुत एवं विलक्षण **शीलता** रहती है। यज्ञ में अर्पित समिधा आदि विभिन्न पदार्थों का ज्वलनशील अग्नि तत्त्व पहले प्रज्वलित होता है, तभी यज्ञाग्नि प्रकट होती है। ज्वलनशील अग्नि तत्त्व के प्रज्ज्वलन से अग्नियुक्त **भस्मी** का प्राकाट्य होता है। **भस्मी** के प्रकट होने के साथ **'हर-हर'** नाद प्रकट होता है। यह **अग्नि** देव का आध्यात्मिक रहस्य है। यज्ञ में अर्पित पदार्थों में समाहित अग्नि, जब अग्नि द्वारा प्रज्ज्वलित हो जाती है, तो पदार्थों का विलय एवं अग्नि युक्त भस्मी का प्राकाट्य साथ-साथ **हर-हर** नाद के साथ होता है। पंच महाभूतों की चराचर सृष्टि में प्रत्येक पदार्थ के जलने से भस्मी का प्राकाट्य नहीं होता। उदाहरणतः गैस सिलेण्डर में समाहित गैस अग्नि की चिंगारी की सहायता से अग्नि रूप में प्रकट होती है, लेकिन वहाँ हर-हर नाद एवं भस्मी का प्राकाट्य नहीं होता।

अग्नि के साथ **भस्मी** के प्राकाट्य में ही **'हर-हर'** नाद प्रकट होता है। जहाँ चेतना व आनन्द का समागम होता है, वहाँ से **'हर'** ध्वनि प्रकट होती है। **'हर'** शब्द सम्पूर्ण मायिक सृष्टि का **'सद्'** है और सद्, चेतन, आनन्दमयी सृष्टि का उद्बोधक है। यहाँ अवचेतनामयी, अवसादमयी, जड़तामयी सृष्टि रहती ही नहीं, **'सद्'** सृष्टि का ही प्राकाट्य होगा। अन्य क्षणिक पदार्थ अग्नि के प्राकाट्य से क्षय होते हैं, लेकिन भस्मी ऐसा पदार्थ है, जो **'अक्षय'** है। अक्षय पदार्थ **'भस्मी'** और **'हर-हर'** नाद साथ-साथ प्रकट

होता है। उससे पहले **'हर-हर'** नाद प्रकट नहीं होता। **'अग्नि'** **'चेतना'** की द्योतक है और **'भस्मी'** **'आनन्द'** की प्रतीक है। पदार्थों का जलना **'चेतना'** का द्योतक है और उन के विलय होने के साथ-साथ **भस्मी** का प्रकाट्य **आनन्द** का द्योतक है। **'सब कुछ है'** (चेतना) और **'है कुछ नहीं'** (आनन्द) अर्थात् जलते हुए असंख्य पदार्थ **'सब कुछ है'** और प्रकट होती **'भस्मी'** **'है कुछ नहीं'।**

समस्त पदार्थों का भस्मी में रूपान्तरण अभावमय आनन्द है। **'पदार्थ'** असंख्य हैं, **'भस्मी'** एक ही है। कोई पदार्थ चाहे जितना भी बहुमूल्य हो अथवा कम मूल्य का हो **'भस्मी'** में रूपान्तरित होकर वह **'एक'** ही है। **'मैं'** आत्मतत्त्व विशुद्ध चेतना है, जो दृष्टा है। **'मैं'** तत्त्व मानव-देह के साथ नाम-रूप में तद्‌रूप सा **'अवचेतना'** में हुआ। यहाँ चेतना आच्छादित हो जाती है। जब **'मैं'** तत्त्व प्रकट होकर देह की **'भस्मी'** से आत्मसात् हुआ, तो आनन्द से जुड़ते ही **'मैं'** का अवचेतना में हुआ आच्छादन समाप्त होने लगा। **'मैं'** (तत्त्व) पुनः दैदीप्यमान हो उठा। तू और कुछ बने या न बने **'भस्मी'** अवश्य बनेगा। **'भस्मी'** में तुझे बोध नहीं होगा, कि तू **'खाक'** है जैसे मृत्यु में तुझे बोध नहीं होगा, कि तू मृतक है। निद्रा में तुझे बोध नहीं होता, कि तू सुषुप्त है। शैशव में तुझे बोध नहीं होता, कि तू शिशु है। गर्भावस्था में तुझे बोध नहीं होता, कि तू गर्भ में है और तेरी देह का निर्माण हो रहा है। जब तू इन अवस्थाओं का ध्यान करेगा, तो तेरी वह स्थिति **'बोधमय'** होती है। तुझे **'बोधता'** के अन्तरंग में प्रविष्टि मिल जाती है। यही **'बोध'** एवं **'ज्ञान'** है। एक अग्नि शक्ति ही है, जो **'सब कुछ'** को **'कुछ नहीं'** बना देती है।

'देह न' ही यह **'दहन'** है। एक अग्नि के अठारह स्वरूप हैं, जिनमें अन्तिम एवं सर्वोपरि **'ज्ञानाग्नि'** है। ज्ञानाग्नि **'सब कुछ'** का **'दहन'** कर देती है। ज्ञानाग्नि के प्रकाट्य का प्रथम सोपान **'सन्देह'** के ज्ञान में अन्तर्हित है, कि मैं देह नहीं हूँ। जब ज्ञानाग्नि प्रकट होती है, तो जन्मों-जन्मान्तरों के 'मैं देह हूँ' सन्देह नामक अज्ञान रूपी तिमिर को लील जाती है। ज्ञानाग्नि के प्रकाट्य से पूर्व अज्ञान का लोप होना प्रारम्भ हो जाता

है। जीव को अपने अज्ञान का ज्ञान होना ही इसका शुभारम्भ है। वहाँ दैव शक्तियों की कृपा से **मन, मनन** में लग जाता है। अर्थात् चिन्तायुक्त **'मन'** का **'न'** रहना देखा जा सकता है। अतः क्षुद्र मानसिकता समाप्त हो जाती है। सत्व का बल जब प्रचुर हो जाता है, तब तामसिक शक्तियाँ भी सहायक होने लगती हैं। सत्व, सद् तत्त्व है, जिसकी जागृति **'ज्ञानाग्नि'** है। ज्ञानाग्नि का प्राकट्य अज्ञान के ज्ञान से होता है। इस जिज्ञासा रूपी अग्नि का बीज हमारे भीतर है:–

''हिरण्यगर्भ गर्भस्थं हेमबीजम् विभावसो,
अनन्तं पुण्यं फलदमतः शान्तिम् प्रयच्छ मे।''

यही जिज्ञासा रूपी चिंगारी है। सद्‌गुरु के सद्‌निर्देशन में ध्यानाग्नि की ज्ञानाग्नि से तुझे अपने **'देह न'** स्वरूप का **'दर्शन'** (दरशन) हो जाएगा। इस प्रक्रिया में जटिल्य का महत्त्वपूर्ण अंग **'रूप'** अरूप हो जाएगा और तेरा **'नाम'** जो **'रूप'** से अत्युक्त हो गया था, वह स्वतन्त्र हो जाएगा। देह की भस्मावस्था में देह नहीं रहती। जब जीते जी ध्यान में अपनी देह की उस अवस्था को आत्मसात् किया, कि 'मैं भस्मी हूँ' तो अपनी देह के उस अरूप रूप का दर्शन कर लिया, जो नाम रहित होगा। अपने उस जन्म के अतीत के सब रूप, आपके पास फोटो रूप में होते हैं, लेकिन भविष्य में प्रकट होने वाला कोई सुनिश्चित रूप आपके पास नहीं होता। निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य एक ही है, वह है आपकी देह की भसम। यह भसम सबकी एक ही है, क्योंकि नाम-रूप रहित है। यहाँ ध्यान में एक प्रकार से अपने निश्चित भविष्य का दर्शन अपने होने में कर लिया और वह दर्शित भविष्य दर्शन द्वारा सुनिश्चित हो गया। **भस्मी** स्थिति में तेरी विशुद्ध **'मैं'** जाग्रत होने लगेगी और जटिल्य (Complex) वाली **'मैं'** तेरे होने में लुप्त हो जाएगी। तब तेरा होना **'मैं'** (आत्मतत्त्व) रूप में प्रकट होना प्रारम्भ हो जाएगा। वह आनन्द और चेतना से युक्त तेरा होना **'सद्'** होगा। जिस देह से तू यह प्रकरण करेगा, वह भस्मी नहीं बनेगी, बल्कि विरक्ति युक्त मैंमयी यथार्थ देह होगी। उस अभावमय स्थिति में तुझे ईश्वरीय आनन्द की

अनुभूति होगी। आत्मानन्द, परमात्मानन्द एवं देह का यथार्थ साथ-साथ जाग्रत हो जाएँगे। यह **भस्मी चिन्तन** तुझे देह व देहों के मोह से मुक्त कर देगा। तभी तू कल्पों-कल्पान्तरों से चले आ रहे इस जटिल्य से मुक्त हो पाएगा। क्योंकि तूने जब तेरी देह नहीं रहेगी और पूर्ण दहन के उपरान्त पूर्ण भस्मी प्रकट होगी, उस **'भस्मी'** का **'दर्शन'** देह द्वारा, देह के रहते कर लिया।

ध्यानाग्नि में देह के **दहन** द्वारा तुझे भाव में दिव्य देह की प्राप्ति हो जाएगी। इसके बाद उस **नाम** को (जो देह के पंच महाभूतों में विलय होने और पूर्णतः अविशेष भस्मी के प्रकाट्य के बाद भी अवशेष रूप में रहता है) तू प्रभु को समर्पित कर। उस भाव स्थिति में प्रभु से प्रार्थना कर, हे देवाधिदेव महादेव ! आज तुम मेरी भस्मी ओढ़ लो। हे आद्याशक्ति अग्नि रूपा माँ भवानी ! मेरी समस्त अग्नि को अपने गर्भ में समेट लो और मुझे अविरल व अखण्ड चुटकी भर भस्मी के ऊपर टिमटिमाती हुई लौ के रूप में प्रसाद के साथ, दिव्य देह दो। वह दिव्य देह ईश्वरीय मोह के अश्रुओं से ओत-प्रोत एवं प्रकट या अप्रकट नाम जाप से परिपूरित होगी। हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्व सम्पन्नता, मस्ती, उत्साह पूर्णता के साथ ही कर्म बन्धन से भी मुक्त होगी। इस प्रकार देह के साथ-साथ **नाम** का भी नवीनीकरण हो जाएगा। यही तेरा निजी कर्म है, जो तुझे नित्य करना होगा। देह के साथ नाम के नित्य नूतनीकरण और भस्मीकरण प्रकरण के नित्याध्यासन द्वारा नाम से कुण्ठित व गुण्ठित रूप (देह) अपने समस्त वटों सहित भाव रूप भस्मी (विरक्ति) में रूपान्तरित हो जाएगा। नित्य नित्याध्यासन करते-करते एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जब **नित नूतन** तेरी देह नाम सहित मैं (जीवात्मा) एवं तू (परमात्मा) की तरह **'नित्य'** हो जाएगी।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 जनवरी से 24 जनवरी 2012)

माया (कला)

(भाग – 13)

ईश्वर अदृश्य है, दृश्यमान सृष्टि के कण-कण में उसी का चिदाभास प्रकट है। युगों-युगान्तरों में विस्तृत समस्त साकार एवं निराकार दृश्यमान सृष्टि उस अदृश्य कलाकार सच्चिदानंद परमात्मा की अदृश्य, अगणित एवं बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है। इस सम्पूर्ण प्रदर्शन की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप एक मानव देह है। ईश्वरीय संरचाओं में सर्वोत्कृष्ट, अति विलक्षण, परम रहस्यमयी एवं विशेष चमत्कारिक सुकृति इस मानव-देह का एक-एक रोम, एक-एक श्वास, हृदय की एक-एक धड़कन, एक-एक गति, एक-एक सोच मात्र परमात्मा द्वारा ही निर्देशित, सम्पादित, संचालित, प्रतिपादित एवं संहारित है। मानव देह सहित सम्पूर्ण जगत में निर्माण, पालन एवं संहार पूर्णतः ईश्वरीय ही है। जो कृत्य मात्र ईश्वरीय ही हैं, उनका अर्थ भी ईश्वरीय ही होगा। मानव-देह व जीवन का अर्थ अधिगृहीत करने में मेरा अपना जो **'अर्थ'** है, वह **'अर्थार्थ'** (अर्थ का अर्थ) महत्त्वपूर्ण है। अनादि से लेकर आज तक युगों-युगान्तरों एवं मनवंतरों में जितनी मानव-देहें हुईं और अनन्त तक होंगी, उनका यथा अर्थ (यथार्थ) एक ही था, है और होगा। यदि मैं (आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि) मानव-देह के उस ईश्वरीय **'अर्थ'** को अधिगृहीत करके सम्पूर्ण जगत सहित अपनी देह को उस **'अर्थ'** के लिए सदुपयोग करूँ, तो मेरा अर्थ भी मुझे अवश्य मिल जाएगा। मानव देह व जीवन के अर्थ के अर्थ (अर्थार्थ) को जानने का विरला जिज्ञासु अर्थार्थी है।

अध्यात्म देहातीत ज्ञान है। जहाँ देह की सीमाओं का उल्लंघन हो

जाता है, वहाँ से आत्मज्ञान अनावृत होना प्रारम्भ होता है। **'मैं'** जन्मों-जन्मान्तरों से सीमित देह की सीमाओं में भटक रहा हूँ। दृश्यमान सीमित मानव देह एक दिन थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं। यह मानव देह का **'सद्'** है। **'सद्'** वह है, जो सदा सदा से शाश्वत् है, सदा रहता है और कभी भी परिवर्तित नहीं होता। दृश्यमान मानव-देह अन्ततः नहीं रहेगी, इस सद् की पुष्टि यह है, कि यह एक दिन थी नहीं।

सद्, चेतन और आनन्द में **'चेतन'** और **'आनन्द'** दोनों अदृश्य हैं और इनके अदृश्य समन्वय का प्रकाट्य **'सद्'** दृश्यमान है। जो जगत दिखाई देता है, वह स्वयं में **'सद्'** है। ईश्वर महाकाल है और असंख्य कलाओं का स्वामी है। उसकी कलाएँ भी उसी की ही तरह अदृश्य हैं। संसार में विभिन्न कलाओं का प्रदर्शन करते कलाकार दृश्यमान होते हैं, लेकिन उनके भीतर छिपी कलाएँ स्वयं में अदृश्य रहती हैं। जब उनका प्रदर्शन किया जाता है, तो वे कलाएँ दृश्यमान होती हैं। यहाँ विशेष रहस्यमय तथ्य यह है, कि **'कला'** स्वयं में **'काल'** से विमुक्त है।

प्रत्येक कला ईश्वर प्रदत्त है और स्वयं में महाकाल की है, लेकिन काल से बँधे जीव का कला प्रदर्शन भी काल से बँध जाता है। कोई भी दर्शित कलाकार अपनी स्वयं की कला का पूर्ण प्रदर्शन कभी नहीं कर सकता। कोई भी कला जब स्वयं में काल से बँधे मानव में पदार्पित होती है और 'मैं देह हूँ' सन्देह रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में उस कला को वह अपनी स्वयं की मान लेता है, तो उसकी कला का प्रदर्शन अस्तव्यस्त हो जाता है। सांसारिक कलाकारों का प्रदर्शन सदा सर्वदा आंशिक ही होता है। साथ ही प्रदर्शन वह नहीं होता, जिसे वह कलाकार वास्तव में करना चाहता है। कई बार प्रदर्शन उसकी आशाओं से बढ़कर होता है और अनेक बार आशाओं के विपरीत अति न्यून होता है। तीसरे एक ही कलाकार का प्रदर्शन हर बार (पृथक्-पृथक् दर्शकों एवं श्रोताओं के सम्मुख) अलग-अलग समय, अलग-अलग स्थान एवं अलग-अलग स्थिति में पृथक्-पृथक् होता है।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश स्वयं में सहज जड़ हैं, लेकिन महा सशक्त हैं। पंच महाभूतों की निराकार एवं साकार दृश्यमान सृष्टि स्वयं में प्रपंच है। देह सहित जगत के सम्पूर्ण प्रपंच का प्रकाट्य अवचेतना में ही होता है। जड़ता एवं चेतना स्वयं में प्रपंचातीत एवं मायातीत हैं। इस दृश्यमान प्रकाट्य की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। यहाँ हर **'कला'** हर **'काल'** में समय, स्थान, स्थिति के अनुसार भिन्न होती है। वास्तव में यह इसलिए है, क्योंकि यहाँ कलाकार स्वयं दृश्यमान हो जाता है और जो दिखाई देता है वह स्वयं में सीमित, कुण्ठित व गुण्ठित है। ईश्वर विमुखता में समस्त प्रदर्शन प्रश्न बना रहता है। इस प्रकार प्रदर्शन में जब प्रपंच व पाखण्ड का समावेश होता है, तो प्रत्येक कला का प्रदर्शन विभिन्न समय, स्थान एवं स्थितियों में तदनुसार होते हुए भिन्न-भिन्न हो जाता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

भारतीय मनीषी, विचारक और तत्त्वज्ञ दृश्यमान चराचर जगत के नेपथ्य में छिपी अदृश्य सत्ता के अस्तित्व को पहचान गए थे। वे मान गए थे, कि कोई अदृश्य कलाकार ही सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड को चला रहा है। वह अदृश्य सत्ता एक ही है और दृश्यमान ब्रह्माण्ड अनेकों से भरा हुआ है। ये अनेकानेक दृश्यमान विधाएँ सतत् परिवर्तनशील एवं अस्थिर है। अर्थात् जो परिवर्तन करवा रही है, वह अदृश्य सत्ता स्वयं परम स्थिर एवं अपरिवर्तनीय है। वह अदृश्य सत्ता क्यों, कैसे, किसके लिए यह सब करवा रही है, उसे जानने के लिए जिज्ञासुओं ने अथक प्रयास आरम्भ किया। वेदों में वेदज्ञों ने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और इनके अद्भुत् व चमत्कारिक संगम से निर्मित, पालित एवं संहारित साकार व निराकार दृश्यमान चराचर सृष्टि की विविध विधाओं में दृश्यमान सत्ता के सत्ताधारियों को माध्यम बना कर उस अदृश्य सत्ता को खोजने का प्रयास किया।

आज भी अध्यात्म ज्ञान-विज्ञान का आधार **'वेद'** हैं। वेद स्वयं में दैवीय, भौतिक ज्ञान-विज्ञान हैं। नरों में राजा, नक्षत्रों में सूर्य, चन्द्र आदि, संगीत, नृत्य, गायन, शिल्प, वास्तु आदि में जो उत्कृष्टतम है और विभिन्न

श्रेष्ठतम धातुओं आदि में उस अदृश्य शक्ति को खोजने का प्रयास चार (ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्वेद) वेदों में किया गया। चार वेदों के चार महावाक् उनके महासार रूप में आए—***अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानम् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म।*** उनकी खोज अद्‌भुत् थी, परन्तु इसके अतिरिक्त अन्यथा भी अथाह ज्ञान था, जिसका अनुसंधान नहीं हो पाया। चारों वेदों के रचयिता एक शब्द पर, परस्पर सहमत हो गए और वह शब्द **'नेति'** था। **'न इति'** अर्थात् जो हम जानते हैं, जो वेदों में लिखा या बोला गया है, वह अन्त नहीं है। आगे भी बहुत कुछ अथाह है, जो हम नहीं जानते। दृश्यमान सत्ता के सत्ताधारियों के माध्यम से उस अदृश्य की खोज में हज़ारों वर्षों से हुआ अथक् प्रयत्न, थक सा गया। यहाँ से दूसरा प्रयत्न **'वेदान्त'** (वेद+अन्त) प्रारम्भ हुआ।

'वेद' नेत्र खोल कर दृश्यमान में खोजते रहे। वेदान्त **'दर्शन'** (दरश+न) था। वेदान्त में दृश्य से नेत्र मूंद कर समाधि द्वारा अन्तर्जगत में उस अदृश्य सत्ता (ब्रह्म) को खोजने एवं अनुभूति करने का प्रयत्न किया। वेदान्ती पर्वतों की गुफाओं में, सागर, नदियों के किनारे पर समाधिस्थ हो गए। अदृश्य का दर्शन करने का प्रयत्न करते हुए वेदान्ती योगी एक निर्णय पर पहुँचे—***'जो ब्रह्मण्डे सो पिण्डे'***, दृष्टा ही दृश्य है, (Seer is the scene) दृश्यमान को देखने वाला दृष्टा वस्तुतः स्वयं अपने **'होने'** को ही देख रहा है। **'मैं'** नित्य नया परिवर्तन देखता हूँ अर्थात् मेरा **'होना'** बदलता है और तदनुसार मेरी दृश्यमान देह, जगत सहित प्रकट होती है। रील बदलती रही, तो चलायमान चलचित्र परिवर्तित होता रहा। वहाँ प्रश्न उठा, कि इस **'होने'** का **'हेतु'** (परमात्मा) कौन, कैसा व क्या है? दृष्टा को सब कुछ जो दिखा रहा है, वह क्या व कैसा है? खोज तो उसकी करनी है। इसके पीछे जो अपरिवर्तनीय और अचल है, वह महा पुरोहित **'हेतु'** एवं **'होता'** कौन है?

दृश्यमान सत्ता (जगत) और इसके समस्त विभिन्न सत्ताधारियों का होना **'एक'** मेरे **'होने'** में है। मेरे प्रत्येक (प्रति+एक) 'होने' का **'हेतु'** परमात्मा इस सबका स्रष्टा, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता है। **'होना'** परिष्कृत

और उत्तमोत्तम होने के लिए इसके एकमात्र कारण से सम्पर्क आवश्यक है। उस **'हेतु'** से सम्पर्क और उसकी समीपता की अनुभूति की तीव्र उत्कण्ठा में **'भक्ति'** का प्रादुर्भाव हुआ। **'भक्ति'** स्वयं में **'प्रयत्न'** नहीं, दैवीय **'यत्न'** से फलीभूत हुई। मानव में मान्यता की अद्भुत एवं विलक्षण शक्ति है। मान्यता **'मन'** का धर्म है। सम्पूर्ण जगत एक **'मन'** की मान्यता है। **'भक्ति'** में उस अदृश्य ईश्वरीय सत्ता की समीपता एवं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अनुभूति के लिए किसी भी रूप अथवा अरूप में प्रभु को मान कर यत्न प्रारम्भ हुआ।

भक्ति में एक इष्ट रूप में उस अदृश्य सत्ता को मानकर चला गया। उसकी समीपता, सान्निध्य एवं अनुभूति के लिए रूप-अरूप किसी में भी एक इष्ट की मान्यता द्वारा **'भक्ति'** के विभिन्न असंख्य आयामों का प्रादुर्भाव हुआ। **'भक्ति'** प्रयत्न नहीं स्वयं में ईश्वरीय **'यत्न'** है। वहाँ नाम-जाप, आराधना, उपासना, अर्चना, वन्दना, दीप-धूप-नैवेद्य आदि वह इष्ट ही करवाता है। मानवीय प्रयत्न से विशुद्ध भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होता। भक्ति में जीव का प्रयत्न स्वयं इष्ट द्वारा अधिगृहीत कर लिया जाता है और भक्त का मार्ग ही मंज़िल में रूपान्तरित हो जाता है। भक्तों ने भाव विह्वलता से उस प्रभु के मिलन एवं विरह की दीवानगी में स्वयं को खो दिया और उस इष्ट की कृपा से यह भक्ति मार्ग स्वयं में मंज़िल बनकर भक्तों को चेतना व आनन्द की अनुभूति से ओत-प्रोत करने का हेतु बना। भक्तों ने अपना सम्पूर्ण जीवन-दर-जीवन उसके सान्निध्य की अनुभूति के लिए दाव पर लगाना शुरू कर दिया।

''तेरी महफिल में सर अपना झुका कर हम भी देखेंगे
घड़ी भर तेरे नज़दीक आकर हम भी देखेंगे।''

उस अदृश्य के एक क्षण की अक्षुण्ण समीपता के लिए क्षण-क्षण क्षरित होते असंख्य क्षण भंगुर क्षणों को न्योछावर करना शुरू कर दिया। **'भक्ति'** में एक **'सच्चखण्ड'** नामक क्षेत्र आता है, जिसमें प्रतीक्षा करते-करते भक्तों की विह्वलता, दीवानगी चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। भक्त को अपने इष्ट के अतिरिक्त कोई कामना नहीं होती। वहाँ से भक्तों में इष्ट से सम्बन्धवाद शुरू

हुआ। आध्यात्मिक सम्बन्धों की मान्यता में अपनत्व प्रधान होता है और सम्बन्ध गौण होते हैं। अपने इष्ट को माँ, पिता, पुत्र, पुत्री, भाई, बन्धु किसी सम्बन्ध में मानकर भक्त उन सम्बन्धों में उसके साथ विचरने लगा। जो ईश्वर किसी से बँधा नहीं है, उसे प्रेम भक्ति की डोरी में भाव से भक्तों ने बाँध लिया।

'मैं' शब्द के प्रकाट्य लिए एक नाम से कुण्ठित व गुण्ठित जाग्रत मानव-देह का तनिक अवलम्बन अत्यावश्यक है। वह मानव-देह अपना यथार्थ खो चुकी थी। अतः अवलम्बन लेते ही 'मैं' भी उसके साथ तद्‌रूप सा हो गया। **'मैं'** शब्द जो स्वयं में अरूप एवं अनाम है, किसी रूप एवं आकार के साथ तद्‌रूप हो ही नहीं सकता। लेकिन जीव कोटि में जगत सहित उस देह का समस्त प्रदर्शन मैंने एक नाम में कुण्ठित व गुण्ठित रूप से देखा। जो जब, जहाँ, जैसा भी अपने जगत सहित है, था और होगा स्वयं में परिपूर्ण ही है, था और होगा।

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।''

कोई भी मानव **'नाम'** लेकर पैदा नहीं होता। नाम उसकी देह से अलग है और किसी अलग द्वारा मात्र सम्बोधन, परिचय एवं पहचान के लिए रखा जाता है। जब वह **'रूप'** (देह) उस नाम को स्वीकार कर लेता है, तो **'मैं'** जटिल्य (Complex) की पुनः पुनः जागृति होती है। यह जटिल्य जीव के साथ युगों-युगान्तरों से है और जन्मों-जन्मान्तरों से यह सिलसिला चला आ रहा है। मेरा होना वस्तुतः **'होना'** नहीं रोना, धोना, खोना और ढोना है। जन्म हमेशा मेरा अतीत रहता है और मृत्यु हमेशा भविष्य बनी रहती है। जीवन-काल के किसी भी क्षण में, हर क्षण में, क्षण-क्षण में एवं प्रति क्षण में ऐसा ही रहता है। इस दुर्घटना के होते ही **'मैं'** काल, कर्म व प्रारब्ध से बँध जाता हूँ। मेरी समस्त प्रतिभाएँ, गुण और प्रत्येक कला मेरी देह की भाँति कुण्ठित व गुण्ठित हो कर **'काल'** से **'बँध सी'** जाती है। नाम की स्वीकृति इस विकृति के जन्म का कारण बनी।

'रूप' या देह स्वयं में नाम रहित अर्थात् अनाम थी, लेकिन कालान्तर में तद्नाम होते हुए देह नाम की हो गई। साथ ही मेरी समस्त कलाएँ, प्रतिभाएँ, गुण-अवगुण और विधाएँ नाम की होकर रह गईं। हम सब एक अनुमान व सम्भावना में जी रहे हैं। आगे किसी के पास कितना समय है, कोई नहीं जानता। अतीत, भविष्य एवं वर्तमान में बंधा दृष्टिकोण, यथार्थ से कोसों दूर है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने जीवन काल के सम्बन्ध में निजी दृष्टिकोण होते हैं, जो मात्र सम्भावनाएँ हैं। जो अभी तक व्यतीत हो चुका है वह भी धारणा (Concept) है, क्योंकि देह गर्भित (Conceptual) है। इस देह में कुछ भी **'सद्'** (Factual) नहीं होता। सन्देह (मैं देह हूँ) में कुछ भी यथार्थ नहीं होता। यहाँ मृत्योपरान्त **'भस्मी'** बन जाने पर भी वह **'मैं'** जटिल्य (Complex) अपनी समस्त विधाओं सहित अदृश्य रूप से रहता है, लेकिन वह नाम-रूप रहित हो जाता है। अपनी मान्यताओं, संस्कारों, धारणाओं के बन्धनों में जकड़ा हुआ **'मैं'** जटिल्य (Complex) किसी मानव-देह के जन्म के समय मात्र रूप से तद्रूप नहीं होता। जैसे ही वह **'रूप'** अलग से एवं अलग द्वारा रखे गए नाम को स्वीकार करता है, वही अदृश्य **'मैं'** जटिल्य (Complex) जो नाम-रूप रहित और अप्रकट था, किसी भिन्न नाम-रूप के साथ तद्रूपता सी में जाग्रत हो जाता है।

जब जीते जी सद्गुरु कृपा से **'संहार प्रकरण'** ध्यान में किया जाता है अर्थात् **'मैं'** जटिल्य (Complex) को अपने नाम-रूप से हटाकर उसी देह की **'भस्मी'** के साथ जोड़ देते हैं, कि **'मैं भस्मी हूँ'** तो वहाँ **'मैं'** जो स्वयं में आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि है, उसे अपनी स्मृति आनी शुरू हो जाती है। शंकर का सुचिन्तन भस्मी-चिन्तन एवं संहार चिन्तन है। जीते जी यह चिन्तन देह के होते हुए **'मैं'** जटिल्य (Complex) के नाम-रूप रहित स्थिति में प्रविष्टि का हेतु बनता है। तब आप स्वयं में **'वयम्'** होते हैं और **'चेतन'** होते हैं। ध्यान में योगी जिस देह को चिता की अग्नि में जलते देखता है, वह देह अर्थानुसार नहीं थी। उस देह का अवलम्बन लेकर **'मैं'** को **'भस्मी'** के साथ लगा दिया, तो देह अर्थानुसार होती हुई यथार्थ हो गई।

पंच-महाभूतों की जन्म-मृत्यु की अवधि में बँधी देह की **'मैं'** ने अपनी देह की भस्मी कभी नहीं देखी, क्योंकि भस्मी देहातीत है। जब भस्मी प्रकट होती है, तो देह अदृश्य हो जाती है। मैं देह नहीं हूँ, सन्देह रूपी अज्ञान का ज्ञान होने पर **'मैं'** अपनी ही देह की उस अवस्था से आत्मसात् होने के लिए आर्तनाद करता है, जिस भस्मी अवस्था में देह नाम-रूप से परे होती है और पंच-महाभूतों में अदृश्य हो जाती है। प्रभु ने पंच-महाभूतों की गर्भित (Conceptual) एवं अस्थाई देह इसलिए दी है, कि इसका अवलम्बन लेकर **'मैं'** अपनी यथार्थ देह की अनुभूति कर ले। इसका सदुपयोग यही है, कि देह के रहते ध्यान द्वारा इसके अर्थ (भसम) से आत्मसात् हो जाए। अर्थानुसार जो देह है, वह यथार्थ देह है।

निर्माण, पालन एवं संहार, जन्म-मृत्यु में बँधी (Conceptual) देह का होता है। वह देह अन्यार्थ है। वास्तव में **'संहार' 'मैं'** जटिल्य (Complex) का होता है। यथार्थ देह प्रकट होती है। निर्माण, पालन में अहं है, मात्र संहार अहं रहित है। अन्यार्थ देह में भी संहार प्रभु ने यथार्थ की अनुभूति के लिए दिया है। मानव देह का यथार्थ स्वरूप जन्म-मृत्यु की सीमाओं से परे है। उसके बाद दिव्य विकास प्रारम्भ होता है। चेतना का स्तर बढ़ने लगता है और तद्नुसार दैवीय शक्तियों द्वारा आप जहाँ भी हों, आपका दिव्य प्रबन्ध किया जाता है। संदेह में **'मैं'** देहमय एवं 'अभाव में' हो गया और **'संहार'** में **'मैं'** भस्मीमय होते हुए 'अभावमय' हो जाता है। 'मैं भस्मी हूँ' वाली **'मैं'** आत्मतत्त्व की प्रतिनिधि होती है और वह प्रकट होने के लिए जीवित जाग्रत देह का अवलम्बन लेती है, तो वह देह अविलम्ब **'मैं'** पर अवलम्बित हो जाती है। वहाँ विशुद्ध **'मैं'** जाग्रत होती है और विशुद्ध **'मैं'** के साथ यथार्थ मानव-देह प्रकट होती है। यथार्थ देह का प्रतिनिधित्व **'भस्मी'** करती है। **'संहार'** वस्तुतः माया का श्रंगार है। अभावमयता ही आनन्द है।

सद्गुरु कृपा से ध्यान-समाधि, यज्ञ-हवन, जप-तप, सद्गुरु-सेवा आदि-आदि करते-करते **'मैं'** और 'देह' में दरार पड़ जाती है। इस दरार से **'सन्देह'** टूटना शुरू हो जाता है। जीते जी अपने **संहार** (मृतकावस्था

एवं भस्मावस्था) की '**अवधारणा**' में यह दरार इतनी बढ़ जाती है, कि वहाँ **'मैं'** जटिल्य (Complex) से नाम-रूप की दृश्यमान देह लुप्त हो जाती है। वहाँ यथार्थ देह का प्रकाट्य होता है। यथार्थ देह, देहातीत देह है। यह एक ही है। यहीं से समस्त देह सहित जगत का पंच-महाभूतों में प्रकाट्य दृश्यमान होता है। विशुद्ध देह भाव यथार्थ देह है। जलचर, नभचर, थलचर सहित समस्त मानव देहें पंच-महाभूतों से निर्मित हैं और इन्हीं पंच-महाभूतों द्वारा समस्त प्राणी जगत का पालन होता है तथा अन्ततः पंच-महाभूतों में सब कुछ विलय हो जाता है।

सद्गुरु के सद् निर्देशन में उसकी कृपा से जब जीते जी आप **'संहार'** का अधिग्रहण करते है और अपनी देह की **'भस्मी'** से आत्मसात् होने के लिए लालायित हो जाते हैं, तो भीतर का अदृश्य कलाकार जाग्रत हो जाता है। धन, सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा, भरा-पूरा स्वस्थ परिवार, जनबल, विभिन्न प्रतिभाओं एवं कलाओं की विशेषज्ञता और जितनी जगत सम्बन्धी प्राप्तियाँ आदि हैं, वे भी प्रभु की कृपा से ही मिलती हैं। लेकिन प्रभु की विशेष कृपा तब होती है जब मानव अपने अविशेष (भसम) से अवगत होकर अपने उस निर्विशेष विरक्तिमय स्वरूप की अनुभूति करता है।

ईश्वर हमारी मान्यताओं का मोहताज नहीं है। अदृश्य होते हुए भी उसका होना प्राकृतिक सौन्दर्य, दामिनी की दमक, मेघ, सतरंगी इन्द्रधनुष, पक्षियों के कलरव, गर्जन करते हुए सागरों और असंख्य दृश्यमान विधाओं में अनुभव किया जा सकता है। ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट नमूना मानव-देह है, जिससे ईश्वर ने हमें नवाजा है। युगों-युगान्तरों में जो भी असंख्य मानव हुए, सबकी छवि, रूप अलग-अलग है। यह विविधता एवं भिन्नता कितनी बड़ी कला है। प्रदर्शन नित नया है। इसमें एक सूक्ष्म तत्त्व में भी, हम खो जाएँगे। हम तत्त्व की खोज नहीं कर पाएँगे, लेकिन खोज करते-करते स्वयं खो जाएँगे। यह खोना ही ईश्वर है और एक मानस स्थिति है, जो स्वयं में स्थिर, अभावमयी एवं आनन्दमयी है। जो अदृश्य है, यदि उसे पाना है, तो उसकी किसी भी

कला में गहरे में उतरते हुए स्वयं को खोना पड़ेगा।

परमात्मा सदा सर्वदा तेरे सम्मुख ही है। वह कभी तेरे से विमुख नहीं होता। तू **'सम्मुख के विमुख'** हुआ है। तू जब उसके विमुख भी होता है, तो भी वह तेरे **'सम्मुख'** ही रहता है। प्रभु ! तेरे हर होने के **'हेतु'** हैं। सन्देह में तू उस सम्मुख के विमुख हुआ है। उसकी सम्मुखता का तू सामना नहीं कर पाता। यही प्रारब्ध भोग है। प्रारब्ध भोग भोगते हुए भी तू उसके सम्मुख हो जा। प्रारब्ध का अंकन उस सम्मुख की विमुखता में हुआ, लेकिन उसके भोग के समय तू उस सम्मुख के लिए उन्मुख होता हुआ, सम्मुख हो जा। जो भी आज तक हुआ, अब हो रहा है और होगा, उसकी इच्छा से हुआ है और होगा। तेरा हर कृत्य और तेरा हर होना उसी की इच्छा से है। तेरे भीतर-बाहर वही है। जब तुझे अपने होने का ज्ञान भी नहीं है, तब भी वह है। लेकिन अपने होने का ज्ञान न होने के होने में तू स्वयं से विमुख है। निद्रा में तुझे देह व जगत का ज्ञान नहीं है और यह भी ज्ञान नहीं है, कि तुझे देह व जगत का ज्ञान नहीं है। यहाँ तू स्वयं के भी विमुख है और ईश्वर के भी विमुख है। यह **'जड़ता' विमुखता में विमुखता है।** जब अपने होने के ज्ञान में तुझे परमात्मा का ज्ञान नहीं है, तब तू **अवचेतना** में उस **सम्मुख के विमुख है।** तू देह है अथवा देह रूप में है लेकिन स्वयं को जगत से पृथक् मानता है अथवा स्वयं को देह सहित जगत मानता है। यहाँ तू स्वयं के सम्मुख नहीं है, इसलिए उस **'सम्मुख के विमुख'** है। जहाँ अपने होने में तू देह सहित जगत को स्वयं से पृथक् मानता है, वहाँ तू स्वयं के सम्मुख है, इसलिए ईश्वर के सम्मुख है। यह **सम्मुखता में सम्मुखता है।**

ईश्वर की कलाएँ भी **'दर्शन'** हैं और वह स्वयं में भी **'दर्शन'** है तथा युगों-युगान्तरों के **'प्रदर्शन'** का लक्ष्य वास्तव में यह **'दर्शन'** ही है। त्रिकालदर्शी के लिए अतीत, वर्तमान व भविष्य **'सद्'** हैं। सदातीत और सद् भविष्य सद् संकल्प होता है। यदि वाणी **'सद्'** को धारण कर लेती है, तो **'सद्'** उस वाणी को धारण कर लेता है। ***''स्तोत्राणि सर्वाः गिरौः।''*** तू स्वयं को नहीं जानता। स्वयं को तू वैसा जानता है, जैसा तू है। एक

बार तू स्वयं को खोकर उस महाकालेश्वर का शरणागत होकर देख, तब तुझे अपना **'दर्शन'** होगा। युग-युगान्तर तेरे होने में हैं। तू है, तो ये **'थे'** और तू **'है'** तो ये **होंगे** तथा तू है तो ये **'हैं'।** तू है, तो ही कुछ हुआ था और जो तू जानता व मानता है, वैसा ही हुआ था। तू है तो ही कभी कुछ होगा, यदि तेरे लिए होगा तो और तेरी सम्भावनाओं, चाहतों, आशाओं के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होगा। तू **'है'** में स्थित हो जा, तो जो होगा, वह तेरे अनुसार ही होगा। इसे सद् संकल्प कहा है। प्रभु का प्रभुत्व माना हुआ ही है। वह माना हुआ हमारे लिए अदृश्य है और खोया हुआ है। हम उसे ढूँढ नहीं सकते। उसकी मान्यता में हमें खोना पड़ेगा। ईश्वर की संरचनाओं के रहस्यों की खोज हम नहीं कर सकते। लेकिन इस खोज में जहाँ स्वयं खो जाते हैं, वहाँ आनन्द की अनुभूति होती है। ईश्वर की किसी एक कला में इतने गहरे उतर जाएँ, कि दीन-दुनिया को, स्वयं को भूल कर खो जाएँ। जहाँ स्वयं पूर्णतः खो जाएँगे, वहाँ उस खोए हुए की अनुभूति हो जाएगी। वह एक अभावमय मानस स्थिति है, जहाँ **'कुछ नहीं'** है। यही आनन्द है।

देह, जगत सहित है, रूप अलग-अलग है, नाम अलग-अलग है। **'मैं'** एक ही है। **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य होना देह व जगत के दृष्टव्य, क्रियान्वयन एवं प्रमाण के लिए अत्यावश्यक है। चाहे देह कैसी भी ही, जगत कैसा भी हो। देह व जगत दृश्य है इसके होने की सार्थकता दृष्टा के होने से है। जिस दिन इष्ट की मान्यता से, मान्यता द्वारा, मान्यता में, मान्यता के लिए स्वयं खो जाएगा, तो वह भी तुझे मान लेगा और तुझे उसकी अनुभूति होने लगेगी। तेरे भीतर का वह अदृश्य कलाकार जाग्रत हो जाएगा, जो स्वयं और जिसकी कलाएँ **'काल'** व **'अकाल'** दोनों से परे हैं।

''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''

(5 जनवरी से 13 जनवरी 2012)

माया (नित नूतन)

(भाग – 14)

दैवीय संविधान के अन्तर्गत आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि **'मैं'** शब्द **'नित्य'** है और मानव-देह, जगत सहित **'नित नूतन'** है। निर्माण, पालन एवं संहार इसकी तीन विधाएँ हैं। देह सहित जगत में **'निर्माण'** और **'पालन'** **'नित नूतन'** है, लेकिन **'संहार'** **'नित्य'** है। निर्माण और पालन स्वयं में अनिश्चित है और संहार सुनिश्चित है, क्योंकि निर्माण-पालन की किसी भी अवस्था में, किसी भी क्षण संहार हो सकता है। मानव-देह, जगत सहित नित नूतन निर्मित व पालित प्रकट होती है, लेकिन इसकी प्रकट नित नूतनता का आभास एवं प्रतीति, प्रतिदिन हमें नहीं होती। आज देह, जगत सहित कल वाली नहीं है। कल वाली नूतन थी और आज वाली भी स्वयं में नूतन है, इसका कल वाली देह और सृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आने वाला कल मेरे लिए होगा, तो कल फिर मेरे लिए देह व जगत पुनः नूतन होगा। निर्माण-पालन एवं संहार साथ-साथ हैं। नित नवीन निर्माण है, नित नवीन पालन है और उसमें विविधता, भिन्नता एवं पृथकता दृश्यमान है। **'संहार'** अदृश्य, नित्य (शाश्वत्) एवं **'एक'** ही है। यहाँ निर्मित का निर्माण, पालित का पालन और संहारित का संहार है।

जल मण्डल, नभ मण्डल, थल मण्डल, वायु मण्डल, अग्नि और इन पंच महाभूतों के अद्‌भुत संगम से निर्मित तथा इन्हीं के द्वारा पालित एवं संहारोपरान्त इन्हीं में विलय होती चराचर सृष्टि अपनी समस्त विधाओं सहित **'नित नूतन'** प्रकट होती है। इसमें मेरा जो, जब, जहाँ, जैसा भी

'होना' है, बना बनाया प्रकट होता है। हम हफ्तों, महीनों, वर्षों के अपने अतीत, जन्म, शैशवावस्था, युवावस्था, लाभ, हानि, दुःखों, सुखों, मान्यताओं एवं धारणाओं को घसीटते चले आ रहे हैं। भविष्य के लिए योजनाएँ, परियोजनाएँ बनाते रहते हैं और तद्नुसार अतीत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से परिवेष्टित हमारा हर वर्तमान किसी न किसी **'गा' 'था'** से बोझिल रहता है। इसलिए 'नित नूतन' की नूतनता का **'मैं'** आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि स्वयं में नित्य होते हुए भी रसास्वादन नहीं कर पाता। **'मैं'** एक **'जटिल्य'** (Complex) से ग्रसित हूँ, जिसके **'मैं', 'नाम', 'मानव-देह'** और उसका **'होना'** चार अंग हैं। हर **'नाम'** देह से अतिरिक्त (अलग) है और किसी अतिरिक्त (अलग) द्वारा रखा जाता है। जैसे ही दैहिक एवं बौद्धिक विकास की अवस्था में मानव-देह द्वारा नाम की स्वीकृति होती है, तो देह उस नाम से कुण्ठित हो जाती है। इस स्वीकृति को आत्मतत्त्व का प्रतिनिधि शब्द **'मैं'** प्रमाणित करता है। यहाँ **'मैं'** नाम-रूप की देह के साथ **तद्रूपता** सी में कुण्ठित एवं गुण्ठित एक जटिल्य (Complex) बन जाता है।

'मैं देह हूँ' इस **'जटिल्य'** की जटिलता ने जन्मों-जन्मान्तरों से नहीं, युगों-युगान्तरों से नहीं, बल्कि कल्पों-कल्पान्तरों से मुझे जटाओं से पकड़ कर जकड़ा हुआ है। **'नाम'** के कारण देह पुरानी नज़र आती है। अपनी पचास-साठ वर्ष पुरानी फोटो के लिए 'मैं' कहता हूँ, कि यह **'मैं'** हूँ, तब **'मैं'** पैदा हुआ था। यद्यपि जब पैदा हुआ था, तब मेरा कोई नाम नहीं था। मूलतः हर **'रूप'** नाम रहित ही होता है, लेकिन दैहिक, बौद्धिक विकास में शनैः शनैः रूप के साथ नाम की अत्युक्ता इतनी **'सिद्ध'** हो गई, कि हर मानव देह, अमुक **'नामक देह'** बन गई। जैसे ही देह उस नाम को स्वीकार कर लेती है **'मैं'** जटिल्य (Complex) प्रकट हो जाता है। जिसे **'मैं'** (आत्मतत्त्व) ने स्वीकार कर लिया, वह **'नाम'** आजीवन एक ही रहता है। **'रूप'** (देह) शनैः शनैः नित्य बदलता रहता है, लेकिन नाम से अत्युक्त होने के कारण इसका आभास नहीं हो पाता। जीव-सृष्टि में मानव के

समस्त जटिल्यों (Complexes) का मूल, यह एक जटिल्य है, कि 'मैं अमुक-अमुक हूँ'।

'नित नूतन' में **'नित'** भी नूतन है और उसमें जो प्रकट है; वह भी नूतन है। अतः रोज़-रोज़ **'नित'** भी नया है और **'नूतन'** **'नित नूतन'** है। आज का दिन, आज का ही है, जो कल था, वह कल ही था और जो कल होगा (यदि मेरे लिए होगा तो) वह कल का ही होगा। अतः प्रत्येक (प्रति+एक) दिन **'नित नूतन'** है और युगों-युगान्तरों में एक दिन एक बार ही आता है। **'रूप'** मानव-देह में देह का मुखिया एवं प्रतिनिधि है। क्योंकि मुख में पंच महाभूतों का प्रतिनिधित्व है और किसी की भी पहचान चेहरे से ही की तथा करवाई जाती है। नाम, देह में नहीं है और देह से अतिरिक्त है। **'नाम'** न पैदा होता है, न बूढ़ा होता है, न रोगी होता है और न मरता है। स्वयं **'नाम'** को किसी से ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, स्पर्धा, शत्रुता, प्रेम आदि नहीं होता, लेकिन नाम ने जब रूप (देह) पर अधिपत्य कर लिया, तो **'नामक व्यक्ति'** इन व्याधियों में घिर जाता है। इस प्रकार **'नाम'** जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, आधि-व्याधि-उपाधि से भी जुड़ गया। धर्म, कर्म, धन, सम्पदा, डिग्रियाँ, पद, प्रतिष्ठा, समस्त सम्बन्ध, पाप, पुण्य अर्थात् देह सहित जगत की समस्त प्रकट-अप्रकट विधाएँ **'नाम'** की हो गईं। **'रूप'** की **'नाम'** के साथ जकड़न में देह व जगत की **'नित नूतनता'** की झलक आच्छादित हो गई।

रूप (देह), जिसकी **'नाम'** से कुण्ठा व गुण्ठा स्वयं में दिखाई नहीं देती, उस मानव-देह के साथ **'मैं'** तद्रूप **सा** हो गया। **'मैं' अमुक** (नाम) **अमुक** (रूप) बनते ही अपना **'नित्यत्व'** खो कर जीव सृष्टि में जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, पाप, पुण्य, सुख, दुःख, लाभ, हानि, प्रारब्ध, कर्म, काल, आधि, व्याधि, उपाधि, मल, विक्षेप, आवरण की अन्तहीन श्रंखला में जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित कालचक्र में भटकने पर विवश हो गया। मानव-देह जो नित नूतन थी, अपनी नित नूतनता एवं यथार्थ खो कर अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) हो गई और ईश्वर का ईश्वरत्व भी धर्मों,

सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों, मठों में कुण्ठित व गुण्ठित **सा** हो गया। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

पारब्रह्म परमेश्वर **'ब्रह्मात्मा'** है, वह अपनी परमाद्या आद्याशक्ति माँ भवानी की **'एकोऽहम् बहुस्याम्'** इच्छा से अपनी परमात्मा एवं जीवात्मा दो अदृश्य विधाओं में उतरता है। यह ब्रह्मात्मा का अदृश्य में अदृश्य **'द्वैत'** है। परमात्मा स्रष्टा है और जीवात्मा दृष्टा है। स्रष्टा एवं दृष्टा **'नित्य'** हैं और युगों-युगान्तरों, मन्वन्तरों, कल्पों-कल्पान्तरों, जन्म-जन्मान्तरों से परे है। ईश्वर सच्चिदानंद है। सद्, चेतन एवं आनन्द में चेतन एवं आनन्द अदृश्य हैं और दोनों के अदृश्य समन्वय से जो सृष्टि प्रकट होती है, वह **'सद्'** है। अतः ईश्वर की माया जो प्रकट है वह **'नित नूतन'** है। **'माया'** ईश्वर की बहुआयामी कलाओं का असंख्यामी प्रदर्शन है और इस समस्त दृश्यमान **'नित नूतन'** मायिक सृष्टि का प्रतिनिधित्व एक मानव-देह करती है। इसलिए कोई भी मानव देह, जगत सहित **'नित नूतन'** है। अदृश्य ईश्वरीय सत्ता एवं उसकी समस्त बहुआयामी अदृश्य कलाओं के दर्शन तथा सम्पूर्ण सृष्टि के अदृश्य दृष्टा जीवात्मा का प्रतिनिधित्व भी एक मानव-देह करती है। समस्त दृश्यमान के प्रतिनिधित्व को हम एक **'मानव-देह में'** देख सकते हैं और समस्त अदृश्य का दर्शन एवं अनुभूति **'मानव-देह से'** कर सकते हैं। मानव-देह से अदृश्य सत्ता की अनुभूति एवं समस्त दृश्यमान के रसास्वादन के लिए मानव-देह का अपने जगत सहित तदनुकूल एवं सहयोगी होना अत्यावश्यक है।

एक जाग्रत मानव-देह का होना, जगत का होना है। आत्मतत्त्व जो **'मैं'** शब्द में एक जाग्रत मानव-देह के अवलम्बन से प्रकट होता है, वह एक का नहीं सर्व का है। एक सहित अनेकों के क्रियान्वयन का प्रमाण **'मैं'** शब्द द्वारा होता है। जगत में कोई सुषुप्त है, मृतक है, मूर्च्छित है, पैदा होने वाला है, वृद्ध है, युवा है, स्वामी अथवा सेवक है, राजा है, भिखारी है जो कुछ भी है अथवा नहीं है, इसका ज्ञान एक जाग्रत मानव-देह के **'मैं'** शब्द द्वारा क्रियान्वयन से होता है। **'मैं'** इसलिए एक ही है और एक ही **'मैं'** सबकी है।

'नाम' की ज़कड़न ने देहों को पृथक्-पृथक् कर दिया। सन्देह (मैं देह हूँ) अज्ञान है, ईश्वर विमुखता है। इस सन्देह में जीव की हर सोच **'संशयात्मक'** होती है। यह संशयात्मकता उसके द्वारा हो रहे संशयपूर्ण कृत्यों-अकृत्यों में प्रकट होती है और हर प्राप्ति अथवा खोना स्वयं में **'संशय'** होता है। इसी कारण जीव देह सहित जगत की विभिन्न विधाओं के संचय व संग्रह में जन्म दर जन्म रत रहता है। सर्वप्रथम अपने सन्देह रूपी अज्ञान का ज्ञान होना परमावश्यक है।

होश सम्भालते ही हर मानव सन्देह (मैं देह हूँ) रूपी अज्ञान की अनभिज्ञता में स्वयं में समष्टि होते हुए भी व्यष्टि हो गया। समस्त मानव जिन्होंने होशोहवास में स्वयं को सबसे अलग करने वाले नाम से स्वीकार कर लिया है, **समष्टि** से **व्यष्टि** बन गए हैं। उदाहरण के लिए जैसे सम्पूर्ण देह **समष्टि** है और **मुख** व्यष्टि है। **'मुख'** स्वयं में मुख सहित सम्पूर्ण देह का प्रतिनिधि है। अतः समष्टि में व्यष्टि है और व्यष्टि है, तो समष्टि है। किसी **'रूप'** (देह) का अपना कोई **'नाम'** नहीं है और किसी **'नाम'** का अपना कोई **'रूप'** नहीं है। जब तूने कहा, कि **'मैं हूँ'** तब तू है और समस्त जगत सहित है। तू **'स्वयं'** में **'वयम्'** है, लेकिन तेरे **'नाम'** ने जो तेरे साथ आया नहीं था, तुझे **'वयम्'** से **'स्वयं'** बना दिया। **'मैं'** शब्द ने इसकी पुष्टि की। तुझमें जो **'नरत्व'** है, उस नरात्मकता को **'मैं'** शब्द ही प्रमाणित करता है। नर+आत्मक=नरात्मक होते ही तू जीवात्मा से जीव बन गया और नकारात्मक हो गया। **'मैं'** ही तुझे इस सन्देह एवं संशयात्मकता से मुक्त करेगा। कृपया एकाग्र करिए।

'मैं' साथ लगने पर ही तुझ सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का **'होना'** प्रमाणित होता है, लेकिन तू उस ब्रह्माण्ड को पृथक् मानता है। तेरे साथ तुझ एक सहित जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकट होता है, उस प्रकाट्य का कारण **'मैं'** तत्त्व है जो सबका समान है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सब भिन्न-भिन्न हैं और सबके भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जैसे तेरी अपनी देह के समस्त अंग एवं अवयव भिन्न-भिन्न हैं और सबके विभिन्न कार्य हैं, लेकिन सभी एक देह के हैं।

दृश्यमान मानव-देह में सिर देह में है और सिर सहित देह का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, मानसिक अथवा सूक्ष्म रूप से सम्पूर्ण देह का संचालन सिर द्वारा ही होता है। हाथ, पांव ही नहीं मन-वाणी भी सिर के निर्देश पर ही कोई दृश्यमान अथवा अदृश्य क्रिया या अक्रिया करते हैं। **'नाम'** का अपना कोई रूप नहीं है और जब है, तो **'एक रूप'** है। **'मैं'** का अपना कोई रूप नहीं है और जब है, तो अपना कोई **'एक रूप'** नहीं है, अतः कोई **'नाम'** नहीं हैं। अतः नाम से कुण्ठित व गुण्ठित रूप के साथ तद्‌रूपता सी में भी **'मैं'** किसी **'एक रूप'** से बँधी नहीं है। अर्थात् सन्देह में भी जो जटिल्य **'मैं'** तत्त्व है, वह **'समष्टि'** का है और **'स्व'** का **'नामतत्त्व'** मात्र व्यष्टि का है। भौतिक दृश्यमान रूप से व्यष्टि, समष्टि में है और समष्टि का प्रतिनिधित्व करती है, लेकिन मानसिक रूप से व्यष्टि में समष्टि है।

व्यक्तिगत और समष्टिगत दो प्रकार की बुद्धि है। एक तो सिर जिस व्यक्ति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी निजी बुद्धि है। वह बुद्धि जिस बुद्धि द्वारा प्रेरित व संचालित है, वह समष्टिगत बुद्धि है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। सम्पूर्ण समष्टिगत मानस का स्रोत एक ही सिर है। इस प्रकार सिर दृश्यमान दैहिक स्थूल रूप से एक देह का प्रतिनिधित्व करता है और अदृश्य मानसिक सूक्ष्म रूप से उसी सिर द्वारा अपनी कुल समष्टि का प्रतिनिधित्व भी करता है। देह, जब भी है जगत के साथ ही है। रूप व नाम एक व्यक्ति का है। अमुक नामक व्यक्ति दृश्यमान दैहिक रूप से उस एक देह का प्रतिनिधि तो है, लेकिन अदृश्य मानसिक व सूक्ष्म रूप से जो सम्पूर्ण जगत उसके साथ प्रकट होता है, उसका प्रतिनिधि भी होता है।

पंचतत्त्वों की दृश्यमान स्थूल देह सम्पूर्ण निर्माण, पालन व संहार की प्रतिनिधि है। लेकिन यथार्थ देह अदृश्य है और निर्माण, पालन व संहार तथा पंच महाभूतों से भी परे है। मानव देह का जैसा अर्थ (यथा+अर्थ=यथार्थ) है वैसी देह, यथार्थ है। **देह का अर्थ भस्मी है। अतः तदर्थ देह ही यथार्थ देह है। 'भस्मी'** पंच महातत्त्वों से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। पंच महाभूतों से निर्मित,

पालित देह जब मृत्योपरान्त चिता में दहन प्रकरण द्वारा पंच महाभूतों में विलय होकर अदृश्य हो जाती है, तो **'भस्मी'** का प्रकाट्य दृश्यमान होता है। पंच महाभूतों द्वारा निर्मित एक स्थूल मानव-देह है। यह देह नौ महीने माँ के गर्भ में बनी। जन्म के बाद इसकी शैशव और शव दो सुनिश्चित अवस्थाएँ हैं। देह के शव के दहन के उपरान्त तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी का प्रकाट्य होता है। भस्मी देह का शेष या अवशेष नहीं, अविशेष है। भस्मी, जन्म,-मृत्यु, जरा-रोग से परे देहातीत है। **'भस्मी'** दृश्यमान देह में अदृश्य यथार्थ देह का पदार्थ है। जब योगी अपनी देह के सम अर्थ (भसम) को, जो सभी का है, जीवन काल में जीते जी अवधारणा द्वारा अधिगृहीत कर लेता है, तो उसे स्वतः प्राप्त यथार्थ देह की सिद्धि हो जाती है और समस्त रहस्य अनावृत हो जाता है।

'यथार्थ देह' युगों-युगान्तरों में हो चुके महामानवों तथा मानवों एवं आने वाले सभी मानवों तथा महामानवों की एक ही है। यथार्थ देह का स्वयं में कोई आकार नहीं है, लेकिन सभी आकारों के रोम-रोम में वह समाहित है। यह यथार्थ देह दिखाई नहीं देती, उसकी अनुभूति की जा सकती है। यथार्थ देह, मानव-देह के भीतर नहीं है, बल्कि इस यथार्थ देह में युगों-युगान्तरों की मानव-देहें अपने भूत-भविष्य-वर्तमान जगत सहित हैं। इस देह का दर्शन यथार्थ है। यथार्थ देह सदा-सदा नूतन है और आत्मामयी है। पंच महाभूतों से निर्मित, पालित और संहारित देह की जितनी भी अवस्थाएँ एवं स्थितियाँ हैं, उनमें से कोई भी यथार्थ देह पर लागू नहीं होती। यह यथार्थ देह सुषुप्ति में जन्म-मृत्यु में बँधी गर्भित देह को स्वयं में जगत सहित विलीन कर लेती है। यह जन्म-मृत्यु में बँधी देह, जगत सहित मायिक है। लीला में परिवर्तन एवं नूतनता आवश्यक है। अतः यह मायिक देह, जगत सहित नित नूतन है। यदि पंच-महाभूतों की मायिक जन्म-मृत्यु में बँधी देह से भस्मी का प्रकाट्य न होता, तो यथार्थ देह की अनुभूति सम्भव नहीं होती।

योगी अपनी देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य पर ध्यान करता है और उसकी अवधारणा करता है, कि **'मैं भस्मी हूँ'**, तो उस भस्मी

से आत्मसात् होते-होते शनैः शनैः उसकी यथार्थ देह में प्रविष्टि एवं स्थिति हो जाती है। ध्यान समाधि में भस्मीयोग, लययोग में स्थिति के बाद योगी की जो देह प्रकट होती है, वह होती तो पंच महाभूतों की ही है, लेकिन उसमें बाहुल्य व आधिक्य यथार्थ तत्त्व का होता है। ध्यान में वह अपनी देह का दहन प्रकरण एवं भस्मी का प्राकट्य देखता है, तो ध्यान से उठने पर उसकी पंच महाभूतों की निर्मित देह में जो यथार्थ देह थी, उसका प्रतिनिधित्व करती उसकी देह विरक्त व दिव्य विदेह देह होती है। प्रत्येक मानव में वह यथार्थ अंश होता है, उस विरक्ति का प्रतिनिधित्व संहारान्त में प्रकट भस्मी करती है।

यथार्थ देह में समस्त क्रियान्वयन समष्टि में होता है। वह देह ईश्वर के खेल के साथ जुड़ी हुई होती है। वहाँ देह सहित जगत का प्राकट्य तद्नुसार सद् एवं ईश्वरीय ही होता है। वह **'नारायण'** की **'नर'** देह होती है। ईश्वर स्वयं में नर व नारायण हैं। उनकी **'नर'** विधा यथार्थ देह, पंच-महाभूतों का तनिक अवलम्बन लेकर प्रकट होती है और लय होती है। **'नर'** को स्वयं में समेट कर नारायण पुनः पुनः एक से अनेक होते हुए प्रकट होता है। सब कुछ एक मानस से प्रकट होकर उसी में समाहित हो जाता है। अरूप-अनाम निराकार व अदृश्य यथार्थ देह से जगत सहित एक **'नर'** प्रकट होता है और उसी में समा जाता है।

तेरी मृत्यु के बाद तेरी देह पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगी, लेकिन तेरा नाम **अवशेष** रहेगा। वह नाम न देह के साथ आया था और न देह के साथ पंच-महाभूतों में विलय होगा। संसार में आकर तू जिन विधाओं का भोग करता है, वह सब तेरे नाम से नहीं है। जो-जो तेरे नाम से है, वह तू लेकर पैदा नहीं हुआ। आजीवन तू जिस वायु में श्वास लेता है, जिस आकाश की छत्रछाया में रहता है, सूर्य, चन्द्रमा आदि से लाभान्वित होता है, वह सब किस नाम से हैं? वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि सबके हैं, इसलिए तेरे भी हैं। लेकिन जो तेरा है और तेरे नाम से है, वह सबका क्यों नहीं है ? तेरी छोटी सी प्रौपर्टी, मकान व दुकान की कोटि-कोटि

महाब्रह्माण्डों की सम्पत्ति के आगे हैसियत ही कितनी है? तेरी एक देह का महत्त्व अनगिनत मानव-देहों व असंख्य प्राणी जगत के सम्मुख न होने के बराबर है। तूने जो-जो नामी-बेनामी अपने नाम से एकत्रित किया है, वह सब तेरी एक श्वास बन्द होते ही तेरा नहीं रहेगा। जो नाम का है, वह तेरा नहीं है क्योंकि नाम तेरा नहीं है। जो तू कर-करवा रहा है, ऐसे हज़ारों-लाखों लोग कर-करवा रहे हैं। जो तेरा है, वह सबका तब होगा, जब तू स्वयं में सबका होगा। तू उसके लिए क्या कर रहा है? उसमें तुझे क्या करना है यह प्रकरण मात्र सद्‌गुरु ही बताएगा।

भस्मी तेरे **'नाम'** से नहीं है, लेकिन तेरी है और स्वयं में अनाम व अरूप तेरी भस्मी सबकी है। जब तू उससे आत्मसात् हो जाएगा, तो सबका सब कुछ तेरे लिए होगा। सब कुछ प्रभु का है, यह मानने के लिए तेरा **'कुछ नहीं'** तेरे पास होना चाहिए। अन्यथा जो-जो तेरे नाम से है, वह भी तुझे भोग नहीं देगा। सबके नाम और सब कुछ अलग-अलग हैं, लेकिन भसम एक ही है। प्रभु के **'सब कुछ'** के भोग का अधिकार तुझे अपनी देह की **भस्मी** से आत्मसात् होने पर ही मिलेगा।

सन्देह में तू देह का यथार्थ और **'मैं'** का नित्यत्व खो चुका है। ईश्वर के श्री चरणों के दर्शन, नाम-जाप एवं सिमरन का अधिकार, प्रभु की कृपा, क्षमा और दया की पात्रता एवं पात्र भी खो चुका है। तू अपना **'कुछ नहीं'** भी खो चुका है, संसार में रहने का अपना पहचान पत्र (I.D) भी खो चुका है। अतः अपनी दुर्गत से उभरने के लिए अपनी देह की **'भस्मी'** से **'अवगत'** हो, तेरी सद्‌गति होनी शुरू हो जाएगी। स्वयं में अविशेष उस भसम पर अपना नाम ट्रांसफर कर दे। एक खण्डहर की भाँति अवशेष रहने वाले अपने नाम को तू अपनी देह के अविशेष पदार्थ **'भसम'** पर धारण कर ले। तेरी देह का यही एक पदार्थ ऐसा है, जो सबका है। यदि जीते जी तू उससे आत्मसात् होते हुए उस स्थिति में प्रविष्ट हो जाए, तो वह सृष्टि, स्थिति के संहार के बाद की स्थित्यातीत स्थिति है। क्योंकि **'भस्मी'** स्वयं में तुझ जीवात्मा की ही तरह अनाम व

अरूप है। तेरी देह की भस्मी से आत्मसात् करवाने में मात्र तेरा सदगुरु ही सक्षम है। तू मात्र उसका शरणागत हो जा। यह प्रकरण सद्‌गुरु ही तेरे लिए कृत्य-अकृत्य स्वयं कर-करवा के करेगा। सद्‌गुरु जप, तप, सिमरन, तीर्थ यात्रा, यज्ञ, हवन, तितिक्षा, प्राणायाम, प्रत्याहर आदि विभिन्न प्रकरण स्वयं करके एवं तुझसे करवाते हुए तेरा नाम किसी ऐसे शाश्वत् के नाम कर देगा, जो सबका है। वह सात स्वरूपों में अविरल, अखण्ड सतत् तेरे साथ रहता है—प्राणी, पदार्थ, परिणति, प्रकृति, पुकार, पदार्पण, परिस्थिति। सद्‌गुरु स्वयं में **दर्शन** है।

सम्पूर्ण वक्तव्य का सार है, कि मानव-देह व सम्पूर्ण जीवन का **'अर्थ'** एक ही है और वह है **'भसम'।** यह 'भसम' हर मानव देह का निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है। यह भविष्य अन्ततः **'तय'** है। तेरा एक ही कर्म व्यक्तिगत है, कि **'नित नूतन'** कुल सृष्टि में जो **संहार** निश्चित है, उसे नित्याध्यासन द्वारा नित्य **'सुनिश्चित'** कर। क्योंकि अन्ततः तेरा **'संहार'** ही निश्चित है, और कुछ हो न हो, तेरी देह की **'भस्मी'** अवश्य बनेगी। **'नित नूतन'** सृष्टि में तेरे लिए यह घटना किसी भी दिन हो सकती है। उस निश्चित दिन का ज्ञान न तुझे है, न हो सकता है। कल तेरे लिए तेरी देह हो, न हो। **'संहार'** तेरे कुल जीवन में निश्चित, परिलक्षित व दर्शित है। आज यदि तू उसका अधिग्रहण करेगा, तो तुझे साथ ही **कुल संहार की सुनिश्चितता हृदयंगम हो जाएगी।** निर्माण, पालन में **'नित नूतनता'** और भिन्नता है, लेकिन **'संहार'** एक ही एवं **'नित्य'** है।

तेरा **'नाम'** आजीवन एक ही रहता है। **'नाम'** एक होने के कारण तेरी देह की नूतनता आच्छादित हो जाती है। आज तू वो नहीं है, जो कल वाला था। क्योंकि आज तेरी देह दूसरी है, जिसका कल वाली देह से कोई सम्बन्ध नहीं है। आज वही नाम, भाव द्वारा भस्मीकरण के कारण भस्मी प्रकरण के बाद की देह की तरह से ही नया है। तुझे मानव-देह की **'नित नूतनता' 'नाम'** के साथ सिद्ध करनी होगी। उसी **'नाम'** का भस्मी प्रकरण द्वारा नित नवीनीकरण करना होगा, ताकि **'नित नूतन'** मानव-देह

की जगत सहित प्रतिदिन **'नित नूतन'** प्रतीति हो सके।

नित नवीनीकृत **'नाम'** के साथ नित्याध्यासन करते-करते सद्‌गुरु कृपा से **'नित नूतन'** मानव-देह **'नाम'** सहित **'मैं'** (आत्मतत्त्व) एवं **'तू'** (परमात्म तत्त्व) की भाँति **'नित्य'** हो जाएगी। जैसे **'नाम'** देह से अतिरिक्त है, उसी प्रकार **'भस्मी'** भी देह से अतिरिक्त है। जीते जी उससे आत्मसात् होने में सृष्टि स्थिति भी **'नाम'** की तरह अतिरिक्त हो जाएगी। सद्‌गुरु कृपा से अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होते-होते एक दिन ऐसा भी होगा, कि तेरे लिए तेरी देह व जगत होते हुए भी रहेगा ही नहीं और **'मैं'** शब्द भी लुप्त हो जाएगा। यह समाधि है। अतः **'नाम'** का नवीनीकरण करने के लिए अपनी देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य को आज ही सुनिश्चित करते हुए परिलक्षित का **लक्ष्य** बना और दर्शित का **'दर्शन'** कर। तू **'संहार'** का अधिग्रहण पहले कर ले। क्योंकि तेरी देह निर्मित और पालित ही नहीं स्वतः संहारित भी है। तुझे अपने संहार के दर्शन के लिए आर्तनाद युक्त प्रार्थनाएँ करनी होंगी, कि ''हे प्रभु ! तू मेरा हेतु है। तू कृपा कर। तुम्हीं मुझे मेरी **'भस्मी'** से आत्मसात् करा सकते हो। यह बहुत दुस्तर व दुर्गम कार्य है। मुझे मेरी देह के संहार की अनुभुति करवा दो। इसके बिना मेरी पहचान खो गई है और मैं जन्मों-जन्मान्तरों से धक्के खा रहा हूँ।'' प्रभु की कृपा से जब तेरे **'होने'** में तेरी देह व जगत का **'न होना'** तुझे अनुभूतिगम्य हो जाएगा, तो तुझे अपनी आत्मतत्त्व की स्मृति आ जाएगी। तेरी देह का मोह नष्ट हो जाएगा। वही अभावमय आनन्द की स्थिति है जिसमें तू देह सहित जगत का रसास्वादन करते हुए अपने 'स्वरूप' में स्थित हो जाएगा।

''बोलिए सियावर रामचंद्र महाराज की जय''

(19 मई, 16 अक्टूबर से 23 दिसम्बर 2011 और 13 से 27 जनवरी 2012)

माया (चिन्तन)

(भाग – १)

चिन्तन-मनन, आत्मानुभूति एवं आत्मज्ञान का शुभारम्भ है और वस्तुतः आत्म-चिन्तन एवं आत्म-मनन के लिए ही होता है। **'चिन्तन'** दैवीय ही होता है। जब जीव की चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं, तभी चिन्तन का शुभारम्भ होता है। जीव के फँसने का भी रहस्य है और जन्मों-जन्मान्तरों की इस फँसावट से निकलना भी स्वयं में परम रहस्यात्मक व चमत्कारिक है। अध्यात्म देहातीत विषय है, इसकी पकड़ के लिए अति सूक्ष्म मेधा शक्ति अपेक्षित है। तीव्रतम बुद्धि (Finest intellect) भी देह से, देह में, देह तक है। तीव्रतम (Finest) से भी आगे (Fine Next) से अध्यात्म-चिन्तन में प्रविष्टि मिलती है और सारे जुर्मानें (Fine) समाप्त हो जाते हैं (When you go beyond finest intellect, then you go in fine next and that is fine free zone.) जहाँ प्रारब्ध, काल और कर्म के बन्धन छूटने शुरू हो जाते हैं, वहाँ से चिन्तन एवं मनन का शुभारम्भ होता है।

आध्यात्मिक जीवन के लिए अति सकारात्मकता अपेक्षित है। चिन्ता व चिन्तन एक साथ एक मंच पर नहीं रह सकते। चिन्ताएँ प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश भौतिक जगत की होती हैं। **'चिन्ता'** जीवित मानव को जलाती है और **'चिता'** मृतक को जलाती है। **'चिता'** और **'चिन्ता'** का उन्मूलन होते ही स्वतः **'चिन्तन'** शुरू हो जाता है। जहाँ चिन्तन-मनन नहीं होगा, वहाँ चिन्ता होगी ही। चाहत व चिन्ता का दामन-चोली का साथ है। चिन्ता अक्सर भविष्य की होती है। भविष्य के लिए हम जहाँ स्वयं कोई योजना

बनाने लगते हैं, वहाँ फँस जाते हैं। हमारी अपनी सम्भावनाओं में आने वाली काल्पनिक रुकावटें हमारी चिन्ताओं का कारण होती हैं। चिन्ता में भविष्य के भय के साथ अतीत का शोक जुड़ा हुआ होता है। शोक एवं चिन्ताग्रस्त व्यक्ति आध्यात्मिक जगत में प्रविष्टि नहीं पा सकता। **जब हम शोक व चिन्ता का विश्लेषण करते हैं, तब वही चिन्तन बन जाता है।**

भविष्य किसी ने देखा नहीं, वह तेरी कल्पना ही है, जब तू देखेगा वह भविष्य नहीं, वर्तमान होगा। तेरा वह भविष्य वर्तमान होकर अतीत हो जाएगा। चिन्ता का कारण दूर हो जाएगा, लेकिन **'चिन्ता'** बनी रहेगी और दूसरे आगे आने वाले भविष्य के लिए कोई न कोई चिन्ता का कारण उत्पन्न कर देगी। **चिन्ता स्वयं में मानस की एक वृत्ति है, जो अदृश्य है और कारण दृश्यमान होता है।** चिन्ता का दृश्यमान कारण दूर हो गया, लेकिन तेरे अदृश्य मानस से चिन्ता का उन्मूलन कैसे होगा? नेपथ्य में छिपी चिन्ता दूसरा कारण खोज लेगी। कारण दूर होने पर अस्थायी रूप से तुझे चिन्ता मिटी हुई नज़र आती है, लेकिन चिन्ता का कारण भी भ्रम था और चिन्ता का दूर होना भी भ्रम है। **शोक और चिन्ता स्वयं में दूर होंगे, तो उनके कारण होंगे ही नहीं।** चिन्ता और शोक के कारण इसलिए बदलते रहते हैं, क्योंकि तू कारणों में उलझा हुआ चिन्ता और शोक को देख नहीं पाता। तुझे चिन्तन करना होगा। तुझे चिन्तन द्वारा अदृश्य मानस में अदृश्य रूप से छिपी **'चिन्ता'** का समूल विनाश करना होगा। फिर कोई भी **'कारण'** चिन्ता का कारण नहीं बनेगा। हर कारण चिन्तन का **हेतु** बनेगा, जो तुझे तेरे **'होता'** (परमात्मा) से जोड़े रखेगा।

परमात्मा (स्रष्टा) **'विधाता'** है, उसकी अपनी **'विधि'** है, जिसके तहत वह सम्पूर्ण सृष्टि तीन विधाओं (निर्माण, पालन एवं संहार) में समय-समय पर प्रकट करता है। उसके विधानों एवं नियमों को अज्ञान व मोहवश तोड़ना आध्यात्मिक दृष्टि से भ्रष्टाचार (भ्रष्ट आचरण) है। मानव-देह लेकर विधि के विधाता के संविधान को तोड़ने की सज़ाएँ मिलती हैं। ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना यज्ञ से की है। यजन वस्तुतः ईश्वरीय **'यत्न'** है। यह यजन ही

जशन है। मानव जीवन स्वयं में **'यजन'** है, जिसका **'होता'** मात्र परमात्मा है। यज्ञ द्वारा प्रारब्ध के लेखे-जोखे एक ओर हो जाते हैं और यज्ञ फल रूप में वे विधाएँ भी लब्ध हो जाती हैं, जो प्रारब्ध में नहीं होतीं। यज्ञ का एक **'फल'** होता है, एक **'सुफल'** होता है। **'फल'** का प्राकट्य पदार्थों में दृश्यमान होता है और **'सुफल'** मानस का आनन्द है। दैवीय संविधान के अन्तर्गत आत्मतत्त्व **'मैं'** (स्रष्टा परमात्मा का दृष्टा प्रतिनिधि) **नित्य** है और **मानव-देह**, जगत सहित '**नित नूतन**' है। देह सहित जगत में **'निर्माण'** और **'पालन' 'नित नूतन'** है और **'संहार' 'सुनिश्चित'** एवं **'नित्य'** है।

मानव देह का एक-एक रोम, हृदय की एक-एक धड़कन एवं समस्त भीतरी कार्य प्रणालियों का संचालन एवं सुसम्बद्ध क्रियान्वयन किसी के हाथ में नहीं है। यह तुझे कब, क्यों मिली और कब तक तेरे लिए रहेगी, तू कुछ नहीं जानता। इसका अगला क्षण तेरे हाथ में नहीं है। इसी देह के द्वारा तुझे समस्त महाब्रह्माण्ड का रसास्वादन करते हुए प्रभु की मात्र प्रशंसा करनी है। तू पशु-पक्षी, प्राणी जगत को देख। उनका माँ प्रकृति पालन-पोषण कर रही है। तू अपनी बुद्धि से जान ले तथा मान ले, ईश्वर ने सबके अनुकूलन एवं खाने-पीने की चमत्कारिक एवं रहस्यमयी व्यवस्था की हुई है। तू उसके ईश्वरत्व की प्रशंसा कर। **'सद्'** बुद्धि से **'सद्'** निर्माण, पालन एवं संहार में दृश्यमान ईश्वरीय **'सद्'** का रसास्वादन कर। **'सद्'** की प्रशंसा एवं गुणगान से चेतन और आनन्द की अनुभूति होगी। **'अनुभूति'** अदृश्य है। उस अनुभूति से ओत-प्रोत होकर ही तू दृश्यमान के **'सद्'** का रसास्वादन एवं प्रशंसा कर पाएगा। इसके लिए किसी **'सद्'** पुरुष की शरणागति आवश्यक है।

मानव को प्रभु ने कल्पना की अद्‌भुत् शक्ति दी है। साथ ही भविष्य को धारण करने की शक्ति भी प्रदान की है। मृत्यु और भस्मी कल्पना नहीं हैं, यह ऐसा भविष्य है, जो अवश्य होगा और कभी भी होगा। जीवन में अन्य भविष्य हमारी कल्पनाएँ हैं, वे हो भी सकते हैं, नहीं भी। उनके होने

को हम देख सकते हैं, उन अवस्थाओं से हम रूबरू हो सकते हैं। लेकिन मृत्यु एक ऐसा भविष्य है, जो निश्चित है, लेकिन हमने अपनी मृत्यु न कभी देखी है, न देख सकते हैं। अतः यह भविष्य कल्पना नहीं अवधारणा है। प्रभु ने हम सब मानवों से हमारी अपनी पाँच अवस्थाएँ छिपा कर रखी हैं। लेकिन प्रत्येक के साथ जो अन्य जगत दिया है, उसमें वे स्पष्ट दर्शित कराई हैं। मेरे स्वयं के होने से जगत का होना होता है। **'मैं'** चिन्तन करूँ, कि ऐसा क्यों है? मैं दूसरों को गर्भ में एवं पैदा होते, सोते, मरते एवं भस्मी बनते देख सकता हूँ, लेकिन मैंने अपनी ये स्थितियाँ कभी नहीं देखीं।

यदि तूने अपनी गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था देख ली, तो तू जीवात्मा, परमात्मा, अपनी यथार्थ देह एवं समस्त सृष्टि में दृश्यमान मायिक प्रदर्शन के रहस्यों से अवगत हो जाएगा। **'मैं'** ने स्वयं को माँ के गर्भ में अथवा जन्म लेते हुए नहीं देखा, अन्य को देखा है। इसी प्रकार हज़ारों को सोते हुए, मृतकावस्था में शव बनते हुए और शव की भस्मी बनते हुए देखा है। इन अवस्थाओं में **'मैं'** स्वयं नहीं होता और मेरे लिए न मेरी देह होती है, न कोई जगत होता है और अपने देह व जगत रहित होने का मुझे ज्ञान नहीं होता। अतः मैं जड़ता में होता हूँ। मैंने जब भी देखा है **'मैं'** स्वयं उठा हुआ अवचेतना में होता हूँ। जैसा मेरा होना होगा, वैसा ही मेरे सामने जगत होगा। मेरा होना यदि मेरी वजह से है, तो यह जगत मेरे अनुकूल क्यों नहीं हैऔर यदि प्रभु की इच्छा से है, तो मेरे कष्ट आदि क्यों है?

वास्तव में जड़ता से महाचेतना तक तेरे हर होने का हेतु परमात्मा ही है, तुझे कुछ नहीं करना, केवल अपना होना बदलना है। यदि तू उसे अपनी किसी अवस्था अथवा स्थिति में होने का हेतु नहीं जानेगा और मानेगा, तो कोई न कोई चिन्ता अथवा शोक का कारण तुझे घेरे रहेगा। क्योंकि शोक और चिन्ता की वृत्ति तेरे मानस में समाहित रहती है। अतः किसी भी प्रकार और सब प्रकार से तुझे अपने हेतु (परमात्मा) से सम्पर्क करना है, कि मेरा होना सार्थक (अर्थ सहित) कर दो। प्रभु तेरा होना बदल देंगे। तेरा होना

अन्यार्थ (निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ) अर्थात् मानव देह व जीवन की अर्थरहितता से रूपान्तरित होते हुए स+अर्थ =सार्थक हो जाएगा। तेरा होना बदलने से तेरी हर होनी-अनहोनी सुहानी और मनमोहनी ही होगी।

गर्भावस्था, शैशवावस्था, निद्रावस्था, मृतकावस्था एवं भस्मावस्था में तुझे तेरे होने का कोई ज्ञान नहीं होता। ये अवस्थाएँ जड़ अवस्थाएँ हैं, जड़ता में ईश्वर से विमुखता होती है। किसी को जब स्वयं अपना नहीं पता, तो ईश्वर का कैसे ज्ञान होगा। ईश्वर से पूर्ण विमुखता की जड़ अवस्थाओं में भी न्यूनतम चेतना तो रहती ही है, लेकिन वह नाम मात्र की ही चेतना होती है। उस किंचित अति न्यून चेतना का भी ज्ञान नहीं होता। पशु-पक्षी, प्राणी जगत, वनस्पतियाँ और पेड़-पौधों में भी चेतना होती है, लेकिन इन्हें ईश्वर की धारणा न होती है, न हो सकती है। जड़ता में प्रारब्ध, कर्म एवं काल-बन्धन नहीं होता और चेतना भी स्वयं में इन बन्धनों से मुक्त है। ये बन्धन मात्र अवचेतना में हैं। जड़-चेतन की ग्रन्थि अवचेतना है और इसी में तुझे अपने होने का ज्ञान होता है और ईश्वर विमुखता सी होने के कारण न पूर्ण जड़ता होती है और न पूर्ण चेतना।

जड़-चेतन की ग्रन्थि अर्थात् अवचेतना में, चेतना के अनुपात के अनुसार तेरा **'होना'** होता है। तेरा **'होना'** स्वयं में अदृश्य है एवं वही तेरा अदृश्य **'दृष्टा स्वरूप'** (Body Conciousness) है। तेरे अदृश्य दृष्टा स्वरूप की दृश्यमान प्रस्तुति ही देह सहित जगत की सृष्टि है। दृष्टा सहित जगत में तू स्वयं को ही देख रहा है। तू देह नहीं है। यदि तू देह है, तो जगत भी तू ही है। इसीलिए न तू देह है, न जगत है, तू विशुद्ध आत्मतत्त्व है।

देह का दिशा निर्देशक (Guiding Factor) मानस है। **'मन'** भावों की पिटारी है, उसमें असंख्य भाव उठते रहते हैं। कुछ भाव विशिष्ट मानसिकता में परिपक्व हो जाते हैं, वे स्वभाव बन जाते हैं। स्वभावतः कुछ लोग सतोगुणी होते हैं, कुछ रजोगुणी और कुछ तमोगुणी होते हैं। तीनों माया के गुण हैं। जीव-सृष्टि में जब आनन्द का आच्छादन हो जाता है, तो माया के गुण ही अवगुण बन जाते हैं। दृष्टा का जब आनन्द आच्छादित हो जाता है, तो इसे

'दृष्टा दोष' कहा गया है। उसका आनन्दमय मानस जीवीय सुख-दुःखपूर्ण मानसिकता बन जाता है। जब अदृश्य दृष्टा साकार देह रूप में दृष्टा बन जाता है, तो उसकी दृष्टि दोषयुक्त हो जाती है। वस्तुतः दृष्टा अदृश्य है और वह देह सहित जगत का दृष्टा है। वह जो भी देखता है, वह माया का सद् है। आनन्द उसका स्वभाव है, वह स्वयं में सहज सुख राशि है। सारा खेल मानस का है। मानसिकता व्यक्ति को व्यक्तिगत बना देती है, उसमें जगत स्वयं से पृथक् नज़र आता है। जैसा मानस होगा, वैसे ही लोग मिलेंगे अथवा वैसे ही लगेंगे। अन्यथा लोगों से जीव का व्यवहार अपने मानस के अनुसार ही होता है।

मानव में स्वभाविक चेतना अन्य सभी प्राणियों से अधिक है। अतः मानव बड़े-बड़े शक्तिशाली जानवरों से भी काम लेता है। दिव्य **'चेतना'** दिव्य बुद्धि है, जो जानवरों में न होती है, न हो सकती है। जप-तप, सद्गुरु-सेवा, सत्संग, सौहार्द्रता, प्राणायाम, संयम, यज्ञ-हवन आदि से दिव्य चेतना का विकास होता है। देह सहित जगत भी तद्नुसार दिव्य हो जाता है। तेरी देह तेरे मानस में बनी है। वह मानस बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें तेरे भाव, स्वभाव, संस्कार अदृश्य रूप से समाहित रहते हैं। जब, जिस समय, जिस श्वास और हृदय की जिस धड़कन में तू अपने नाम को स्वीकार कर लेता है, तेरे लिए तेरी देह, जगत सहित प्रकट होती है।

मानव-जीवन आध्यात्मिक निरन्तरता है भौतिक नहीं। कल के जगत और आज के जगत में कोई निरन्तरता (Continuity) नहीं है, लेकिन कल का **'सद्'** और आज का **'सद्'** एक ही है। युगों-युगान्तरों तक **'सद्'** एक ही रहता है। कल के जगत और आज के जगत में निरन्तरता (Continuity) समझना और मानना '**सन्देह**' है। दुर्भाग्यवश मुझे सन्देह का भी ज्ञान नहीं है। कोई मानव पैदा होते अपने साथ अपना नाम लेकर नहीं आता। नाम कालान्तर में रखा जाता है, जो स्वयं में देह से अतिरिक्त है। जब यह अतिरिक्त नाम, रूप को कुण्ठित कर देता है, तो नाम रोग बन जाता है। अपने जो, जब, जहाँ, जैसा भी होने में तू अपनी दिव्य चेतना का विस्तार

कर। चेतना का स्तर बढ़ने से तेरा '**होना**' बदल जाएगा। तद्नुसार तेरा जगत भी परिवर्तित हो जाएगा।

दैहिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में जिसका जन्म हुआ है, उसकी एक दिन मृत्यु हो जाती है और शव के दहन के बाद पंच महाभूतों की देह पंच महाभूतों में विलय हो जाती है। तत्पश्चात् देह का एक पदार्थ **'भसम'** प्रकट होता हुआ दृश्यमान होता है, जो पंच महाभूतों से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। यहाँ वह **'रूप'** नहीं रहता, जिसका नाम रखा गया था। 'मैं देह हूँ' इस जटिल्य की जटिलता और जकड़न में तू कल्पों से कलप रहा है। भिन्न-भिन्न जन्मों में तेरे भिन्न-भिन्न **'नाम'** हुए, **'मैं'** वही रही। **'मैं'** लगने से तू देह से नाम-रूप में अत्युक्त हो गया। **'नाम', 'रूप', 'होना'** और **'मैं'** चारों अंग स्वयं में पूर्ण एवं सद् हैं, लेकिन इनका परस्पर गुंथना जटिल्य (Complex) बन गया। यही तुझे बार-बार जन्म-मृत्यु की श्रंखला में बाँधे हुए है। तुझे जीते जी देह का ध्यानाग्नि में दहन करना होगा और अपनी देह की भस्मी से आत्मसात् होना होगा, जो स्वयं में अनाम व अरूप है। जो देह व जगत तेरे होने से है, वह तेरे लिए है। तू देह के मोह से परे हो, तो तुझे ज्ञान व अनुभूति हो जाएगी, कि सब कुछ तेरे लिए है। तू स्वयं प्रारब्ध, काल व कर्म वश है, तू इस वशीकरण से परे हो। इसके लिए तू अपनी देह का **'अर्थ'** जान। देह का अर्थ तुझे तेरी **'अर्थी'** और तेरी **'भसम'** बताएगी। अर्थ+अर्थी=**'अर्थार्थी'** ही आत्मज्ञान का अधिकारी है। कृपया एकाग्र करिए।

सम्पूर्ण मानव-जीवन में **'मृत्यु'** एक भविष्य ऐसा है, जो हमेशा भविष्य ही रहता है, क्योंकि इस भविष्य को मानव जानते-बूझते और मानते हुए भी देखना नहीं चाहता। इसलिए इससे भयभीत रहते हुए इससे बचने के विविध उपाय करता है। हर जन्म में मृत्यु भविष्य ही रहती है, इसलिए पुनः पुनः जन्मता-मरता रहता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति जीते जी मरता है और जीते जी जन्म लेता है। मृत्यु-रहस्य यह है, कि यह मानव देह की ऐसी अवस्था है, जो एक बार होकर दुबारा नहीं होती और स्वयं की वह अवस्था

किसी ने नहीं देखी। अपनी इस अवस्था का साक्षी भी आजतक किसी को कोई नहीं मिला। यह अवस्था स्वयं में **'दर्शन'** है। **'निद्रा', 'मृत्यु', 'चिता'** और **'भस्मी'** आत्म दर्शन के सोपान हैं। सुषुप्तावस्था, देह की एक अवस्था है, जिसमें देह जीवित होती है। मृत्यु, देह की अवस्था है, जब देह होती है लेकिन देह जीवित नहीं, मृतक होती है। **'भस्मी'** देह की एक अवस्था है, जिसमें देह ही नहीं होती। 'निद्रा-दर्शन' में देह रहती है। देह के साथ परिवार तथा अन्य समस्त पदार्थ आदि भी होते हैं। जिस मानस अवस्था में मैं निद्रा में हूँ, उसके दर्शन से मानस प्रभावित होता है। मैं हूँ, लेकिन मेरा देह व जगत से कुछ लेना-देना नहीं है। **'मृत्यु दर्शन'** में भी देह रहती है। देह के शव के साथ समस्त सम्बन्धी आदि भी रहते हैं। **'मृत्यु'** स्थिति को जीते जी आत्मसात् करने पर अहंकार पूर्णतः निःशेष हो जाता है। **'मृत्यु'** के बाद सब कुछ छूट जाएगा और शीघ्र ही देह का शव भी पंच-महाभूतों में विलय हो जाएगा।

अध्यात्म अदृश्य से अदृश्य का खेल है। तूने मानसिक रूप से माना हुआ है, कि तू मरेगा। यह तेरी मान्यता स्वयं में अदृश्य है। इसे अमान्य करने के लिए तू इसकी अनुभूति कर। जब तू ऐसा करेगा, तो तेरा मानस अमरत्व वाला होगा। अपनी मृत्यु को जीते जी देखने के लिए तुझे मृत्यु से पृथक् होना पड़ा और तेरी मान्यता से मृत्यु लुप्त हो जाएगी। **मृत्यु का स्वरूप देखने से मृत्यु का रूप समाप्त हो जाएगा।** भय (Apprehension) और सहर्ष सहमति (Appriciation) दो शब्द हैं। सहर्ष सहमति (Appriciation) वस्तुतः हर भय (Apprehension) को निर्मूल कर देती है। भय (Apprehension) किसी भी स्थिति अथवा विधा की सहर्ष सहमति (Appriciate) में बाधा है। तुझे मृत्यु का भय (Apprehension) है, लेकिन सहर्ष सहमति (Appriciation) नहीं है। जब सहर्ष सहमति (Appriciation) हो जाएगी, तो भय (Apprehension) समाप्त हो जाएगा। अतः मृत्यु की सहर्ष सहमति (Appriciation) से इस स्थिति का भय (Apprehension) नहीं रहेगा। जैसे कि निद्रा का कोई भय नहीं होता और हर कोई सोना चाहता

है। जब जीते जी मृतकावस्था की स्थिति को तू आत्मसात् करेगा, तो तेरे मानस से मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा।

मानव-देह का अवलम्बन लेकर तू अपने अमरत्व को जाग्रत कर। इसके साथ नाम-रूप में तद्रूप सा होने के कारण तू मरण धर्मा बन गया। इस मानसिकता में तू सद्, चेतन व आनन्द की झलक नहीं पा सकता। तेरा अपना **'कुछ नहीं'** है क्योंकि तू संसार में **'कुछ नहीं'** लेकर आया था और संसार से जाते हुए **'कुछ नहीं'** ही लेकर जाएगा। उस **'कुछ नहीं'** को गँवा कर तू जीव-सृष्टि में कभी कुछ, कभी कुछ, कुछ न कुछ के लिए जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहा है। उस **'कुछ नहीं'** के दर्शन के लिए तेरे पास तेरा अपना **'कुछ नहीं'** होना आवश्यक है। **'कुछ नहीं'** तेरी पहचान (Identity) है। अपने इस पहचान पत्र (I.D) के बिना तू **'कुछ नहीं'** के दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता। पैदा होते तेरा नाम नहीं था। अतः **'कुछ नहीं'** तेरा था, स्वयं को नाम से पहचानते ही तू अपनी वास्तविक पहचान खो बैठा है। तेरा **'कुछ नहीं'** अनाम व अरूप है तथा **'सब कुछ'** तेरे नाम से है। **'सब कुछ'** तेरा था नहीं, रहेगा नहीं, इसीलिए जो **'सब कुछ'** तेरे लिए **'है,** वह होते हुए भी **'नहीं है'।** सब कुछ तेरे नाम से है और तेरा **'कुछ नहीं'** तेरे नाम से नहीं है। तेरा **'कुछ नहीं'** है, लेकिन तेरे नाम से नहीं है। इसलिए अपने **'कुछ नहीं'** (भस्मी) द्वारा, **'कुछ नहीं'** (विरक्ति) को सुरक्षित कर ले। **'भसम'** ही तेरा निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित **'भविष्य'** है। **'भसम'** से अपनी पहचान के बिना तेरा संसार में रहना अवैध है। यह **'कुछ नहीं'** भी वस्तुतः प्रभु का ही है, लेकिन यही तेरी वास्तविक पहचान है। जिस परमात्मा का **'सब कुछ'** है, तेरा **'कुछ नहीं'** भी उसी का है, लेकिन **'कुछ नहीं'** तुझे देकर भेजा गया है, ताकि तू प्रभु के **'सब कुछ'** का रसास्वादन कर सके।

हम जीवन भर **'कुछ नहीं'** से डरते हैं और **'सब कुछ'** के पीछे भागते हैं। व्यापार करते हुए 'व्यय अपार' का डर इसलिए रहता है, कि ऐसे खर्चा होता रहा, तो मेरे पास तो कुछ नहीं रहेगा। मेरी मेहनत व्यर्थ जाएगी। जब तू पैदा हुआ था, तो तेरे लिए तेरा अपना कुछ नहीं था। अपनी मृत्यु से तू

डरता है, लेकिन रोज़ सोना चाहता है। अपना सोना तूने कभी नहीं देखा। वस्तुतः तेरा **'होना'** ही तू है। तेरे सोने में तेरा होना नहीं है इसलिए तेरे लिए तू नहीं है। तू जिसे निद्रा कहता है, तेरी मृत्यु भी बिल्कुल ऐसी ही होगी। लेकिन उसके बाद तू उठेगा नहीं। निद्रा में तेरे लिए तू नहीं था, लेकिन तुझे मालूम नहीं था, कि तू नहीं है। तू देह को अपना स्वरूप मानकर कह रहा है, कि निद्रा में तू नहीं था। निद्रा में तू देह नहीं था, तद्नुसार तेरे लिए जगत भी नहीं था। वस्तुतः तू देह व जगत नहीं है। देह और जगत है, लेकिन तू न देह है न जगत है। यदि तू अपना स्वरूप देख ले, कि न तू देह है और न तेरे लिए कोई जगत है, लेकिन तू है। वही तेरा निश्चित स्वरूप है। वह जो तू है वास्तव में वही तू है। तू गर्भ में आने से पहले भी **था** और मृत्योपरान्त भस्मी बनने के उपरान्त भी **रहेगा।** यह **'गा'** और **'था'** तेरी देह की सापेक्षता में है। वस्तुतः तू **'है', 'है'** और **'है'।** यह चिन्तन, मनन एवं दर्शन ही तेरी चिन्ताओं का उन्मूलन कर सकता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16 अक्टूबर से 23 दिसम्बर 2011)